सदुक्तिकर्णामृतम्

[प्रथमभागमात्रम्]

श्रीश्रीधरदासप्रणीतम्

आद्यसंपादकः

स्व. म.म. साहित्याचार्यः पं. रामावतारशर्मा

प्रतिसंपादको व्याख्याकारश्च :

डॉ. ओम्प्रकाश पाण्डेयः

उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान

लखनऊ

2.L

सदुक्तिकर्णामृतम्

[प्रथमभागमात्रम्]

श्रीश्रीधरदासप्रणीतम्

आद्यसंपादकः

स्व. म.म. साहित्याचार्यः पं. रामावतारशर्मा

प्रतिसंपादको व्याख्याकारश्च :

डॉ. ओम्प्रकाश पाण्डेयः

उपाचार्यः, संस्कृतविभागे,

लखनऊ-विश्वविद्यालयः

लखनऊ

उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान

लखनऊ

प्रकाशक :
डॉ. (श्रीमती) अलका श्रीवास्तवा
निदेशक
उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ

प्राप्ति-स्थान :
विक्रय विभाग
उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, नया हैदराबाद,
लखनऊ-२२६ ००७

प्रथम भागमात्रम् :
वि. सं. २०५४ (१९९७ ई.)
प्रतियाँ : १०००
मूल्य : रु. १२०/- (एक सौ बीस रुपये)
© उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ

मुद्रक : शिवम् आर्ट्स, २११, पांचवीं गली, निशातगंज, लखनऊ।
दूरभाष : ३८६३८९

भूमिका

प्रबन्ध काव्यों के साथ, संस्कृत-साहित्य में मुक्तक कविताओं की रचना भी पुष्कल परिमाण में हुई है। यद्यपि अद्यावधि, अनवरत रूप से, सोत्साह, संस्कृत में महाकाव्यों का प्रणयन हो रहा है, किन्तु इस प्रवृत्ति का स्वर्णयुग, निश्चित रूप से, महाकवि श्रीहर्ष-प्रणीत 'नैषधीयचरितम्' से पूर्णता प्राप्त कर चुका था।

मुक्तक-युग- इसके अनन्तर, ७वीं-८वीं शती ई. से मुक्तकों का युग प्रारम्भ हो जाता है। अमरुक और उनके सहधर्मा अन्य ज्ञात-अज्ञात सैकड़ों मुक्तककारों ने इतने सरस, हृद्य और ललित मुक्तकों की रचना की, कि उससे साहित्य-संसार में युगान्तर ही हो गया। आचार्यों के मन में मुक्तकविषयिणी अवधारणा बहुत ऊपर उठ गई। यह विश्वास हिल गया कि केवल भारी-भरकम महाकाव्यों की रचना कर के ही किसी कवि को विशिष्ट यश की प्राप्ति हो सकती है। 'अग्निपुराण' में यह निःसंकोच उदघोषित किया गया कि मुक्तक के रूप में प्रणीत एक सुन्दर श्लोक ही सहृदयों को चामत्कारिक रूप सें आनन्दविस्वल करने में समर्थ है- 'मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कारक्षमः सताम्' (३३७-३६)। नवमी शताब्दी के आचार्य आनन्दवर्धन ने, इससे भी आगे बढ़कर, अमरुक के एक-एक रसनिःष्यन्दी मुक्तक को एक-एक प्रबन्धकाव्य के समकक्ष घोषित कर दिया- 'अमरुकस्य कवेर्मुक्तकाः श्रृगांरसस्यन्दिनः प्रबन्धायमानाः प्रसिद्धा एव।' ध्वनिकार की यह घोषणा, मुक्तकों के इतिहास में आगे, मील का पत्थर सिद्ध हुई। किन्तु, मुक्तकों को इस गौरव के प्राप्त होने के पश्चात् भी उतना प्रचार न मिल सका, जिसके वे आस्पद थे। इसका कारण था मुक्तककार कवियों का बाहुल्य- 'मुक्तके कवयोऽनन्ताः।' नगरों से सुदूर गाँवों तक फैले इन बहुसंख्यक कवियों की रचनाओं का प्रचार-प्रसार निश्चित ही एक बड़ी समस्या थी, जिसके समाधान के जिए विभिन्न सुभाषित-संग्रहों के संकलनकर्ता उत्साहपूर्वक आगे आये। उन्होंने निष्ठापूर्वक इन प्रकीर्ण कवियों की रचनाओं को सुनियोजित ढंग से संपादित करके अपने सुभाषित-संग्रहों में स्थान दिया और उनके प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इस प्रकार संस्कृत-साहित्य में सुभाषित-संग्रहों की अपनी प्रशस्त परम्परा है।' [1]

---

१. कतिपय प्रसिद्ध सुभाषित संग्रह ये हैं- जल्हण-संपादित-सुभाधितमुक्तावली, सूक्तिरत्नाकर (सं. सिद्धचन्द्रमणि), सायणाचार्य सं. सुभाषित-सुधानिधि, शार्ङ्गधरपद्धति, सूक्तिरत्नाकार (कलिंगराय) सुभाषितावली(वल्लभदेव), सुभाषितावली (सकलकीर्ति), सुभाषितावली (श्रीवर), सूक्तिमुक्तावली (सोमप्रभाचार्य), सुभाषितरत्नसन्दोह (अमितगति), पद्यावली (रूपगोस्वामी), सुभाषितहारावली (हरि कवि), पद्यतरंगिणी (व्रजनाथ), पद्यवेणी (वेणीदत्त्त), सूक्तिमालिका (नारोजी पण्डित), पद्यरचना (लक्ष्मणभट्ट), बुधभूषण (शिवाजी के पुत्र शम्भू), सुभाषितरत्नभाण्डागार (शिवदत्त), संस्कृतसूक्ति-रत्नाकर (रामजी उपाध्याय)। कतिपय पाश्चात्य विद्वानों ने भी सूक्ति-संचयन की दिशा में प्रशंसनीय कार्य किया है, जिनमें से बॉटलिंक तथा प्रो. लुडविक् स्टर्नवारव के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

वीं शती ईस्वी से अद्यावधि, निरन्तर इन संकलनों का संपादन होता रहा है। इस परम्परा में, विद्याकरपण्डित के द्वारा संपादित 'कवीन्द्रवचनसमुच्चय' सर्वप्रथम माना जाता है, जो ११ वीं शती ई. की उपलब्धि है। इसके बाद, सोमेश्वर-संपादित 'अभिलषितार्थचिन्तामणि' (११३१ ई.) तथा गोवर्धन-संपादित 'आर्यासप्तशती' (११६८ ई.) दिखलाई देते हैं।

'सदुक्तिकर्णामृत' इस क्रम में चतुर्थ है जिसका संपादन १३ वीं शती ई. में हुआ। इसका समय १२०५ ई. निश्चित किया गया है। संकलयिता श्रीधरदास हैं, जो बंगाल के सेनवंशी सम्राट् लक्ष्मणसेन से सम्बद्ध थे। ग्रन्थ के प्रारम्भ में, उन्होंने अपना जो परिचय दिया है, तदनुसार वे राजा लक्ष्मणसेन के महासामन्त श्रीवटुदास के आत्मज और कृपापात्र थे। 'सदुक्तिकर्णामृत' के हस्तलेख की प्रथम सूचना बंगाल के यशस्वी प्राच्यविद्यावेत्ता और पाण्डुलिपियों के गवेषक स्वः डॉ. राजेन्द्रलाल मित्रा ने दी थी। इसके दो हस्तलेख उपलब्ध होते हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण ग्रन्थ का कलेवर बहुत बढ़ा है। इसके पाँच प्रवाहों में, ४४६ कवियों के २३३८ पद्य संकलित हैं। पाँच प्रवाहों के नाम हैं- अमरप्रवाह, श्रृंगारप्रवाह, चाटुप्रवाह, अपदेश और उच्चावच।

सन् १६१२ ई. में इनमें से दो प्रवाहों [दूसरे प्रवाह की ७६ वीचियों में से मात्र ५१ वीचियों] का संपादन करके म.म. स्व. पण्डित रामावतार शर्मा ने बंगाल की एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता से प्रकाशित कराया था। इसमें ७२५ पद्य संकलित हैं। संकलनकर्त्ता के द्वारा भूमिका और विषयसूची के रूप में विरचित पद्य इनसे पृथक् हैं। ग्रन्थ में संकलित (प्रकाशित) कवियों की अकारादि वर्ण क्रमानुसारिणी सूची इस प्रकार है-

संकलित कवियों की नामानुक्रमणी[1]

१. अंशुधर १.१४.२; १.७४.५

२. अचल १.६०.४; १.६२.२; २.४७.५;

३. अचल नरसिंह २.३५.३;

४. अपराजितरक्षित १.७४.२; १.८७.४;

५. अपिदेव १.७१.४; १.७८.२;

६. अभिनन्द १.३२.४; १.५२.१; १.५३.२; १.५४.२; १.७७.५; १.७६.२; १.८१.१; २.४३.३;

७. अमरसिंह १.६१.३; २.२२.३; २.२५.१;

८. अमरुक १.१६.१; १.२५.३; १.६२.४; २.५.३;२.८.२; २.२३.५; २.२४.४; २.३०.४; २.३७.३; २.४०.१, ५; २.४१.१; २.४४.१-३; २.४६.१-२,४; २.४७.२-४; २.४८.३; २.४८.२,४; २.५०.३-५; २.५१.१;

---

१. सन्दर्भ का प्रथम अंक प्रवाह का सूचक है,द्वितीय वीचि का तथा तृतीय श्लोक-संख्या का। भूमिका के समीक्षांश में भी यही सन्दर्भ-क्रम अपनाया गया है।

९. अमृतदत्त २.२०.३;
१०. आचार्य गोपीक १.२४.५; १.४७.५; १.५५.५; २.२१.५; २.२३.३; २.३७.१; २.३८.५; २.४२.१-२; २.४३.५
११. आर्याविलास १.३४.५;
१२. आवन्त्य कृष्ण १.३७.१;
१३. इन्द्र ज्योतिष १.७३.५;
१४. उद्भट १.५८.२;
१५. उत्पलराज १.६३.३;
१६. उमापति १.११.३; १.७३.१।
१७. उमापतिधर १.६.४; १.११.४; १.१२.४; १.१८.२; १.२२.१; १.२६.४; १.२६.५; १.३७.२; १.४२.५; १.५२.४; १.५५.३-४; १.५७.३; १.६१.१; १.७२.४; १.६०.२; २.८.५; २.११.२; २.११.२; २.१६.३-४; २.२०.१-२; २.२४.५; २.३५.५; २.४८.४।
१८. कक्कोल १.६.३;
१९. कङ्कण १.७१.१;
२०. कविपण्डित श्रीहर्ष १.४.३; १.६.५; १.५०.२;
२१. कर्णाटदेव २.१०.३-४;
२२. कापालिक १.७८.१;
२३. कालिदास १.५.१; १.१७.५; २.५.१-२; २.६.३; २.८.४; २.११.१; २.११.५।
२४. कालिदास नन्दी २.६.२; २.१०.१-२; २.२७.३-४;
२५. काश्मीरनारायण २.४५.२;
२६. कुब्जराज २.३१.२;
२७. कुलदेव १.५०.४
२८. कुलशेखर १.६४.१-४;
२९. कृष्णमिश्र २.१७.४;
३०. केवट्टपपीप १.३६.५;
३१. केशटाचार्य १.३८.१; १.४०.४; १.४५.१-२; १.४५.४;
३२. केशरकोलीयनाथोक़ १.५७.५;
३३. केशव १.३८.३;
३४. केशवसेन १.५४.५; १.६५.२; १.७२.५;
३५. क्षेमेश्वर १.६७.४;
३६. कोक १.४८.२;

३७. कोलाहल १.३५.१;

३८. गंगाधर १.७५.२; २.४०.३;

३९. गणपति १.६८.२; १.७३.३;

४०. गणाध्यक्ष १.४३.५;

४१. गदाधर १.७१.३;

४२. गदाधरनाथ १.८८.४;

४३. गोपीचन्द्र १.३६.४;

४४. गोवर्धन २.८.३;

४५. गोविन्दस्वामी २.१४.३;

४६. गोसोक २.१.१-२;

४७. ग्रहेश्वर १.३५.२;

४८. चक्रपाणि १.६.२; १.४४.४; १.५४.४;

४९. चण्डाल १.७८.५;

५०. चण्डालचन्द्र २.१२.४-५; २.३६.२;

५१. चन्द्रस्वामी २.८.१;

५२. चन्द्रचन्द्र २.२१.२;

५३. चित्तप १.५.२; १.१७.२; १.१८.५; १.२८.२;

५४. छित्तप २.३१.३;

५५. जनक १.८४.१;

५६. जयदेव १.४.४; १.५०.३; १.५८.४; १.६०.५; १.८५.५; २.३७.४;

५७. जलचन्द्र १.९.५; १.१५.२; १.१६.४; १.१७.३; १.२४.३; १.२५.१; १.३०.४; १.३३.५; १.४२.३; २.१७.३; २.२६.५; २.३०.१-२; २.४१.४;

५८. जह्नु १.४.२;

५९. डिम्बोक २.१३.५; २.४६.३;

६०. तिलचन्द्र १.६३.५;

६१. तुगोक १.३१.२; १.३२.१; १.३३.४;

६२. तैलपाटीय गांगाक २.३४.५;

६३. त्रिपुरारि १.८५.४;

६४. त्रिपुरारिपाल १.३४.१-२;

६५. त्रिभुवनसरस्वती १.६५.३;

६६. दङ्क १.२६.३; १.४३.१;

६७. दक्ष १.४१.१; १.४६.१-२; १.९१.१;

६८. दनोक २.२६.४;
६६. दण्डी १.१२.३; १.४४.२;
७०. दिवाकरदत्त १.५१.४;
७१. देवबोध २.५.५;
७२. द्वैपायन (व्यासपाद) १.१६.५; १.४०.५; १.५६.५;
७३. धनपाल १.१६.४;
७४. धर्मकीर्त्ति १.८२.१; २.२८.१; २.४६.३;
७५. धर्मपाल १.६१.२;
७६. धर्मयोगेश्वर २.३३.४; २.२३.१;
७७. धरणीधर १.३८.४; २.३२.३;
७८. धर्माशोकदत्त २.१.४;
७६. धूर्जटिराज १.४१.४;
८०. धोयीक २.३०.५; २.३४.२-३; २.३५.४;
८१. नग्न १.३६.२;
८२. नटगांगोक १.१०.५;
८३. नरसिंह १.१३.४; १.२६.४; २.६.५; २.२७.१; २.२८.५; २.४३.२;
८४. नीलपट्ट १.६४.३;
८५. नीलांग १.३१.३;
८६. नीलोक २.१५.४;
८७. पञ्चतन्त्रकार १.६२.४;
८८. पञ्चमेश्वर १.७८.३;
८६. परमेश्वर १.८४.३;
६०. पशुपतिधर २.१०.५;
६१. पाणिनि १.८३.१-२; २.१८.३; २.४८.५;
६२. पादुक १.३६.३; २.१४.४; २.१६.५;
६३. पापाक १.२६.४;
६४. पालित १.१.१;
६५. प्रियाक २.६.४;
६६. पुण्डरीक १.६७.५;
६७. पुरुषोत्तमदेव १.४८.३; १.७१.५; २.३३.५;
६८. पुंसोक १.६२.३;
६६. प्रजापति १.४२.४;

१००. प्रवरसेन २.७.३; २.३७.५;
१०१. बन्धसेन १.३८.२;
१०२. बलभद्र २.१५.१;
१०३. बलदेव १.७६.२;
१०४. बाण १.३.१-२; १.२१.१; १.२५.४-५; १.३०.१;
१०५. बिल्हण १.५.३; २.६.१-२;
१०६. बीजक १.१.४; १.३६.१;
१०७. ब्रह्मनाग १.६५.४-५;
१०८. ब्रह्महरि १.२०.४;
१०९. भगवद्गोविन्द १.२४.४;
११०. भगीरथ १.२८.२; १.५६.२; १.७४.३;
१११. भगीरथदत्त १.२२.३;
११२. भट्ट २.१५.३;
११३. भट्टनारायण १.१५.५;
११४. भट्टपालीय पीताम्बर १.५४.१;
११५. भट्ट श्रीनिवास १.१.२;
११६. भर्तृमेण्ठ २.१८.४; २.२१.१;
११७. भवभूति १.१२.२; १.१३.२ ; १.१४.४; १.१८.३; १.२२.४; १.४५.३; १.८०.२;
११८. भवग्रामीणवाथोक १.७०.४;
११९. भवानन्द १.३१.४; १.३३.२; १.३८.५; १.४३.२; १.६३.२; १.६४.२;
१२०. भानु १.६३.३;
१२१. भारवि १.३३.३; १.६७.१;
१२२. भावदेवी २.४७.१;
१२३. भास १.२३.२;
१२४. भासोक १.२६.१;
१२५. भिक्षु २.१.५;
१२६. भृंगस्वामी १.७६.५;
१२७. भेरी भ्रमक २.४६.१;
१२८. भोजदेव १.३.५; १.७.१; १.६६.४;
१२९. भ्रमरदेव २.६.५;
१३०. मंगल १.१६.२; १.४६.५;
१३१. मधु २:१४.२;

१३२. मनोक २.४८.१;
१३३. मनोविनोद २.२२.५;
१३४. मयूर १.१५.३; १.२८.५; १.४६.३; १.५३.१;
१३५. महादेव १.६७.३; २.२६.३; २.३३.१;
१३६. महानन्द १.३२.५;
१३७. महीधर १.५१.२;
१३८. माघ १.२७.१; १.४८.४;
१३९. माधव १.४८.५;
१४०. मुञ्ज १.६५.१-२;
१४१. मुरारि १.१५.४; १.२७.४; १.४०.१; १.७०.३; १.७२.२; १.७५.४; १.८२.२-३;
१४२. युवराज दिवाकर २.३१.४;
१४३. योगेश्वर १.६.१; १.८.३; १.९.२; १.१६.२-३; १.२७.२-३; १.३१.१; १.३२.३; १.३४.३; १.५८.३; १.८४.५; २.३३.३;
१४४. योगोक २.७.५;
१४५. रघुनन्दन १.३७.४;
१४६. रत्नाकर १.९३.१;
१४७. रथांग २.४.३;
१४८. रविनाग १.१२.१;
१४९. राक्षस १.९०.५;
१५०. राजोक २.२.२;
१५१. राजशेखर १.११.१; १.२०.१; १.२३.१; १.३३.१; १.४६.३; १.६८.३; १.६९.१; १.६९.३; १.७६.२; १.७७.१-२; १.७८.४; १.७९.३-४; १.८०.१; १.८४.५; १.८५.१; १.८६.४; १.९३.१; १.९४.४; २.२.४; २.३.१; २.५.४; २.११.३; २.१८.१-२; २.१९.१-३; २.२०.४; २.२२.२; २.२५.२-३; २.२८.३-४; २.३०.३; २.३४.१; २.३५.१; २.३६.३; २.५०.२;
१५२. रुद्र १.७.२; १.८.१;
१५३. रुद्रट २.६.१-२; २.७.४; २.१५.२; २.१७.१-२; २-३७.२; २.३८.१-२; २.३९.३-५; २.४०.४।
१५४. रूपदेव १.५१.१;
१५५. लक्ष्मणसेन १.५६.२; २.१६.२;
१५६. लक्ष्मणसेनदत्त १.५५.३;
१५७. लक्ष्मीधर १.२४.१; १.३६.१-२; १.४८.१; १.५७.१; १.८६.५; २.११.४; २.२५.५;

१५८. लड्डूक २.२६.५;
१५९. ललितोक १.६४.१;
१६०. वनमाली १.५१.४;
१६१. वररुचि १.११.५; १.६८.४;
१६२. वर्धमान १.५४.३;
१६३. वराह १.४१.२;
१६४. वराहमिहिर १.२.१;
१६५. वल्लन १.३.३; १.६३.५;
१६६. वसन्तदेव १.१.३; १.३७.३;
१६७. वसुकल्प १.७२.१; १.७३.२; १.७५.१; १.७६.१; १.८३.३;
१६८. वसुकल्पदत्त १.४.१; १.२६.१-२; १.४६.२;
१६९. वसुरथ १.४७.२
१७०. वसुसेन १.४३.४;
१७१. वाक्कूट २.३२.४;
१७२. वाक्पतिराज १.४०.२-३; १.४३.३; १.४४.५; १.५६.१; १.६३.१; १.६५.१;
१७३. वाग्वीण २.३.२;
१७४. वाचस्पति १.८.४; २.३३.२;
१७५. वाच्छोक १.२०.२;
१७६. वामदेव १.१३.५; १.२२.५; २.२४.३;
१७७. वासुदेव २.२३.४;
१७८. वासुदेव ज्योतिष १.४७.१;
१७९. वाहूट २.२६.१-२;
१८०. विकटनितम्बा २.४.४;
१८१. विक्रमादित्य १.४४.३; १.७८.५;
१८२. विद्या १.२.३; २.१२.१; २.१३.१; २.१४.१; २.२१.४;
१८३. विधूक २.२.१;
१८४. विनयदेव १.८६.१;
१८५. विभाकर १.२.५;
१८६. विमोक २.२२.१;
१८७. विम्बोक २.४०.२;
१८८. विरिञ्चि १.३५.३-४; १.५३.४; १.६५.३;
१८९. विशाखदत्त १.७.५; १.४६.५;

१६०. विश्वेश्वर १.७२.३;

१६१. वीरसरस्वती १.६२.५;

१६२. वीर्यमित्र १.६.१; १.८८.२;

१६३. वैतोक २.४.१-२;

१६४. वैद्यगदाधर १.४.५; १.५.४-५; १.६.३; १.१५.१; १.१६.२; १.१६.३; १.१८.४; १.२८.२; १.४२.२; २.१३.४।

१६५. वैद्यधन २.४५.१;

१६६. वैद्यश्रीजीवदास १.८०.५;

१६७. शंकरदेव १.२७.५; १.६६.२; १.८२.४;

१६८. शतानन्द १.८.५; १.१६.१; १.२६.५; १.५२.२; १.६०.३; १.८३.२; २.२.५;

१६९. शर्व १.७६.५; १.८६.३;

२००. शरण १.६१.२-३; १.८७.१; २.१३.२-३; २.३६.४;

२०१. शरणदेव १.६६.५;

२०२. शान्त्याकर १.७५.५;

२०३. शालूक १.७०.१;

२०४. शिल्हण २.२५.४; २.२६.४; २.२७.२;

२०५. शुभांक १.५३.३; १.५६.२; १.५६.३;

२०६. शूद्रक २.१७.५

२०७. शोभाकर १.४७.३;

२०८. श्रीकण्ठ १.२.२; १.८३.५;

२०९. श्रीधरनन्दी १.४६.३-४;

२१०. श्रीपति १.८६.१;

२११. श्रीमित्र १.४६.४;

२१२. श्रीहर्ष २.६.१;

२१३. श्रृंगार २.२६.२; २.३५.२;

२१४. संघमित्र १.८.२;

२१५. संघश्री १.४६.१;

२१६. सञ्चाधर १.२१.२-५;

२१७. समन्तभद्र १.६३.२;

२१८. सरसीरुह १.६२.३;

२१९. सागर १.६५.५; १.८५.२;

२२०. सागरधर १.२०.३;

२२१. सिह्लण १.८६.४;

२२२. सुधाकर १.१७.४;

२२३. सुरभि १.७७.३-४; १.७६.१; १.८७.५;

२२४. सूरि १.३८.३;

२२५. सेन्तुत १.३५.५

२२६. सूर्यधर २.३८.४

२२७. सेह्लोक १.७३.४; २.४.२

२२८. सोलूक १.६६.२;

२२६. सोल्लूक १.६०.१;

२३०. हनुमान् १.१७.१; १.४४.१; २.१.३;

२३१. हरि १.२.४; १.३.४; १.२५.२; १.३४.४; १.७६.३; १.८१.४; १.८७.३;

२३२. हरिदत्त १.८१.५; १.८५.३;

२३३. हलायुध १.३०.५; १.६३.४;

२३४. हर्षदेव १.१४.५; १.२३.४-५; १.२४.२;

इस प्रकार 'सदुक्तिकर्णामृत' के वर्तमान प्रकाशित अंश में कुल २३३ कवियों के पद्य कविनामसहित उद्धृत हैं। इनके अतिरिक्त एक बड़ी संख्या ऐसे पद्यों की है, जिनके रचयिता अज्ञात हैं। इन्हें 'कस्यचित्' कहकर उद्धृत किया गया है। अज्ञात कवि नाम वाले इन पद्यों का विवरण इस प्रकार हैं-

१.१.५; १.७.३-४; १.६.४; १.१०.२-४; १.१२.५; १.१३.१,३; १.१४.१,३; १.१६.५; १.१८.५; १.२०.५; १.२२.२; १.२३.३; १.२६.२-३; १.२७.२; १.२८.१; १.३०.२-३; १.३१.५; १.३२.२; १.३७.५; १.३६.५; १.४१.५; १.४२.१; १.४५.५; १.४७.४; १.५०.१; १.५०.५; १.५१.१; १.५१.३; १.५२.३; १.५२.५; १.५३.५; १.५६.३-५; १.५७.४; १.५८.१; १.५८.४-५; १.५६.१; १.६०.२,४; १.६१.४-५; १.६२.१-२; १.६४.५; १.६५.४; १.६६.१,३,५; १.६८.१; १.७०.२; १.७०.५; १.७४.१,४; १.७५.३; १.७६.४; १.८०.३-४; १.८१.२-३; १.८२.५; १.८३.४; १.८४.२; १.८६.१; १.८८.१,३,५; १.८६.३,५; १.६०.१-२; १.६१.४,५; १.६२.१; १.६३.४; १.६४.५; २.२.३; २.३.३-५; २.४.५; २.६.३; २.६.३; २.१२.३; २.१४.५; २.१५.५; २.१६.१; २.१८.५; २.१६.४-५; २.२०.५; २.२१.३; २.२२.४; २.२३.२; २.२७.५; २.२८.१-२; २.२६.३; २.३१.१,५; २.३२.१-२,५; २.३४.४; २.३६.१,५; २.३८.३; २.३६.१-२; २.४१.२-३,५; २.४२.३-५; २.४३.४; २.४४.४-५; २.४५.३-५; २.४६.५; २.४८.२; २.४६.५; २.५०.१।

उपर्युक्त कविनामों में से संस्कृत-जगत् में सुपरिचित नाम केवल ४६-४७ है, जिनमें से निम्नलिखित कवि प्रमुख हैं- अभिनन्द, अमरसिंह, अमरुक, उद्भट, उत्पलराज, कवि पण्डित श्रीहर्ष, कालिदास, कुलशेखर वर्मा, कृष्ण मिश्र, क्षेमेश्वर, जयदेव, दण्डी, द्वैपायन

(व्यासपाद), धनपाल, धर्मकीर्त्ति, धोयी अथवा धोयीक, पच्चतन्त्रकार, पाणिनि, प्रवरसेन, बाण, बिल्हण, भट्टनारायण, भर्तृमेण्ठ, भवभूति, भारवि, भास, भोजदेव, मयूर, माघ, मुञ्ज मुरारि, राजशेखर, रुद्रट, लक्ष्मीधर, वररुचि, वराहमिहिर, वाक्पतिराज, श्रीहर्ष, समन्तभद्र, हलायुध और हर्ष इत्यादि।

शेष १८६ कवि, जिनके पद्य इस संकलन में सम्मिलित हैं, संस्कृत-जगत् में प्रायः अज्ञात ही हैं। ज्ञात कवियों में से भी अनेक ऐसे हैं, जिनके इस संकलन में संकलित बहुसंख्यक पद्यों से हम प्रायः अपरिचित हैं। जैसा कि नामों से स्पष्ट है, संकलित कवियों में से अधिकांश बंगाल के हैं। वे लोक-जीवन से गहराई से जुड़े हैं। परिनिष्ठित कवियों में, सर्वाधिक पद्य राजशेखर के हैं। उसके बाद अमरुक और रुद्रट का स्थान है। अचर्चित कवियों में उमापतिधर, आचार्यगोपीक, जलचन्द्र, केशटाचार्य, नरसिंह, भवानन्द, योगेश्वर, लक्ष्मीधर, वैधगदाधर और हरि के बहुसंख्यक पद्य संकलित हैं। कवयित्रियों में भावदेवी विकटनितम्बा और विद्या को विशेष स्थान मिला है। पाणिनि के नाम से भी चार पद्य संकलित हैं। संकलयिता ने अपने आश्रयदाता लक्ष्मणसेन के भी दो पद्य दिये हैं, लेकिन स्वयं अपना कोई भी पद्य उसने संकलन में समुचित स्थान पर नहीं रखा है।

विषय-वस्तु के विवरणार्थ रचित पद्यों से स्पष्ट है कि संकलनकर्त्ता स्वयं भी अच्छे कवि थे। अपने पद्य न देने के मूल में, संभवतः, संकलन के प्रति तटस्थता का दृष्टिक्कोण ही निहित हो सकता है। संकलनकर्त्ता केवल सर्वश्रेष्ठ और पाठकों के लिए उपादेय पद्यों के संकलन के लिए ही सचेष्ट दिखाई देते हैं। ऐसे संग्रहों में जिनमें विषयानुसार पद्य-संकलन किया जाता है, कवि के स्थान पर, स्वभावतः काव्य की गुणवत्ता पर अधिक ध्यान केन्द्रित रहता है। देव-प्रवाहान्तर्गत, बहुसंख्यक पद्यों के अन्त में 'वः पातु' की आवृत्ति, इन श्लोकों की नाट्य-सम्बद्धता की सूचक है, क्योंकि नाटकों के नान्दी-पाठों में ही प्रायः इस प्रकार की कामना या प्रर्थना की गई है। कुछ पद्य समस्या-पूर्त्ति के निमित्त भी प्रणीत प्रतीत होते हैं। केशवसेन (१.५४.५) तथा लक्ष्मणसेनदत्त (१.५५.२) दोनों के ही पद्यों के अन्त में 'राधामाधवयोर्जयन्ति.......स्मेरालसा दृष्टयः' की आवृत्ति से इसकी पुष्टि होती हैं। संकलित कवियों में से अधिकांश अपरिचित कवि लोकनिष्ठ परम्परा से सम्बद्ध प्रतीत होते हैं। कवियों के कक्कोल, कापालिक, केवट्टपपीप, केशट, केशरकोलीयनाथोक, कोलाहल, गोसोक, चण्डाल, चण्डालचन्द्र, चित्तप, छित्तप, डिम्बोक, तैलपाटीय गागांक, दड्क, दनोक, नग्न, नटगांगोक, नीलोक, पापाक, पुंसोक, भवग्रामीणवाथोक, भेरीभ्रमक, मंनोक, राक्षस, लडूक, वराह, वल्लन, वाच्छोक, वाहूट, वैतोक, शालूक, सेन्तुत, सोल्लूक और सेहूलोक जैसे नामकरण उनकी अनभिजात स्थिति के स्पष्ट द्योतक हैं। इन कवियों के पद्यों की उत्कृष्टता से स्पष्ट है कि उस युग में संस्कृत भाषा की प्रवीणता समाज के सभी वर्णों, यहाँ तक कि निम्न समझे जानेवाले वर्णों में भी प्रचुरता से उपलब्ध थी। आर्याविलास जैसे कवि-नाम से स्पष्ट है कि एक ही छन्द में काव्य-रचना कर के भी कवियों को प्रसिद्धि प्राप्त हो जाती थी। नैषधीयचरितकार और रत्नावलीकार श्रीहर्ष के नामों मे

अन्तर बनाये रखने के लिए संकलनकर्त्ता ने नैषधीयचरितकार श्रीहर्ष के नाम से पहले 'कविपंडित' विशेषण का प्रयोग किया है।

अमरु अथवा अमरुक के बहुसंख्यक पद्य 'अमरुशतक' में उपलब्ध हैं, लेकिन कुछ ऐसे भी हैं, जो अनुपलब्ध हैं। राजशेखर के भी बहुसंख्यक पद्य उनके 'विद्धशालभञ्जिका' 'बालभारतम्' तथा 'काव्यमीमांसा' में मिल जाते हैं। प्रसिद्ध कवियों के 'सदुक्तिकर्णामृतम्' में सम्मिलित पद्यों के अन्यत्र उपलब्ध पाठों में भी अन्तर उपलब्ध होता है।

देव-प्रवाह - इसके अन्तर्गत ब्रह्मा, शिव, विष्णु, दुर्गा, गणेश, सरस्वती और दशावतारों प्रभृति बहुसंख्यक देवी-देवताओं से सम्बद्ध पद्य संकलित हैं। इन पद्यों में देवताओं की सीधी-सपाट स्तुतियाँ भर नहीं हैं। अधिकांश पद्यों में देव-स्वरूपों और चरित्रों में बहुत रोचक और नवीन उद्भावनाएँ की गई हैं। लोकमानस में हिन्दू देवियों और देवों के विषय में विद्यमान प्रचलित अवधारणाओं को कवियों ने नये और बहुरंगी परिधान में सजाकर प्रस्तुत किया है। उनमें तर्क और औचित्य का समावेश किया है। उदाहरण के लिए, ब्रह्मा के चार मुखों की आवश्यकता इसलिए है, ताकि वे चारों लोकपालों से एक साथ विचार-विनिमय कर सकें। मधु-कैटभवध-प्रसंग का उल्लेख करते हुए कवियों ने उद्भावना की है कि चार मुखों में से एक मुख से उस समय ब्रह्माजी विष्णु को जगाने के लिए देवी की स्तुति कर रहे थे, तीसरे से मधु-कैटभ संज्ञक दैत्यों को घुड़कियाँ दे रहे थे और चौथे से भगवती महालक्ष्मी की घबराहट दूर करने का प्रयत्न कर रहे थे। भगवान् शिव, उनके स्वरूप, परिवार और परिकर के विषय में नव-नवोन्मेषशालिनी उद्भावनाएँ करने में कवियों ने विशेष रुचि ली है। शिव की आठ मूर्त्तियों के विषय में विस्तार से विचार किया गया हैं। शिव के आपाततः विरोधाभासी स्वरूप की विसंगतियों को आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। शिव-पार्वती का हास-परिहास भारतीय दाम्पत्य-जीवन के सहज उल्लास का द्योतक है। गृहस्थ-जीवन की कठिनाइयों के सन्दर्भ में शिव-परिवार के प्रति सहानुभूति जगाई गई है। शिव के गणों की पारस्परिक स्पर्धा और शिव के योगक्षेम के विषय में गणों की चिन्ता को ध्यान में रखकर कवियों ने बड़ी मीठी चुटकियाँ ली हैं। सपत्नी के रूप में गंगा को लेकर पार्वती की चिन्ता, चन्द्रमा की कला से स्रवित अमृत से कण्ठस्थ कपालों का जीवित हो उठना, ताण्डव-नृत्य के समय उठी हलचलों, शिव-पार्वती के श्रृंगारिक प्रसंगों, शिव के द्वारा विभिन्न परस्पर विराधी भावों और रसों की युगपत् अनुभूति, अर्द्धनारीश्वरस्वरूप की समस्याओं और विडम्बनाओं एवं कार्त्तिकेय के बालस्वरूप ने कवियों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट किया है। भारतीय वाङ्मय में सुपरिचित श्रृंगाराध्यात्म यहाँ भी प्रायः केन्द्र में रहा है। विष्णु और शिव के एकीभूत शरीर और स्वरूप की उद्भावना प्रायः नवीन है। संभवतः इसके मूल में शैव और वैष्णव सम्प्रदायों के मध्य में विद्यमान अन्तर को कम करने की भावना निहित रही होगी। इस एकीभूत स्वरूप के उपासक के रूप में ब्रह्माजी के निरूपण से तीनों महान् देवताओं को एकसूत्र में गूँथने का प्रयत्न कवियों ने किया है।

दशावतारों के विषय में भी, कवियों ने बड़ी कमनीय कल्पनाएँ की हैं। मत्स्यावतार का स्वरूप यदि सामान्य रूप से कवियों को ओंकारात्मक दिखा है, तो हिलती हुई पूँछ 'नेति-नेति' का उद्घोष करती प्रतीत हुई है। वराहावतार की दाढ़ को अप्सराएँ चन्द्रकला समझ रही हैं और दिग्गजवृन्द कमलनाल। नृसिंह के नखों की समानता कहीं कन्दाकुंर से और कहीं पलाश की कलिकाओं से स्थापित है।

नृसिंहावतार के श्रृंगारी स्वरूप की उद्भावना में भी नवीनता है। क्रोध और श्रृंगार की युगपत् स्थितियाँ सहृदयों का ध्यान विशेषरूप से आकृष्ट करती हैं। नृसिंह के साथ कामक्रीड़ा में संलग्न लक्ष्मी में भय और आनन्द के भावों का एक साथ आविर्भाव निःसन्देह रोमांचकारी है।

कृष्णावतार-प्रसंग में विष्णु के रामादिरूप में पूर्वगृहीत अवतारों का समावेश दृष्टिकोण की विशालता का व्यञ्जक है। लक्ष्मी के समुद्र से ऊपर उठते समय की विभिन्न स्थितियों और देवों में हुई बहुविध प्रतिक्रियाओं का चित्रण भी कवियों ने बड़ी सूक्ष्मता से किया है। चन्द्रमा भारतीय साहित्यकारों का सदैव बहुत प्रिय आलम्बन रहा है। बहुरूपिया चन्द्रमा के विषय में 'सदुक्तिकर्णामृत' को कवियों की बहुविध नवीन उद्भावनाएँ सहृदयों के हृदय को निश्चित ही गहरायी से गुदगुदाती हैं।

वायु को भी देव-प्रवाह में ही स्थान मिला है। संभवतः इसका कारण वैदिक युग से ही मरुद्गण को देवकोटि में रखने की परम्परा ही हो सकती है। लेकिन संकलित पद्यों में प्रायः वायु की देवता रूप में स्तुति न कर के उसके आन्नदमय स्वरूप को प्रधानता दी गई है। विभिन्न कालों में समुद्र, मलयगिरि और नदी-तट से प्रवाहित वायु के सुखस्पर्शी झोंकों का वर्णन कवियों की विशिष्ट उपलब्धि है।

कामदेव को भी, श्रृंगार-प्रवाह में स्थान न देकर देव-प्रवाह में ही सम्मिलित किया गया है, लेकिन यहाँ भी उसकी रसमयता को ही विशेष रूप से उद्घाटित किया गया है। कामदेव, कवियों को, कहीं स्त्रियों को, रति की शिक्षा-दीक्षा प्रदान करने वाला कुलगुरु लगा है तो कहीं सुरतलीलारूपी नाटिका का सूत्रधार। रस-यज्ञ के पुरोधा के रूप में भी उसकी चर्चा हुई है।

इस प्रकार, 'सदुक्तिकर्णामृत' में संकलित देव-विषयक पद्यों में कोरी धार्मिकता अथवा माइथालॉजी साहित्यिक गुण को कहीं भी आच्छन्न करती हुई नहीं दिखलाई देती है। इन पद्यों में, सभी देवी-देवता मानवता की कसौटी पर खरे उतरते हैं। लोकमानस की बहुरंगी अवधारणाओं से भी वे मण्डित हैं। देवों के चयन में, श्रीधरदास ने सभी सम्प्रदायों में मान्य देवों को निष्पक्ष और समभाव से स्थान दिया है। इसका केवल एक ही अपवाद है, और वह यह कि जैन सम्प्रदाय के किसी तीर्थंकर को इसमें स्थान नहीं मिला है। संभवतः इसका कारण, बंगाल में, इस सम्प्रदाय की उस युग में प्रभावी स्थिति न होना ही रहा होगा।

भक्ति-भावना की उत्कृष्टता - हरिभक्ति के प्रसंग में, इस संकलन में, श्री कुलशेखर(वर्मा) के चार पद्य दिये गये हैं। श्री कुलशेखर की गणना द्वादश आलवार भक्तों में की जाती है। इससे स्पष्ट है कि ११वीं-१२वीं शती ई. तक भक्ति की मन्दाकिनी दक्षिण भारत से निकलकर सुदूर बंगाल तक पहुँच चुकी थी। भक्ति-भावना की उत्कृष्टता के लिए 'सदुक्तिकर्णामृत' से यहाँ मात्र उनके दो पद्यों को उदाहृत करना ही पर्याप्त है-

'मज्जन्मनः फलमिदं मधुकैटभारे !
मत्प्रार्थनैव मदनुग्रह एष एव।
त्वद्भृत्यभृत्यपरिचारक भृत्यभृत्य
भृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ!। '

तथा -

'नाहं वन्दे तव चरणयोर्द्वन्द्वमद्वैतहेतोः
कुम्भीपाकं गुरुमपि हरे! नारकं नापनेतुम्।
रम्या रामा मृदुतनुलता नन्दने नाभिरन्तुं!
भावे भावे हृदयभवने भावयेयं भवन्तम् ।।'[1] (१.६४.३-४)

इसी प्रसंग में, 'गंगाप्रशंसा' के अन्तर्गत कविवर पादुक की यह भावना भी उल्लेख्य है, जिसमें उन्होंने गंगा के तट पर श्वपाक अथवा काक बन कर रहने की इच्छा प्रकट की है-

'प्रसीद श्रीगंगे! मृडमुकुटचूडाग्र सुभगे !
तवोल्लोलोन्मूलः स्खलतु मम संसारविटपी।
अथोत्पत्स्ये भूयस्त्रिजगदधिराज्येऽपि न तदा
श्वपाकः काको वा भगवति भवेयं तव तटे ।।

ऐतिहासिक सन्दर्भ

'सदुक्तिकर्णामृत' में एक बार यवन-सुन्दरियों के कपोलों की कान्ति से चन्द्रबिम्ब की समानता स्थापित की गई है। इससे प्रतीत होता है कि उस समय तक यूनानी स्त्रियाँ भारत में कहीं-कहीं दिख जाती थीं और उनका श्वेतपीताभ सौन्दर्य रसिकों की स्पृहा का कारण था। इसी क्रम में, दो स्थलों पर हूण-सुन्दरियों का भी उल्लेख हुआ है -

---

१. यह मुकुन्दमाला स्तोत्र में उपलब्ध है।

'उद्दर्पहूणरमणीरमणोपमर्द
भुग्नोन्नतस्तननिवेशनिभं हिमांशोः।
बिम्बं कठोरविसकाण्डकडारगौरे -
र्विष्णोः पदं प्रथममग्रकरैर्व्यनक्ति।।' (१.७४.२)

तथा -

'हूणीनां हरिणांकपाण्डुमधुर श्रीभाजि गण्डस्थले,
शोभां कामपि बिभ्रति प्रणिहिताः कश्मीरविच्छित्तयः।' (२.२०.२)

इनमें से प्रथम पद्य अपराजितरक्षित का है, और दूसरा उमापतिधर का। पद्यों से स्पष्ट है कि हूण आक्रमणकारी उस समय तक कश्मीर में रह रहे थे, और उनकी स्त्रियाँ होती हुई भी उद्दण्ड मानी जाती थीं। आक्रमणकारियों की स्त्रियों के प्रति संभवतः यह धारणा बहुत अस्वाभाविक भी नहीं लगती।

अनुभूति और अभिव्यक्ति

'सदुक्तिकर्णामृत' में संकलित कवियों का अनुभव-संसार बहुत व्यापक है; साथ ही बहुत गहरा भी। इनकी अभिव्यक्ति भी बहुत पैनी है। भाव-सौन्दर्य, रस-निष्पत्ति, अलंकार-सौष्ठव और प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति की दृष्टि से ये सभी उच्चकोटि के समर्थ एवं प्रतिभाशाली कवि हैं।

विरहग्रस्त श्रीराम की तीव्र वेदना को व्यक्त करने वाला वासुदेव ज्योतिष नामक कवि का यह पद्य उल्लेखनीय है-

'सरसि विरसः प्रस्थे दुःस्थो लतासु गतादरः
प्रतिपरिसरं भ्रान्तोद्भ्रान्तः सरित्सु निरुत्सुकः।
दददपि दृशौ कुञ्जे-कुञ्जे रुदन्नुपनिर्झरं
सुचिरविरहक्षामो रामो न कैरुपरुध्यते।।' (१.४७.१)

किसी विरहिणी के प्रबल सन्ताप को व्यक्त करने वाला योगेश्वर का निम्नोक्त श्लोक भी उदाहार्य है, जिसमें सन्ताप इतना तीव्र है कि उसमें प्रस्थभर अनाज पकाया जा सकता है तथा कण्ठ में पड़े हारों की मणियाँ खील की तरह चट्-चट् करती हुई फूटकर बिखर रही हैं-

'एतस्याः स्मरसंज्वरः करतलस्पर्शैः परीक्ष्योऽद्य न
स्निग्धेनापि जनेन दाहभयतः प्रस्थं पचः पाथसाम्।

निर्बीजीकृतचन्दनौषधविधौ तस्मिंश्चटत्कारिणो
लाजस्फोटममी स्फुटन्ति मणयो विश्वेऽपि हारस्रजाम्।।'(२.३३.३)

व्यञ्जनावृत्ति के सन्दर्भ में, श्रृंगार-प्रवाहगत 'गुप्तासती' और 'विदग्धासती' संज्ञक शीर्षकों के अन्तर्गत निविष्ट पद्य विशेष उल्लेखनीय हैं। सुकवि बलभद्र का यह पद्य द्रष्टव्य है, जिसमें कोई समझदार कुलटा स्त्री किसी राहगीर को ऊपर से तो अपने घर में ठहरने से मना करती है, लेकिन गूढ अभिप्राय उसका यही है कि ठहरने के लिए मेरे घर से अच्छा स्थान तुम्हें अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा, अतः मेरे घर में निःसंकोच ठहर जाओ-

'ग्रामान्ते वसतिर्ममातिविजने दूरप्रवासी पति-
र्गेहे देहवती जरेव जरती श्वश्रूर्द्वितीया परम्।
एतत्पान्थ! वृथा विडम्बयति मां बाल्यातिरिक्तं वयः
सूक्ष्मं वीक्षितुमक्षमेह जनता वासोऽन्यतश्चिन्त्यताम्।।' (२.१५.१)

देव-प्रवाह में श्रीकृष्ण का यह कथन भी निगूढ़ व्यंग्यार्थगर्भित है, जिसमें अन्य गोपाल बालकों को तो वे साँपों, बन्दरों, यमुनागत घड़ियालों और बाघों का भय दिखाकर वृन्दावन में जाने से मना कर देते हैं, लेकिन आँख दबाकर राधाजी को संकेत करते हैं कि उपर्युकत विवरण तुम्हारे लिए नहीं है, अर्थात् तुम्हें पूर्ववत् वृन्दावन में आना है-

'व्यालाः सन्ति तमालवल्लिषु वृतं वृन्दावनं वानरै-
रुन्नक्रं यमुनाम्बु घोरवदनव्याघ्राः गिरेः सन्धयः।
इत्थं गोपकुमारकेषु वदतः कृष्णस्य तृष्णोत्तर-
स्मेराभीरवधूनिषेधि नयनस्याकुञ्चनं पातु वः।।'

'सदुक्तिकर्णामृत' में प्रतीयमान अर्थ के साथ स्वभावोक्ति भी कहीं-कहीं बहुत आनन्द देती है। जैसा कि कहा गया, है संकलित कवियों ने जीवन और जगत् को गम्भीरता से देखा-परखा है और उसको यथातथ्य अंकित करने का प्रयत्न किया है। समग्र भारत भर में फैले मानवजीवन को समझने में, उनके सामने न दूरियाँ बाधा बनी हैं और न विभिन्न बोलियाँ ही। उस युग में, जब आवागमन के साधन सीमित थे, इन कवियों ने कर्णाटक, केरल, द्रविड़ (आज़ का तमिलनाडु), मालवा और लाट प्रभृति दूरस्थ प्रदेशों में रहनेवाली स्त्रियों के सौन्दर्य, वेश-भूषा, साज-सज्जा और हाव-भावों के जो यथार्थ चित्र उकेरे हैं, वे विस्मयजनक हैं। रात में ककड़ी का खेत बचानेवाली, किसी ग्राम्य स्त्री का यह चित्र जिसे कवयित्री विद्या ने अंकित किया है, द्रष्टव्य है-

'मन्वे रोमाञ्चितांगी रतिमृदिततनोः कर्कटीवाटिकायाम्
कान्तस्याङ्गे प्रमोदादुभयभुजपरिष्वङ्गकण्ठे निलीना।

पादेन प्रेङ्खयन्ती मुखरयति मुहुः पामरी फेरवाणां
रात्रावुत्त्रासहेतोर्वृतिशिखरलतालम्बिनीं कम्बुमालाम्।।' (२.२१.४.)

मद्यपान करने के बाद लड़खड़ाते हुए चलने वाले बलरामजी का यह वर्णन भी स्वभावोक्ति के उत्कर्ष का द्योतक है, जो कवि पुरुषोत्तमदेव की रचना है-

'भ-भ-भ्रमति मेदिनी ल-ल-लम्बते चन्द्रमाः कृ-कृष्ण व-वद द्रुतं ह-ह-हसन्ति किं वृष्णयः। शिशीधु मु-मु- मुञ्च मे प-प-पानपात्रे स्थितं मदस्खलितमालपन् हलधरः श्रियं वः क्रियात्।। ' (१.४८.३)

इसी प्रकार नृसिंह के नखों के, हिरण्यकशिपु के शरीर के विभिन्न भागों में, धँसने पर, विभिन्न प्रकार की जो ध्वनियाँ हुईं, उनका बड़ा सजीव विवरण सँजोया है वाक्पतिराज ने-

'चटच्चटिति चर्मणि च्छमिति चोच्छलच्छोणिते
धगद्-धगदिति मेदसि स्फुटतरोऽस्थिषुष्ठादिति।।
पुनातु भवतो हरेरमरवैरिनाथोरसि
क्वणत्करजपञ्जरक्रकचकाषजन्मा रवः।।'

ध्वनिवादियों के अनुसार यद्यपि स्वभावोक्तिपरक उपर्युक्त सभी पद्य चित्रकाव्य की श्रेणी में ही समाविष्ट हैं, किन्तु आधुनिक काव्यालोचकों की दृष्टि से, वस्तुगत यथार्थ की प्रस्ताविका ये रचनाएँ कवि की विशिष्ट वर्णनानिपुणता की द्योतक हैं। साथ ही, लोकतत्त्वों के प्रति विशेष आग्रह भी इनमें मुखरित है। गुन्द्रा के फूलों (१.८८.५) और शलाटु (कन्द) के फलों (२.२१.२) जैसी नई-नई उपमाओं का सन्धान कवियों की लोकोन्मुखी प्रवृत्ति का सूचक है। लेकिन स्वभावोक्ति के उपर्युक्त वैशिष्ट्य का अभिप्राय सपाटबयानी मात्र नहीं है।

जहाँ आवश्यक लगा, इन कवियों ने उन्मुक्त रूप से प्रतीकात्मकता का आश्रय भी लिया है। कवि वेतोक का निम्नलिखित पद्य, इस सन्दर्भ में, अवलोकनीय है, जिसमें नायिका के शरीर में यौवन के पदार्पण से परिलक्षित होनेवाले परिवर्तनों का विवरण बड़ी खूबसूरती से, मात्र प्रतीकों के माध्यम से ही दिया गया है-

'दृष्टा काञ्चनयष्टिरद्य नगरोपान्ते भ्रमन्ती मया,
तस्यामद्भुतमेकपद्ममनिशं प्रोत्फुल्लमालोकितम्।
तत्रोभौ मधुपौ तथोपरि तयोरेकोऽष्टमी चन्द्रमा -
स्तस्याग्रे परिपुञ्जितेन तमसा नक्तन्दिवं स्थीयते।' (४.२.३.)

आलंकारिक अभिव्यक्तियों के सन्दर्भ में भी, 'सदुक्तिकर्णामृत' में संकलित कवियों की रचनाएँ हमारा ध्यान आकृष्ट करने में समर्थ हैं। अलंकार के कतिपय कमनीय प्रयोग ये हैं -

रूपक - चन्द्रमा में विद्यमान कलंकचिह्न को एक मृगशावक के रूप में देखा है कविवर कापालिक ने। यह मृगशावक चन्द्रमारूपी चन्द्रकान्तमणिनिर्मित शिला पर बैठा हुआ आराम से जुगाली करके ज्योत्स्नारूपी रोमन्थ-फेन निकाल रहा है -

'शीतांशुः शशिकान्तनिर्मलशिला तस्यां प्रसुप्तः सुखं
जग्ध्वा ध्वान्ततृणांकुरान्मृगशिशुः खण्डेन्द्रनीलं त्विषः।
निद्रामुद्रितलोचनालसतया रोमन्थफेनच्छटां
रोदः कन्दरपूरणाय तनुते ज्योत्स्नाच्छलेनामुना।।' (१.७८.१)

श्लेष - कृष्ण और राधा के मध्य हुए प्रश्नोत्तरों (१.५६) में श्लेष अलंकार का उन्मुक्त प्रयोग हुआ है। कविवर शुभांक का यह पद्य द्रष्टव्य है, जिसमें 'हरि' विष्णु, बन्दर), 'कृष्ण' (भगवान् कृष्ण, काले रंग का पशु), 'मधुसूदन' (मध्वरि विष्णु, भ्रमर) प्रभृति अनेक श्लिष्ट पदों के माध्यम से बड़ी रोचक चुटकियाँ ली गई हैं -

'कोऽयं द्वारि हरिः प्रयाह्युपवनं शाखामृगेणात्र किं
कृष्णोऽहं दयिते! बिभेमि सुतरां कृष्णः कथं वानरः।
मुग्धेऽहं मधुसूदनो व्रज लतां तामेव पुष्पान्विताम्
इत्थं निर्वचनीकृतो दयितया ह्रीणो हरिः पातु वः।।' (१.५६.२)

विरोधाभास - गंगा के विषय में कवि कोलाहल का यह पद्य विरोधाभास का बड़ा आकर्षक चित्र उपस्थित करता है, जिसमें गंगा का जल अग्नि को बुझाने के स्थान पर उसे प्रज्वलित करता है, और (पापरूपी) वृक्ष को सींचकर बढ़ाने के स्थान पर उसका बढ़ना रोक देता है-

'ब्राह्मं तेजो द्विजानां ज्वलयति जडिमप्रक्रमं हन्ति बुद्धेः
वृद्धिं सेकेन सद्यः शमयति बलिनो दुष्कृतानोकहस्य।
ऊर्ध्वं चैवात्र लोकादपि नयतितरां जन्मिनो मग्नमूर्तीं -
स्त्वद्धारावारि काशीप्रणयिनि परितः प्रक्रिया कीदृशीयम्।।'
(१.३५.१)

भ्रान्तिमान् - 'चन्द्ररश्मि' के प्रसंग में संकलित कविराज राजशेखर का यह पद्य भ्रान्ति की स्थितियों का रोचक विवरण प्रस्तुत करता है, जिसमें चन्द्रमा की किरणों को बिलाव दूध समझकर चाट रहा है, हाथी कमलनाल समझकर बटोर रहा है तथा संभोग के पश्चात् नग्न रमणी चादर समझकर ओढ़ रही है, इस प्रकार चन्द्रमा ने अपनी उन्मादिनी किरणों से सब उलट-पलट दिया है-

'कपाले मार्जारः पय इति कराँल्लेढि शशिन-
स्तरुच्छिद्रप्रोतान्चितमिति करी संकलयति।
रतान्ते तल्पस्थान् हरति वनिताऽप्यंशुकमिति
प्रभामत्तश्चन्द्रो जगदिदमहो विप्लवयति।।' (१.७७.२)

इसी प्रसंग में, किसी अज्ञात कवि का यह पद्य भी उदाहार्य है, जिसमें कहा गया है कि चाँदनी इतनी प्रौढ़ है, कि नीली यमुना नदी शुभ्र गंगा लग रही है, विन्ध्याचल हिमालय लग रहा है, पृथ्वी रजतपात्र प्रतीत हो रही है और चकवा हंस दिख रहा है-

'चन्दे सान्द्रमरीचिसंचयजुषि प्राचीप्रियाप्रेयसि,
प्राप्ते प्रौढतमिस्रभावतिमिरध्वंसप्रशंसाविथौ।
कालिन्दी सुरनिम्नगीयति तथा विन्ध्यो हिमाद्रीयति
क्षोणी राजतभाजनीयति तथा चक्रोऽपि हंसीयति।।'

उल्लेख - कृष्ण के युवास्वरूप के विषय में भट्ट पालीयपीताम्बर का यह पद्य उल्लेखनीय है, जिसमें कहा गया है कि वृद्धाओं ने युवा कृष्ण का खिन्नता से, कन्याओं ने अव्यक्त आनन्द से, वेश्याओं ने आहें भरकर, दासियों ने अपनी पहुँच से परे समझकर और कुलटाओं ने व्याकुलतापूर्वक देखा -

'सोत्तापं जरतीभिरस्फुटरसं बालाभिरुन्मीलित-
श्वासं वेश्मसुवासिनीभिरधिकाकूतं भुजिष्याजनैः।
प्रत्यग्रप्रकटीकृतार्ति कुलटासार्थेन दृष्टं हरे -
रव्याद्वो नवयौवनोत्सवदशानिर्व्याजमुग्धं वपुः।।' (१.५४.१)

इस प्रकार अनुभूति और अभिव्यक्ति, दोनों ही दृष्टियों से 'सदुक्तिकर्णामृत' में संकलित पद्य काव्यात्मक उत्कर्ष के शिखर का स्पर्श अनायास कर लेते हैं।

ग्रन्थ के आद्य संपादक

जैसा कि कहा जा चुका है, 'सदुक्तिकर्णामृतम्' के आध संपादक म.म.पं.रामावतार शर्मा, साहित्याचार्य थे। अपने युग के अप्रतिम मनीषी शर्मा जी ने पटना कालेज, कलकत्ता विश्वविद्यालय और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राध्यापक और प्राचार्य प्रभृति विशिष्ट पदों पर कार्य करते हुए 'यूरोपीय दर्शन', 'परममार्थ दर्शन', 'मारुतिशतकम्', 'मुद्गरदूतम्', 'भारतीयमितिवृत्तम्', 'वाङ्मयार्णव', प्रभृति श्रेष्ठ ग्रन्थों का प्रणयन तो किया ही, ऐसे उत्कृष्ट और प्रातिभ विद्वानों को भी तैयार किया, जिन्होंने आगे चलकर संस्कृत अध्यन-अध्यापन और अनुसंधान का नेतृत्व करते हुए उसे नई दिशा दी। पूज्यपाद पद्मभूषण आचार्य पण्डित बलदेव उपाध्याय शर्माजी के उन्हीं सुयोग्य शिष्यों में से अन्यतम

हैं, जिन्होंने अपने 'काशी की पाण्डित्य परम्परा' शीर्षक प्रसिद्ध ग्रन्थ में महान् गुरु के प्रेरक जीवन-चरित को विस्तार से प्रस्तुत किया है। जिज्ञासु पाठकों को उसे वहीं देखना चाहिए।।

प्रस्तुत संस्करण

उ.प्र. संस्कृत संस्थान ने, जब 'सदुक्तिकर्णामृतम्' को दुर्लभ ग्रन्थ के रूप में पुनः प्रकाशित करने का निर्णय किया, तो उसके अध्यक्ष पूज्यपाद आचार्य बलदेव उपाध्यायजी की आज्ञा और निदेशक श्रीमती अलका श्रीवास्तवजी के निर्देश से संस्थान के सहायक निदेशक डॉ. चन्द्रकान्त द्विवेदीजी ने मुझसे इसके अनुवाद का आग्रह किया। मैंने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। मन में केवल यही भाव था कि इसी बहाने इस ग्रन्थ का स्वाध्याय-सुख मिल जायेगा। वह मिला भी। अनुवाद में मैंने ध्यान रखा है कि साधारण पाठक भी इस का आनन्द ले सकें। अनुवाद की भाषा प्रचलित हिन्दी है, जिसे मैंने हिन्दी-व्याकरण के अनुरूप ही काम में लेने का प्रयत्न किया है। अनुवाद में स्पष्टता के लिए आदरणीय श्री रमेशचन्द्र रस्तोगीजी का निर्देश भी उपादेय रहा। इस कार्य में, मेरी पत्नी श्रीमती निर्मल मोहिनी ने यदि सहायता न की होती, तो यह समय से पूरा नहीं हो पाता। अनुज कल्प डॉ. बृजेश कुमार शुक्ल से भी, इस कार्य के मध्य हुई चर्चा से बहुत उपयोगी सुझाव मिले। मैं उन सभी का कृतज्ञ हूँ, जो किसी भी रूप में, इस कार्य को सम्पन्न करने में सहायक सिद्ध हुए।

ओमप्रकाश पाण्डेय

विषय-क्रमः

१.	मङ्गलम्	१
२.	प्रस्तावः	१
३.	अमरप्रवाहवीचयः	३
४.	अथ ब्रह्मवीचिः (१)	५
५.	सूर्य्यः (२)	७
६.	ईशप्रणतिः (३)	६
७.	महादेवः (४)	११
८.	शिवः। (५)	१३
६.	हरश्रृङ्गारः (६)	१५
१०.	शिवयोः प्रश्नोत्तरम्। (७)	१७
११.	हरहास्यम्। (८)	२०
१२.	हरशिरः। (६)	२२
१३.	हरशिरोगङ्गा। (१०)	२४
१४.	हरशिरश्चन्द्रः (११)	२६
१५.	हरजटा (१२)	२८
१६.	हरकपालः (१३)	२६
१७.	हरनयनम् (१४)	३१
१८.	त्रिपुरदाहारम्भः। (१५)	३३
१६.	हरबाणः। (१६)	३५
२०.	अष्टमूर्तिः। (१७)	३८
२१.	भैरवः। (१८)	४०
२२.	हरनृत्यारम्भः। (१६)	४२
२३.	हरनृत्यम्। (२०)	४४
२४.	हरप्रसादनम्। (२१)	४६
२५.	गौरी (२२)	४८
२६.	विवाहसमयगौरी (२३)	५०

२७. गौरीश्रृङ्गारः (२४) ५२
२८. दुर्गा (२५) ५५
२९. काली (२६) ५७
३०. अर्द्धनारीशः (२७) ५९
३१. श्रृङ्गारात्मकार्द्धनारीश (२८) ६१
३२. गणेशः (२९) ६३
३३. कार्त्तिकेयः (३०) ६५
३४. भृङ्गी (३१) ६७
३५. गणोच्चावचम् (३२) ६९
३६. हरिहरौ (३३) ७१
३७. कान्तासहितहरिहरौ (३४) ७३
३८. गङ्गा (३५) ७५
३९. गङ्गाप्रशंसा (३६) ७७
४०. हरेर्मत्स्यावतारः (३७) ७९
४१. कूर्मः (३८) ८१
४२. वराहः (३९) ८३
४३. नरसिंहः (४०) ८६
४४. नरसिंहनखाः (४१) ८८
४५. श्रृङ्गारिनरसिंहः (४२) ९०
४६. वामनः (४३) ९२
४७. त्रिविक्रमः (४४) ९४
४८. परशुरामः (४५) ९६
४९. श्रीरामः (४६) ९८
५०. विरहिश्रीरामः (४७) १००
५१. हलधरः (४८) १०२
५२. बुद्धः (४९) १०४
५३. कल्की (५०) १०६

५४.	कृष्णशैशवम् (५१)	१०८
५५.	कृष्णकौमारम् (५२)	११०
५६.	कृष्णस्वप्नायितम् (५३)	११२
५७.	कृष्णयौवनम् (५४)	११४
५८.	हरिक्रीडा (५५)	११६
५९.	प्रश्नोत्तरम् (५६)	११८
६०.	वेणुनादः (५७)	१२१
६१.	गीतम् (५८)	१२३
६२.	कृष्णभुजः (५९)	१२५
६३.	गोवर्धनोद्धारः (६०)	१२७
६४.	उत्कण्ठा (६१)	१२९
६५.	गोपीसन्देशः (६२)	१३०
६६.	सामान्यहरिः (६३)	१३२
६७.	हरिभक्तिः (६४)	१३४
६८.	समुद्रमथने हरिः (६५)	१३६
६९.	समुद्रोत्थितलक्ष्मीः (६६)	१३८
७०.	लक्ष्मीस्वयम्वरः (६७)	१४०
७१.	लक्ष्मीश्रृङ्गारः (६८)	१४२
७२.	लक्ष्मीः (६९)	१४४
७३.	लक्ष्म्युपालम्भः (७०)	१४६
७४.	सरस्वती (७१)	१४८
७५.	प्रशस्तचन्द्रः (७२)	१५०
७६.	चन्द्रकला (७३)	१५२
७७.	चन्द्रबिम्बः (७४)	१५४
७७.	प्रौढचन्द्रः (७५)	१५६
७९.	सकिरणचन्द्रः (७६)	१५८
८०.	चन्द्ररश्मिः (७७)	१६०

८१. ज्योत्स्ना (७८) १६२
८२. कलङ्कः। (७९) १६४
८३. सतमश्चन्द्रः (८०) १६६
८४. सतारश्चन्द्रः (८१) १६७
८५. क्षरदमृतचन्द्रः (८२) १६९
८६. भासः (८३) १७१
८७. मिश्रकचन्द्रः (८४) १७३
८८. बहुरूपकचन्द्रः (८५) १७५
८९. अस्तमयः (८६) १७७
९०. उच्चावचचन्द्रः। (८७) १७९
९१. वातः (८८) १८१
९२. दक्षिणवातः (८९) १८३
९३. नदीवातः (९०) १८५
९४. समुद्रवातः (९१) १८७
९५. प्राभातिकवातः (९२) १८९
९६. मदनः (९३) १९१
९७. मदनशौर्यम् (९४) १९३
९८. उच्चावचम् (९५) १९५
९९. शृङ्गारप्रवाहवीचयः १९७
१००. वयःसन्धिवीचिः (१) २००
१०१. किंचिदुपारूढयौवना (२) २०२
१०२. युवतिः (३) २०४
१०३. नायिकाद्भुतम् (४) २०६
१०४. मुग्धा (५) २०८
१०५. मध्या (६) २१०
१०६. प्रगल्भा (७) २१२
१०७. नवोढा (८) २१४

१०८. विस्रब्धनवोढा (६) २१६
१०६. गर्भिणी (१०) २१८
११०. कुलस्त्री (११) २२०
१११. असती (१२) २२२
११२. कुलटोपदेशः (१३) २२४
११३. गुप्तासती (१४) २२६
११४. विदग्धासती (१५) २२६
११५. लक्षितासती (१६) २३२
११६. वेश्या (१७) २३४
११७. दाक्षिणात्यस्त्री (१८) २३६
११८. पाश्चात्त्यस्त्री (१६) २३७
११६. उदीच्यप्राच्ये (२०) २३६
१२०. ग्राम्या (२१) २४१
१२१. स्त्रीमात्रम् (२२) २४३
१२२. खण्डिता (२३) २४४
१२३. अन्यरतिचिह्नदुःखिता (२४) २४७
१२४. लक्षितविरहिणी (२५) २४६
१२५. विरहिणी (२६) २५१
१२६. विरहिणी-वचनम् (२७) २५३
१२७. विरहिणीरुदितम् (२८) २५४
१२८. दूतीवचनम् (२६) २५६
१२६. प्रियसंबोधनम् (३०) २५६
१३०. परुषाभिधानम् (३१) २६०
१३१. संतापकथनम् (३३) २६४
१३२. तनुताख्यानम् (३४) २६६
१३३. उद्वेगकथनम् (३५) २६८
१३४. निशावस्थाकथनम् (३६) २७०
१३५. वासकसज्जा (३७) २७२

१३६.	स्वाधीनभर्तृका (३८)	२७४
१३७.	विप्रलब्धा (३९)	२७६
१३८.	कलहान्तरिता (४०)	२७८
१३९.	कलहान्तरितावाक्यम् (४१)	२८०
१४०.	कलहान्तरितासखीवचनम् (४२)	२८२
१४१.	गोत्रस्खलितम् (४३)	२८४
१४२.	मानिनी (४४)	२८६
१४३.	उदात्तमानिनी (४५)	२८८
१४४.	अनुरक्तमानिनी (४६)	२९०
१४५.	नायके मानिनीवचनम् (४७)	२९२
१४६.	मानिन्यां सखीप्रबोधः (४८)	२९४
१४७.	अनुनयः (४९)	२९६
१४८.	मानभङ्गः (५०)	२९९
१४९.	प्रवसद्भर्तृका (५१)	३०१

सदुक्तिकर्णामृतम्

सदुक्तिकर्णामृत

मङ्गलम्

प्रज्ञां कामपि सम्पदं च कुरुते यत्पादसंवाहनं
नित्यं शाम्यति विष्वगन्धतमसं यच्चक्षरुन्मीलनात्।
यत्पादार्घपयो विधूय दुरितं निःश्रेयसं यच्छति
स्वान्ते नः स वसत्वनारतमनाख्येयस्वरूपो हरिः।।१।।

मङ्गलाचरण

हमारे हृदय में अनिर्वचनीय स्वरूप वाले वे भगवान् विष्णु निरन्तर निवास करें, जिनकी चरण-सेवा से प्रज्ञा और कुछ (विशिष्ट) सम्पत्ति प्राप्त होती है; (उनका) चरणोदक पाप-राशि को हटाकर परम कल्याण प्रदान करता है। वे जब आँखें खोलते हैं तो समस्त अन्धकार और तमोगुण सदैव के लिए समाप्त हो जाता है। १।

प्रस्तावः

शौर्याणीव तपांसि बिभ्रति भवं यस्मिन्न यस्यावधि-
र्ज्ञाने दान इव द्विषामिव जयो येनेन्द्रियाणां कृतः।
सम्राजामिव योगिनामपि गुरुर्यश्च क्षमामण्डले
स श्रीलक्ष्मणसेन एकनृपतिर्मुक्तश्च जीवन्नभूत्।।१।।

प्रस्तावना

(अपने) जीवन-काल में मुक्ति प्राप्त कर चुके महाराज लक्ष्मणसेन में, पृथ्वी का (शासन) भार सँभालते समय वीरता के सदृश तपोभाव तथा ज्ञान के सदृश दानशीलता (की प्रवृत्ति) भी असीम थीं। जिस प्रकार अपने शत्रुओं पर उन्होंने विजय पाई थी, वैसे ही इन्द्रियों पर भी। भूमण्डल पर, जिस प्रकार वे सम्राटों में वरिष्ठ थे, उसी प्रकार योगियों के भी गुरु थे। १।

तस्यासीत्प्रतिराजतदृतमहासामन्तचूड़ामणि-
र्नाम्ना श्रीवटुदास इत्यनुपमप्रेमैकपात्रं सखा।
तापं सन्तमसं हरन्नहरहः कीर्त्तिं दधत्कौमुदीं
साक्षादक्षयसूनृतामृतमयः पूर्णः कलानां निधिः।। २।।

उन्हीं (लक्ष्मणसेन) के एक अनुपम प्रेमास्पद मित्र तथा प्रतिराज थे महासामन्तचूड़ामणि श्रीवटुदास। अपने यश की चन्द्रिका से प्रतिदिन सन्तापमय अन्धकार को दूर करते हुए वे साक्षात् पूर्णचन्द्र (के सदृश) थे, जिनकी सत्यवाणी अमृत के तुल्य माधुर्य से परिपूर्ण थी। २।

श्रीमान् श्रीधरदास इत्यधिगुणाधारः स तस्मादभू-
दाकौमारमपारपौरुषपराधीनस्य यस्यानिशम्।
लक्ष्मीर्वेदविदां गृहेषु गुणिता गोष्ठीषु विद्यावतां
भक्तिः श्रीपतिपादपल्लवनखज्योत्स्नासु विश्राम्यति।।३।।

बहुगुण सम्पन्न तथा बचपन से ही अपार पौरुष के वशीभूत श्री श्रीधरदास उन्हीं श्रीवटुदास के पुत्ररूप में उत्पन्न हुए। दिन-रात (दान देने के कारण) उनकी धन-सम्पत्ति वेदज्ञों के घर में निवास करती थी; विद्वद्गोष्ठियों को वे सुशोभित करते थे, तथा उनकी भक्ति-भावना भगवान् विष्णु के चरण-नखों से निर्गत चन्द्रिका में सन्निहित थी। ३।

प्रत्येकं विषयेषु पञ्चकमितैः श्लोकैः कवीनामिदं
तेनाकारणबान्धवेन विदधे श्रीसूक्तिकर्णामृतम्।
प्रीतिं पल्लवयन्तु कर्णकलसीमापूरयन्तश्चिरं
मज्जन्तः परिशीलयन्तु रसिकाः पञ्च प्रवाहानिह।।४।।

(सभी के) अकारण बन्धु उन्हीं श्री श्रीधरदास ने, 'श्रीसूक्तिकर्णामृत' के रूप में, (विभिन्न) कवियों के द्वारा प्रणीत श्लोकों में से, प्रत्येक विषय में पाँच-पाँच श्लोकों का चयन कर (इस ग्रन्थ की) रचना की है। इसमें पाँच प्रवाह हैं, जिनमें प्रगाढ़ अवगाहन करके सहृदयजन चिरकाल तक अपने कर्णकुहरों को भरते हुए प्रीति को पल्लवित करें। ४।

अमराः शृङ्गारचटू अपदेशोच्चावचे अपि क्रमशः।
इति पञ्चभिः प्रवाहैः सदुक्तिकर्णामृतं क्रियते।।५।।

ये पाँच प्रवाह (क्रमशः ये हैं-) अमर-(देव-) प्रवाह, शृंगार-प्रवाह, (प्रिया-) प्रसादन-प्रवाह, अपदेश और उच्चावच (ऊँच-नीच)। इन्हीं से 'सदुक्तिकर्णामृत' का (संकलन) किया जा रहा है। ५।

अमरप्रवाहवीचयः

अथ धाता रविरीशप्रणति-महादेव-शिव-हरक्रीडाः।
प्रश्नोत्तराट्टहासावमुष्य मूर्द्धोत्तमाङ्गगङ्गा च।।१।।

देवप्रवाह की लहरें

ब्रह्मा, सूर्य, ईश-नमस्कार, महादेव, शिव, हर की श्रृंगारिक चेष्टाएँ, शिव-पार्वती (के मध्य) प्रश्नोत्तर, (शिव का) अट्टाहास, (शिव का) शिर तथा शिवशिरःस्था गंगा। १।

मौलिशशी कोटीरो मुण्डावलिरक्षि पुरभिदारम्भः।
बाणानलोष्टमूर्त्ति भैरवं-हरताण्डवारम्भौ।।२।।

(शिव के) शिर पर स्थित चन्द्रमा, शिव की जटाएँ, शिव की कपालमाला, शिव का (तृतीय) नेत्र, त्रिपुरदाह का प्रारम्भ, (शिव का) बाण, अष्टमूर्तियाँ, भैरव तथा शिव का ताण्डव नृत्यारम्भ। २।

नृत्यं हरप्रसादनमथ गौरी परिणयस्थगौरी च।
श्रृङ्गारो गिरिदुहितुर्दुर्गा काली तथार्द्धनारीशः।।३।।

(शिव का) नृत्य, शिव को प्रसन्न करना, गौरी, परिणय के समय गौरी, (गौरी का) श्रृंगार, दुर्गा, काली तथा अर्द्धनारीश्वर (स्वरूप)। ३।

श्रृङ्गारी च गजानन-शरसम्भव-भृङ्गिगणः प्रमथाः।
अथ हरिहरौ सकान्तौ सुरसिन्धुर्जह्नुकन्यकाशंसा।।४।।

श्रृंगारात्मक अर्द्धनारीश्वर, गणेश, शरजन्मा (स्कन्द), भृङ्गी, (अन्य) गण, शिव और विष्णु, पत्नियों के साथ विष्णु और शिव, गङ्गा तथा गङ्गा की प्रशंसा। ४।

श्रीमत्स्य-कमठ-सूकर-केशरि-नरसिंहपाणिजन्मानः।
श्रृङ्गारी च नृसिंहो वामनमूर्तिस्त्रिविक्रमो भृगुजः।।५।।

(भगवान् विष्णु का) मत्स्यावतार, कूर्मावतार, वाराह अवतार, नृसिंह अवतार, नृसिंह के नाखून, नृसिंह का श्रृंगारमय रूप, (विष्णु का) वामन स्वरूप, त्रिविक्रम तथा भृगुनन्दन परशुराम। ५।

दाशरथिरेष विरही हलधर-जिन-कल्किनोऽथ कृष्णस्य।
शिशुता-कुमारभावो स्वप्नायित-यौवन-क्रीडाः।।६।।

दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम, विरहग्रस्त श्रीराम, हलधर बलराम, भगवान् बुद्ध, भगवान् का कल्कि अवतार, भगवान् कृष्ण का बचपन, कुमारावस्था, (भगवान् कृष्ण का) स्वप्न देखना, (कृष्ण का) यौवन तथा (कृष्ण की) लीलाएँ। ६।

प्रश्नोत्तरं च वेणुध्वननं गीतं भुजश्च गिरिधरणम्।
उत्कण्ठा गोपवधूसन्देशो हरिरमुष्य भक्तिश्च।।७।।

(कृष्ण और उनकी प्रिया के मध्य) प्रश्नोत्तर, वंशीवादन, गीत, (कृष्ण की) भुजाएँ, गोवर्धन-धारण, उत्कण्ठा, गोपियों का सन्देश और कृष्ण की भक्ति। ७।

उदधिमथनहरिरम्बुधिमथनोत्थश्रीः स्वयंवरो लक्ष्म्याः।
श्रीशृङ्गारः कमला कमलोपालम्भवाक् प्रशस्तेन्दुः।।८।।

समुद्र-मन्थन के समय विष्णु, समुद्र से ऊपर निकली लक्ष्मी, लक्ष्मी का स्वयम्वर, लक्ष्मी की श्रृंगार-क्रीड़ा, लक्ष्मी, लक्ष्मी के प्रति उपालम्भ-वचन तथा प्रशस्त चन्द्रमा। ८।

चन्द्रकला शशिबिम्बं प्रौढविधुः सरुचिचन्द्रमा रश्मिः।
ज्योत्स्ना कलङ्क-तम-उडु-कैरवसहितेन्दु-भासश्च।।९।।

चन्द्रकला, चन्द्रमा का बिम्ब, प्रौढ़ चन्द्रमा, किरणयुक्त चन्द्रमा, चन्द्र-किरण, चाँदनी, (चन्द्रमा का) कलङ्क-चिह्न, अन्धकारयुक्त चन्द्रमा, नक्षत्रों सहित चन्द्रमा, अमृत टपकाता हुआ चन्द्रमा तथा चन्द्रमा का प्रकाश। ९।

मिश्रबहुरूपकास्तंगतबहुविषयेन्दवोथ गन्धवहः।
दक्षिण-नदी-समुद्र-प्रभातभिन्नश्च पुष्पधन्वा च।।१०।।

मिला-जुला चन्द्रमा, बहुरूपिया चन्द्रमा, अस्तंगत चन्द्रमा, बहुआयामी चन्द्रमा, पवन, दक्षिणानिल, नदी तटवर्ती वायु, समुद्री हवा, प्रभातकाल का पवन, मदन, कामदेव का पराक्रम तथा विविधभाव।-१०

स्मरशौर्यमथोच्चावचमिति पञ्चोपेतनवतिवीचीभिः।
श्रीधरदासेन कृतः कृतिना देवप्रवाहोऽयम्।।११।।

इस प्रकार पञ्चानवे (९५) लहरों के द्वारा रचयिता श्रीधरदास ने इस देवप्रवाह का (संकलन) किया है। ११।

देवप्रवाहः

अथ ब्रह्मवीचिः

शम्भोः साक्षात्सखैकः सुरपतिरपरो धर्मराजस्तथान्यः
प्राणा विश्वस्य कस्य प्रथमतरमतः कोनु सम्भाषणीयः।
कार्यायातान्विदित्वा मुहुरिति चतुरो लोकपालांश्चतुर्भि-
र्वक्त्रैराभाषमाणः सममुदितरवः पातु पद्मोद्भवो वः।। १।।

पालितस्य।

देव-प्रवाह

ब्रह्मा की तरंग

(विष्णु के नाभि-) कमल से प्रादुर्भूत वे ब्रह्मा जी आपकी रक्षा करें, जो भगवान् शिव के एकमात्र मित्र हैं, दूसरे इन्द्र हैं तथा अन्य धर्मराज हैं। चारों लोकपाल, कार्यवश, उनसे मिलने और परामर्श करने के लिए आये हैं- वे सभी विश्व के प्राणस्वरूप हैं, अतः उनमें से किसके साथ पहले वार्तालाप किया जाये -(इसका निश्चय न कर पाने के कारण) वे चारों लोकपालों से, अपने चार मुखों से एक साथ बातचीत कर रहे हैं और उनके सभी मुखों से समान रूप से, प्रसन्न पदावली निकल रही है। १।

(- पालित)

आगस्कारिणि कालनेमिदमने तत्ताडनार्थं रुषा
नाभीपङ्कजमस्त्रतां गमयितुं जाते प्रयत्ने श्रियः।
आवासोन्मथनोपपादितभयभ्रान्तात्मनः सम्भ्रमा-
दब्रह्मण्यपराः पुरातनमुनेर्वाचः प्रसीदन्तु वः।। २।।

भट्टश्रीनिवासस्यैं।

कालनेमि के संहारक भगवान् विष्णु के (किसी) अपराध पर रूठी हुई भगवती लक्ष्मी ने, विष्णु की ताडना के लिए, जब उनके नाभिकमल का ही प्रयोग अस्त्र के रूप में करने का प्रयत्न किया, तो उस पर विराजमान पुराण मुनि ब्रह्माजी, लक्ष्मी के द्वारा अपने निवास-स्थान को हिलाने के कारण भयवश घबड़ा गये और घबड़ाहट में वे 'अनर्थ हो गया, अनर्थ हो गया, बचाओ-बचाओ' - इस प्रकार चीख-पुकार करने लगे। ब्रह्माजी की तत्कालीन वह आर्त्तवाणी आप सभी को प्रसन्न करे। २।

(-भट्टश्रीनिवास)

टिप्पणी - पुराणों में दो कालनेमियों का वर्णन मिलता है। पहला कालनेमि रावण का चाचा था, जो कपटवश साधु बन कर रहता था। इसका संहार संजीवनी लाते समय हनुमान् जी ने किया था। दूसरा कालनेमि १०० हाथों वाला था। इसका संहार भगवान् विष्णु ने किया था। यों 'कालनेमि' शब्द का शाब्दिक अर्थ है - समयचक्र का घेरा। २।

पायाद्वो मधुकैटभासुरवधे विष्णुप्रबोधोद्धुरो
धाता वक्त्रचतुष्टयं तु युगपद्यस्याभवत्सार्थकम्।
एकं स्तौति मुखं शिवामितरदप्यार्तं वरान् याचते
दैत्यौ प्रत्यपरं वितर्जति हरत्यन्यच्छ्रियः सम्भ्रमम्।। ३।।

वसन्तदेवस्य।

वे ब्रह्मा जी आपकी रक्षा करें, जिनके चारों मुख मधु-कैटभ-संज्ञक असुरों के वध-प्रसंग में, विष्णु को प्रबोधित करते हुए (सक्रिय और) सार्थक हो गये थे। उस समय उनका एक मुख दुर्गा देवी की स्तुति कर रहा था। दूसरा कातर होकर (आत्म-रक्षणार्थ) वर माँग रहा था। तीसरा मुख मधु-कैटभ को घुड़कियाँ दे रहा था, और चौथा लक्ष्मी जी की घबड़ाहट दूर करने में लगा था। ३।

(- वसन्तदेव)

टिप्पणी - मधु-कैटभ-वध-प्रसंग श्रीदुर्गासप्तशती में उपलब्ध होता है। तदनुसार योगनिद्रा में लीन विष्णु के कर्ण-मल से उत्पन्न ये दोनों दैत्य जब ब्रह्मा जी को मारने के लिए उद्यत हो गये, तो उन्होंने विष्णु को जगाने के लिए देवी की स्तुति की थी। ३।

यन्न क्षुण्णं कदाचित्तुहिनकणचयस्यन्दिभिश्चन्द्रपादै-
र्नापि व्यालीनमुस्रैर्नवनलिनसरोबन्धुभिर्भानवीयैः।
तत्कल्पान्तानुषङ्गि द्रुतमतनुतमः पाटयन्त्यः समन्ता-
दाद्याधीतौ विधातुर्मुखशशिविसृताः पान्तु वो दन्तभासः।। ४।।

बीजकस्य।

ब्रह्मा जी की वह दन्तकान्ति आपकी रक्षा करे, जो पहली बार वेद-पाठ करते समय उनके मुख-कमल से निकलकर चारों ओर फैल गई थी। उसकी समानता न तो चन्द्रमा की तुषारकण-निःस्यन्दिनी किरणें कभी कर पाती हैं और न नये कमलों को खिलाने वाली सूर्य-किरणें ही उसे तिरोहित कर पाती हैं। ब्रह्मा जी की यह दन्त-कान्ति सृष्टि से लेकर प्रलय तक चारों ओर व्याप्त सघन अन्धकार का निवारण करती है। ४।

(-बीजक)

जातस्तेऽधरखण्डनात्परिभवः कापालिकादम्ब यः।
स ब्रह्मादिषु कथ्यतामिति मुहुर्वाणीं गुहे जल्पति।
गौरीं हस्तयुगेन षण्मुखवचो रोद्धुं निरीक्ष्याक्षमां
वैलक्ष्याच्चतुरास्यनिष्फलपरावृत्तिश्चिरं पातु वः।। ५।।

कस्यचित्।

'माँ ! कपाल हाथ में लिये हुए पिताजी ने जब तुम्हारे अधरोष्ठ का दंशन किया था, और तुम्हें उससे चोट पहुँची थी, वह बात ब्रह्मा जी को बतलाओ न।' इस प्रकार जब बार-बार स्कन्द (ब्रह्मादि की उपस्थिति में) बोलते जा रहे थे, तो पार्वती जी ने दोनों हाथों से स्कन्द को बोलने से रोकने की चेष्टा की, लेकिन वे असमर्थ रहीं। उनकी असमर्थता को देखकर, लज्जावश ब्रह्मा जी बिना उस प्रसंग को सुने ही लौट गये। ब्रह्मा जी का वह निष्फल परावर्तन चिरकाल तक आपकी रक्षा करे। ४।

(- अज्ञात कवि)

२. सूर्य्यः

तुङ्गोदयाद्रिभुजगेन्द्रफणोपलाय
व्योमेन्द्रनीलतरुकाञ्चनपल्लवाय।
संसारसागरसमुत्क्रमियोगिसार्थ-
प्रस्थानपूर्णकलसाय नमः सवित्रे। १।।

वराहमिहिरस्य।

२. सूर्य्य

उन्नत उदयाचलरूपी महासर्प के फन पर विद्यमान महामणि, आकाशरूपी इन्द्रनीलमणि वृक्ष के स्वर्णमय किसलय और संसार-समुद्र को पार करने के लिए प्रस्थान तत्पर योगियों के समूह की प्रस्थान-वेला में प्रस्तुत जलपूर्ण महाकुम्भ (के सदृश प्रतीत होने वाले) भगवान् सविता (सूर्य) देव को नमस्कार है। १।

(- वराहमिहिर)

विष्वग्विसारितिमिरप्रकरावरुद्ध-
त्रैलोक्यनेत्रपुटसिद्धरसायनाय।

तुभ्यं नमः कमलषण्डविषादनिद्रा-
विद्रावणोद्यतकराय दिवाकराय।। २।।

श्रीकण्ठस्य।

हे दिवाकर ! तुम्हें नमन। तुम चारों ओर फैल रहे अन्धकार-समूह के द्वारा रोके गये तीनों लोकों के नेत्ररूपी पुटक में तैयार किये गये रसायन (के सदृश) हो। तुम्हारी किरणें कमलों के समूह में व्याप्त विषादमयी निद्रा को भगाने के लिए (सदैव) उद्यत रहती हैं। २।

(- श्रीकण्ठ)

शुकतुण्डच्छवि सवितुश्चण्डरुचः पुण्डरीकवनबन्धोः।
मण्डलमुदितं वन्दे कुण्डलमाखण्डलाशायाः।। ३।।

विद्यायाः।

कमलवन के बन्धु, पूर्व दिशा (रूपी कामिनी) के कर्ण-कुण्डल तथा प्रचण्ड किरणों वाले सवितृदेव का सुग्गे की चोंच के सदृश कुछ-कुछ लालिमामयी कान्तिवाला मण्डल उदित हो गया है। (मैं उसकी) वन्दना करता हूँ। ३।

(विद्या)

जीयादेकफलं नभस्तलतरोरभ्रंशिसिन्दूरिणी
मुद्रा कैरवकाननस्य तिमिरस्तेयाय सन्धिर्दिवः।
मन्दारस्तवकोन्तरीक्षकबरीभारस्य गौरीपतेः
कम्पिल्लच्छदपाटलच्छवि कुलच्छत्रं वधूनां रविः।। ४।।

हरेः।

भगवान् सूर्य की जय हो ! वे आकाशतलरूपी वृक्ष पर प्रादुर्भूत एकमात्र फल, कमलवन की गगनचुम्बिनी सिन्दूरमण्डित मुद्रा, अन्धकार का अपहरण करने के लिए स्वर्ग में लगाई गई सेंध के रन्ध्र, अन्तरिक्ष (रूपी कामिनी) के जूड़े में लगे मन्दार पुष्पों के गुच्छ और भगवान् शिव की अर्द्धाङ्गिनियों (- गंगा, चन्द्रकला और भगवती पार्वती -) के शिर पर कम्पिल्ल वृक्ष के पर्ण सदृश गुलाबी छवि वाली उस चादर (के सदृश प्रतीत होते हैं) जो कुलवधुएँ (अपने शिर पर डालकर घर से निकलती हैं)। ४।

(- हरि)

आद्यूनस्तमसां चकोररमणीरागाब्धिमन्थाचलो
जीवातुर्जलजस्य वासवदिशाशैलेन्द्रचूडामणिः।

आदेष्टा श्रुतिकर्मणां कुमुदिनीशोकाग्निपूर्णाहुति-
र्देवः सोमरसायनं विजयते विश्वस्य बीजं रविः।। ५।।

विभाकरस्य।

विश्व के बीज और सोमरस के भण्डार उन भगवान् सूर्य की जय हो, जो अन्धकार का पूर्णतया उन्मूलन करने वाले, चकोराङ्गनाओं के अनुराग-समुद्र को मथने वाले पर्वत, कमलों के प्राण, इन्द्र से सम्बन्धित (पूर्व) दिशा में स्थित शैलराट् उदयाचल की मुकुटमणि, (सन्ध्या-वन्दन तथा अग्निहोत्रादि) वेदोक्त कर्मों के निर्देशक (- सूर्योदय और सूर्यास्त के समय लोग सन्ध्या-वन्दनादि के लिए प्रेरित होते हैं -) और कुमुदिनी के कुसुमों की शोकाग्नि में डाली गई पूर्णाहुति (के सदृश प्रतीत होते) हैं। ५।

(-विभाकर)

३. ईशप्रणतिः

मौलौ वेगादुदञ्चत्यपि चरणभरन्यञ्चदुर्वीतलत्वा-
दक्षुणस्वर्गलोकस्थितिमुदितसुरश्रेष्ठगोष्ठीस्तुताय।
सन्त्रासान्निःसरन्त्याप्यविरतविषजद्दक्षिणार्द्धाङ्गबन्धा-
दत्यक्तायाद्रिपुत्र्या त्रिपुरहर जगत्क्लेशहर्त्रे नमस्ते।। १।।

वाणस्य।

३. ईश-प्रणाम

मस्तक पर (गंगा जी के द्वारा) वेग से उछलने तथा इस कारण चरणों के भार से पृथ्वी के नीचे खिसकने पर भी, स्वर्ग की स्थिति के अक्षुण्ण रहने से प्रसन्न श्रेष्ठ देव-मण्डली के द्वारा संस्तुत, भयवश निःसरण करती हुई पार्वती के द्वारा सतत आलिंगित दाहिनी ओर के आधे अंगबन्ध से अव्यक्त स्वरूप वाले तथा संसार के कष्टों को दूर करने वाले त्रिपुरारि शिव को नमस्कार है। १।

(- बाण)

नमस्तुङ्गशिरश्चुम्बि-चन्द्रचामरचारवे।
त्रैलोक्यनगरारम्भ-मूलस्तम्भाय शम्भवे।।२ ।।

तस्यैव।

(उन) भगवान् शंकर को नमस्कार है, जो त्रिभुवनरूपी नगर के (निर्माण में) आरम्भ के मूल स्तम्भ हैं (तथा) जिनके उन्नत मस्तक पर चन्द्रमा (के रूप में) चँवर की शोभा (विद्यमान)है।। २।

(-वही)

तादृक्सप्तसमुद्रमुद्रितमहीभूषद्भिरभ्रंकषै-
स्तावद्भिः परिवारिता पृथुपृथुद्वीपैः समन्तादियम्।
यस्य स्फारफणामणौ निलयनात्तिर्यक्कलङ्काकृतिः
शेषः सोप्यगमद्यदङ्गदपदं तस्मै नमः शम्भवे।।३।।

वल्लनस्य।

चारों ओर से गगनचुम्बी बड़े-बड़े द्वीपों से घिरी तथा सात-सात समुद्रों से परिवेष्टित पृथ्वी जिस शेषनाग की फणमणि पर अधिष्ठित होकर (चन्द्रमा के) कलंक की तरह तिरछे आकार वाली हो जाती है, वह शेषनाग भी जिन (भगवान् शिव) के कण्ठ में अलंकार की भाँति स्थित है, उन भगवान् शिव को नमस्कार है। ३।

(- वल्लन)

नमस्तस्मै कस्मै चन वचनचित्तेन्द्रिययमी
यमीशानं ज्योतिर्मयमयमुपास्ते मुनिजनः।
गुरूपज्ञप्रज्ञामुकुरनिकुरम्बप्रतिफल-
न्निजानन्दज्योत्स्नाभ्युदयभिदुराज्ञानतिमिरः।। ४।।

हरेः।

उन सुखस्वरूप भगवान् शिव को नमस्कार, जिनके ज्योतिर्मय स्वरूप की उपासना मन, वाणी और इन्द्रियों पर संयम रखने वाले (वे) मुनिगण करते हैं, जो गुरु के अनुग्रह से स्वतः उद्भासित प्रज्ञा के दर्पण-समूह में प्रतिबिम्बित अपने आनन्द की चन्द्रिका के अभ्युदय से अज्ञानरूपी अन्धकार का भेदन करने वाले हैं। ४।

(- हरि)

वृषधन धनदप्रिय प्रियार्द्ध-ग्रथनविदग्ध विदग्धचित्तयोने।
पुरहर हरिणाङ्कचूड चूडाभुजगभयङ्कर धूर्जटे नमस्ते।। ५।।

भोजदेवस्य।

(एक मात्र) बैल (ही) जिनका धन है, (फिर भी जो कुबेर प्रभृति) धनदाताओं के प्रिय हैं, (अर्द्धनारीश्वर रूप में) प्रिया जिनके (शरीर के) आधे भाग में स्थित है तथा जो प्रिया

के अर्धभाग को बाँधने में विदग्ध हैं, विदग्धहृदयों की उद्भव-स्थली हैं, पुरों का हरण करने वाले हैं, चन्द्रचूड हैं, मस्तक पर स्थित सर्प के कारण जो भयोत्पादक प्रतीत होते हैं- ऐसे हे धूर्जटि (शंकर)! तुम्हें नमस्कार है। ५।

(- भोजदेव)

४. महादेव

शिल्पं त्रीणि जगन्ति यस्य कविता यस्य त्रिवेदी गुरो-
र्यश्चक्रे त्रिपुरव्ययं त्रिपथगा यन्मूर्धि माल्यायते।
त्रीन् कालानिव वीक्षितुं वहति यो विस्फूर्जदक्षित्रयं
स त्रैगुण्यपरिच्छदो विजयते देवस्त्रिशूलायुधः।। १।।

वसुकल्पदत्तस्य।

४. महादेव

तीनों लोक जिन गुरु के शिल्प (- ज्ञान के ज्ञापक) हैं, तीनों वेद जिनकी कविता हैं, तीन-तीन पुरों का जिन्होंने विनाश किया है, तीन मार्गों से प्रवाहित होने वाली गंगाजी जिनके मस्तक पर माला की तरह (सुशोभित) हैं, स्फुटित होने वाले तीन नेत्रों को जो मानों तीनों कालों का अवलोकन करने के लिए वहन करते हैं, त्रिशूल जिनका आयुध है, तीनों गुण जिनके आवरण हैं, ऐसे सर्वत्र तीन की संख्या से व्याप्त भगवान् शिव की जय हो! १।

(- वसुकल्पदत्त)

अर्वाञ्चत्पञ्चशाखः स्फुरदुपरिजटामण्डलः संश्रितानां
नित्यापर्णोऽपि तापत्रितयमपनयन् स्थाणुरव्यादपूर्वः।
यः प्रोन्मीलत्कपर्दैः शिरसि विरचिताबालबन्धे द्युसिन्धोः
पाथोभिर्लब्धसेकः फलति फलशतं वाञ्छितं भक्तिभाजाम्।। २।।

जह्नोः।

स्थाणु स्वरूप वे भगवान् शिव हमारी रक्षा करें, जिनके विलक्षण पाँच शिर (ही वृक्ष की) पाँच शाखाएँ हैं, जिनके ऊपर फैलती हुई जटाओं का मण्डल है, सदैव अपर्णा (पार्वती) के साथ जो रहते हैं, अपने आश्रितों के तीनों संतापों को दूर करते हैं, जिनके शिर में पड़ी हुई कौड़ियों की माला (वृक्ष के चारों ओर) बाँधे गये आलवाल (थाल्हे) के सदृश प्रतीत होती है, देव नदी गंगा (जिस वृक्ष) की सिंचाई करती रहती हैं, शिव स्वरूप वह अकेला सूखा वृक्ष अपने भक्तों के लिए अभीष्ट सैकड़ों फलों को उत्पादित करता है। २।

टिप्पणी - 'स्थाणु' शब्द शिव तथा सूखे वृक्ष, दोनों ही अर्थों में व्यवहृत होता है। यहाँ शिव का स्वरूप उसी सूखे वृक्ष का रूपक प्रस्तुत कर परिकल्पित है। 'स्थाणु' शब्द यहाँ श्लिष्ट है। इस सन्दर्भ में 'शाखा' (शिर तथा डाल), 'जटा' (पुराने वृक्ष की जटा तथा शिर पर स्थित केशराशि), 'नित्यापर्ण' (सदैव पार्वती से संयुक्त तथा सदैव पत्तारहित) शब्द श्लिष्ट हैं। सांगरूपक का यह बहुत सुन्दर उदाहरण है। २।

(जह्नु)

कामं मा कामयध्वं वृषमपि च भृशं माद्रियध्वं न वित्ते
चित्तं दत्त श्रयध्वं परममृतफला या कला तामिहैकाम्।
इत्थं देवः स्मरारिर्वृषमधरचरीकृत्यमूर्त्यैव दित्स-
न्निःस्वो विश्वोपदेशानमृतकरकलाशेखरस्त्रायतां वः।। ३।।

कविपण्डितश्रीहर्षस्य।

'काम की कामना मत करो, बैल को भी बरबस आदर मत दो, धनोपार्जन में भी मन मत लगाओ; केवल अमृतफल से युक्त एकमात्र कला का सेवन करो' - इस प्रकार बैल को नीचे करके उस पर विराजमान, कामारि तथा अकिंचन भगवान् शिव, जिनके मस्तक पर अमृतांशु चन्द्रमा की कला है, अपनी प्रतिमा के माध्यम से मानों समग्र उपदेश देना चाहते हैं - ऐसे शिव आपकी रक्षा करें। ३।

(- कविपण्डित श्रीहर्ष)

भूतिव्याजेन भूमीममरपुरसरित्कैतवादम्बु बिभ्र-
ल्ललाटाक्षिच्छलेन ज्वलनमहिपतिश्वाससलक्षात्समीरम्।
विस्तीर्णाघोरवक्त्रोदरकुहरनिभेनाम्बरं पञ्चभूतै-
र्विश्वं शश्वद्वितन्वन्वितरतु भवतः सम्पदं चन्द्रमौलिः।। ४।।

जयदेवस्य।

भस्म के बहाने पृथ्वीतत्त्व, गंगाजी के रूप में जलतत्त्व, मस्तकस्थ तृतीय नेत्र के माध्यम से अग्नितत्त्व, महासर्प के द्वारा ली गई लम्बी साँस के व्याज से वायुतत्त्व तथा फैले हुए विशाल मुख और उदरगुहा के अन्तर्गत आकाशतत्त्व-इन पाँच महाभूतों के द्वारा सम्पूर्ण विश्व का विकास करते हुए चन्द्रशेखर भगवान् शंकर आपको सर्वविध सम्पत्ति प्रदान करें। ४।

(- जयदेव)

पीयूषेण विषेण तुल्यमशनं स्वर्गे श्मशाने स्थिति-
र्निर्भेदा पयसोऽनलस्य वहने यस्याविशेषग्रहः।
ऐश्वर्येण च भिक्षया च गमयन् कालं समः सर्वतो
देवः स्वात्मनि कौतुकी हरतु वः संसारपाशं हरः।। ५।।

वैद्यगदाधरस्य।

वे भगवान् शिव आप सभी के भवजाल का हरण करें, जिनके लिए अमृत और विष का भक्षण एक सदृश है, स्वर्ग हो या मरघट - दोनों में ही वे समान रूप से रह लेते हैं। चाहे जल को वहन करना हो या अग्नि को - उन्हें कोई अन्तर नहीं पड़ता। चाहे वैभव में रहना हो या भीख माँगना पड़े - वे समान रूप से दोनों ही कालों को बिता देते हैं। अपने भीतर (ऐसे अनेक) कौतुकों से वे युक्त हैं। ५।

(- वैद्यगदाधर)

५. शिवः।

वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसी
यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यविषयः शब्दो यथार्थाक्षरः।
अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमितप्राणादिभिर्मृग्यते
स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निःश्रेयसायास्तु वः।। १।।

कालिदासस्य।

५. शिव

उपनिषदों में जिन्हें अद्वैत ब्रह्म (- एकेश्वर -) कहा गया है, जिनकी स्थिति पृथ्वी से आकाश तक व्याप्त है, 'ईश्वर' (- सर्वशक्तिमान्, परम ऐश्वर्य सम्पन्न -) शब्द जिनके विषय में (पूर्णतया) सार्थक है, (प्राणायाम प्रक्रिया से) प्राणादि को संयमित करने वाले मोक्षार्थी साधक अपने अन्तःकरण में जिनका सन्धान करते हैं - सुदृढ़ भक्तियोग के द्वारा प्राप्य वे भगवान् शिव आपका परम कल्याण करें। १।

(- महाकवि कालिदास)

कण्ठच्छायमिषेण कल्परजनीमुत्तंसमन्दाकिनी-
रूपेण प्रलयाब्धिमूर्ध्वनयनव्याजेन कल्पानलम्।

भूषापन्नगकेलिपानकपटादेकोनपञ्चाशतं
वातानप्युपसंहरन्नवतु वः कल्पान्तशान्तौ शिवः।। २।।

चित्तपस्य।

कण्ठ में विद्यमान (विष की नीली-नीली) छाया के रूपमें कल्पनिशा का, उच्छल लहरों वाली मन्दाकिनी के माध्यम से प्रलयकालीन समुद्र का, मरतकस्थ तृतीय नेत्र के व्याज से प्रलयकालीन अग्नि का तथा अलंकरण के रूप में स्थित सर्प के द्वारा क्रीड़ा में पीनेके व्याज से उन्चास मरुतों का उपसंहार करते हुए भगवान् शिव प्रलय की शान्ति में आपकी सुरक्षा करें। २।

(- चित्तप)

क्वाप्यग्निः क्वचिदद्रिभूर्नरशिरःकीर्णा क्वचिन्निम्नगा
रूक्षा क्वापि जटा क्वचिद्विषधरा रौद्रं विषं कुत्रचित्।
तादृग्भूतगणैर्वृतो मम चिताभस्मोर्मिकिर्मीरितः
संसारं प्रतिमुच्य यातुरपुनर्योगाय पन्थाः शिवः।। ३।।

बिल्हणस्य।

भगवान् शिव के स्वरूप में कहीं (तृतीय नेत्रस्थ) अग्नि है, कहीं पार्वती हैं, कहीं नरकपालों से व्याप्त नदी (गंगा) हैं, कहीं रूखी-सूखी जटाएँ हैं, कहीं विषधर सर्प हैं, कहीं भयंकर विष है; भूत-प्रेतों के समूहों से वे व्याप्त हैं। चिताभस्म के लेपन से उनका स्वरूप बहुरंगा हो गया है- ऐसे शिव संसार का परित्याग करने के बाद मेरे परमार्थ-पथ को परम कल्याण से युक्त कर दें, ताकि मेरा पुनः आवागमन न हो। ३।

(- बिल्हण)

निर्माता जगदर्थमेव वचसां वाचंयमो यः स्वयं
भोगान्विश्वकृते तनोति विषयव्यावर्त्तितात्मेन्द्रियः।
धत्तेऽस्त्राणि जगन्ति रक्षितुमुदासीनः स्वदेहग्रहे
योगीन्द्रोस्तु सदाशिवः स भवतां भूत्यै परार्थव्रती।। ४।।

वैद्यगदाधरस्य।

स्वयं वाणी पर संयम रखते हुए भी जिन्होंने संसार (के पारस्परिक व्यवहार) के लिए वाणी की रचना की, (सांसारिक) विषयों से अपने स्वरूप और इन्द्रियों को दूर रखते हुए भी जो विश्व के निमित्त (विभिन्न) भोगों का विकास करते हैं; अपने शरीर की रक्षा के प्रति

स्वयं उदासीन रहने पर भी लोकरक्षा के लिए जो अस्त्रों को धारण करते हैं- ऐसे परोपकार-व्रती योगिराज सदाशिव आप सभी के लिए ऐश्वर्य (-वैभव -) कारक (सिद्ध) हों। ४।

(- वैद्यगदाधर)

दूरोन्मुक्तखगेश्वरे मुरभिदि व्याक्षिप्तबाहौ ग्रह-
व्यूहे वारितमातरिश्वनि नमत्याशापतीनां गणे।
निष्कम्पोरगहारवल्लिरचलच्चूडेन्दुरव्याकुल-
स्वःसिन्धु स्थिरयोगनिर्वृतमनाः पायात्त्रिलोकीं शिवः।। ५।।

तस्यैव।

भगवान् सूर्य जब दूर चले जाते हैं, मुरारि भगवान् विष्णु अपनी बाँहें झटकते रहते हैं, ग्रह विपत्तिग्रस्त हो जाते है, वायुदेव की सामर्थ्य बाधित हो जाती है, दिक्पालों का समूह झुक जाता है, उस (संकट) के समय में भी जिनके कण्ठ में पड़ी हुई सर्पमाला स्थिर रहती है, मस्तकस्थ चन्द्रमा अविचलित रहता है, गंगा की धारा सुस्थिर रहती है और जिनका मन योग के आनन्द में निमग्न रहता है, वे भगवान् शिव तीनों लोकों की रक्षा करें। ५।

(- वैद्यगदाधर)

६. हरश्रृङ्गारः

एवं स्थापय सुभ्रु बाहुलतिकामेवं कुरु स्थानकं
नात्युच्चैर्नम कुञ्चिताग्रचरणं मां पश्य तावत्क्षणम्।
गौरीं नर्तयतः स्ववक्त्रमुरजेनाम्भोधरध्वानिना
शम्भोर्वः सुखयन्तु लम्भितलयच्छेदाहतास्तालिकाः।। १।।

योगेश्वरस्य।

६. हर-श्रृंगार

'हे सुन्दर भौंहों वाली देवी पार्वती! अपनी भुजलता को इस प्रकार से रखो, (फिर) अमुक प्रकार की स्थिति (मुद्रा) बनाओ, अपने मुड़े हुए पैर के अग्रभाग को बहुत ऊपर से न झुकाओ, और क्षण भर के लिए मेरी ओर देखो' - (इस प्रकार) मेघों की तरह निनाद करने वाले, (अपने) मुखरूपी मृदंग से पार्वती को नृत्य कराते हुए भगवान् शंकर के हाथों की वे तालियाँ आप सभी को आनन्दित करें, जो (नृत्यवेला में) पार्वती की टूटती हुई लय-ताल को सुधारने में संलग्न हैं। १।

(- योगेश्वर)

तस्या नाम मया कथं कथमपि भ्रान्त्या समुच्चारितं
जानास्येव ममाशयं तव कृते गौरि प्रसन्ना भव।
क्षान्तिः स्वीक्रियतां दयावति मयि क्रोधः परित्यज्यता-
मित्येवं बहु जल्पतः स्मररिपोः प्रेमाञ्जलिः पातु वः।। २।।

चक्रपाणेः।

'अरी गौरी ! भ्रान्तिवश उस (अन्य स्त्री -) का नाम पता नहीं मेरे मुँह से कैसे निकल गया ! तुम तो मेरे मन की बात जानती ही हो (कि तुम्हारे प्रति मेरे हृदय में कितना अगाध प्रेम है)। हे दयामयि ! (अब) मुझे क्षमा करो, मुझ पर क्रोध करना बन्द करो- इस प्रकार (पार्वती के सामने) बहुत प्रकार की बातें बनाते हुए कामारि भगवान् शिव की प्रेमाञ्जलि आपकी रक्षा करें। २।

(- चक्रपाणि)

बालः सुन्दरि चन्द्रमाः स्रुतसुधाधाराभिराप्यायितो
निद्रामेति फणीश्वरः सुरधुनी रुद्धा जटामण्डले।
इत्थं मन्मथकेलिकौतुकविधौ व्रीडावतीं पार्वतीं
पायाद्वः प्रतिबोधयन्नववधूं चन्द्रार्धचूडामणिः।। ३।।

कक्कोलस्य।

(भगवान् शिव पार्वती से रतिक्रीड़ा करना चाहते हैं, किन्तु नवपरिणीता वधू पार्वती सकुचा रही हैं। उन्हें मस्तकस्थ चन्द्रमा, कण्ठस्थ नाग और जटाओं में बैठी गंगाजी से लाज लग रही है-इस पर शिव उन्हें समझाते हुए कह रहे हैं-)

'हे सुन्दरि ! चन्द्रमा (अभी) बच्चा (ही) है (और वह) अमृत की टपकी हुई धारा को पीकर सो गया है। (कण्ठस्थ) नागराज भी निद्रानिमग्न हैं, देवनदी गंगा जटाओं (की भूलभूलैया) में फँस गई हैं, (अतः हे पार्वती ! तुम्हारे सम्मुख लज्जा करने वाली कोई भी चीज नहीं है)'- इस प्रकार लज्जा से सकुचा रही नवोढ़ा वधू पार्वती को काम-क्रीड़ा के निमित्त समझाते-मनाते हुए चन्द्रशेखर शिव आपकी रक्षा करें। ३।

(- कक्कोल)

श्रुतिः सक्ता मुग्धे वचसि वदनेन्दौ निपतिता-
दृशः स्वादौ बिम्बाधरमधुनि मग्नैव रसना।

निषण्णाभून्नासा निजपरिमले शैलदुहितु-
र्घनाश्लेषानन्दे वपुरपि विलीनं पुरभिदः।। ४।।

उमापतिधरस्य।

(समागम के समय) त्रिपुरारि शिव के कान (पार्वती की) भोली-भाली बातों में उलझे हैं, आँखें मुखचन्द्र को निहारने में लगी हैं, जिह्वा बिम्बाधर के मधुरास्वादन में लगी है, नासिका (पार्वती की) देहगन्ध का आनन्द ले रही है और उनका (सम्पूर्ण) शरीर (पार्वती के) सुदृढ आलिंगन में निमग्न है। ४।

(- उमापतिधर)

दूरे दारुवनाभिसारक मृषा चाटूनि मुञ्चाधुना
भूयस्त्वं पुनरप्यहं यदि तदा चन्द्रः क्षितिं यास्यति।
इत्युक्तः शशिमौलिरद्रिसुतया चूडेन्दुभूलम्भन-
व्याजव्यञ्चितपादपद्मपतनप्रीतप्रियः पातु वः।। ५।।

कविपण्डितश्रीहर्षस्य

देवदारु के वन में छिप-छिप कर (किसी से) मिलने वाले (शिव) ! दूर (हटो), अब झूठी चाटुकारिता छोड़ो। तुम और हम यदि इसी प्रकार बार-बार (एक दूसरे को सफाई देते रहे) तब तक तो यह चन्द्रमा अस्त हो जायेगा'- इस प्रकार पार्वती जी ने जब शंकर जी से कहा, तो मस्तकस्थ चन्द्रमा के पृथिवी पर गिरने (और उसे उठाने) के बहाने (शिव के अपने) चरण-कमलों में गिरने से प्रसन्न हो उठी प्रिया से युक्त चन्द्रशेखर भगवान् शिव आपकी रक्षा करें। ५।

(- कविपण्डित श्रीहर्ष)

७. शिवयोः प्रश्नोत्तरम्।

कस्मात्पार्वति निष्ठुरासि सहजं शैलोद्भवानामिदं
निःस्नेहासि कुतो न भस्मपरुषः स्नेहं क्वचिद्विन्दति।
कोपस्ते मयि निष्फलः प्रियतमे स्थाणौ फलं किं भवे-
दित्थं निर्वचनीकृतो दयितया शम्भुः शिवायास्तु वः।। १।।

भोजदेवस्य।

७. शिव-पार्वती के मध्य प्रश्नोत्तर

(- शिव -) 'अरे पार्वती ! तुम (इतनी) निष्ठुर क्यों हो ? (पार्वती -) 'पर्वत पर उत्पन्न होने वाले के लिए तो कठोर होना स्वाभाविक ही है।' (- शिव -) 'इतनी स्नेह रहित क्यों हो ?' (- पार्वती -) 'राख मल-मल कर कठोर (हो गये शरीर वाले) व्यक्ति को कहीं भी स्नेह नहीं मिलता।' (- शिव -) 'प्रियतमे ! मुझ पर तुम्हारा क्रोध करना निष्फल है।' (पार्वती -) स्थाणु (-शिव तथा सूखे वृक्ष) में भी कहीं फल लगते हैं !' - इस प्रकार प्रियतमा के द्वारा निरुत्तर किये गये भगवान् शिव आपका कल्याण करें। १।

(- भोजदेव)

किं गौरि मां प्रति रुषा, ननु गौरहं किं
कुप्यामि, कं प्रति, मयीत्यनुमानतोऽहम्।
जानामि सत्यमनुमानत एव स त्व-
मित्थं गिरो गिरिभुवः कुटिला जयन्ति।। २।।

रुद्रस्य।

(शिव-) 'अरी गौरी ! मुझ पर क्यों रोष कर रही हो ?' (पार्वती-) 'अरे, मैं तो गाय हूँ, फिर भला मैं किस पर क्रोध कर सकती हूँ ! (शिव-) 'मेरा अनुमान है कि मुझ पर. ..।' (पार्वती-) 'अनुमान से ही मैं भी जानती हूँ कि तुम वही हो.. ' - इस प्रकार (शिव से कही गई) पार्वती की निगूढ़ अभिप्राय वाली वाणी की जय हो। २।

(- रुद्र)

केयं मूर्ध्न्यन्धकारे तिमिरमिह कुतः सुभ्रु कान्तेन्दुयुक्ते
कान्ताप्यत्रैव कामिन्ननु जलमुमया पृष्टमेतावदेव।
नाहं द्वन्द्वं करोमि व्यपनय शिरसस्तूर्णमेनामिदानी-
मेवं प्रोक्ते भवान्या प्रतिवचनजडः पातु वो मन्मथारिः।।३।।

कस्यचित्।

(गंगा को शिव के शिर पर बैठी देखकर पार्वती पूछ रही हैं -) 'अरे, अँधेरे में (आपके) शिर पर यह कौन बैठी है ?' (शिव-) 'हे सुन्दर भौंहों वाली पार्वती ! कमनीय द्युति वाले चन्द्रमा से युक्त शिर पर भला अँधेरा कैसे हो सकता है !' (पार्वती-) 'अरे कामी पुरुष ! (तुम्हारी) कान्ता (चहेती -) भी यहीं है।' (शिव-) 'अरे, वह तो जल है।' (पार्वती-) 'उमा ने तुमसे बस इतना ही पूछा है।' (शिव-) 'मैं तुमसे कलह नहीं करना (चाहता) हूँ।' (पार्वती-) 'तो फिर (अपने) शिर से तुरन्त इस स्त्री (गंगा -) को हटाइए-' इस प्रकार

पार्वती के कथन पर निरुत्तर हो गये कामादि भगवान् शिव आपकी रक्षा करें। ३।

(- अज्ञात कवि)

एषा ते हर का, सुगात्रि कतमा, मूर्ध्नि स्थिता, किं जटा,
हंसः किं भजते जटां न हि शशी चन्द्रो जलं सेवते।
मुग्धे भूतिरियं कुतोऽत्र सलिलं भूतिस्तरङ्गायते
इत्थं यो विनिगूहते त्रिपथगां पायात्स वः शङ्करः।। ४।।

कस्यचित्।

(पार्वती -) 'अरे शिव ! यह स्त्री कौन है ?' (शिव-) 'सुन्दरि ! कौन-सी ?' (पार्वती-) 'वही जो शिर पर बैठी है।' (शिव-) ' क्या तुम जटा (के विषय में पूछ रही हो)? हंस क्या जटा का सेवन करते हैं ?' (शिव-) 'नहीं, नहीं, वह तो चन्द्रमा है।' (पार्वती-) 'चन्द्रमा में क्या जल होता है ?' (शिव-) 'अरी भोली ! वह तो भस्म है।' (पार्वती-) 'भस्म में पानी कहाँ से आ गया ?' (शिव-) 'भस्म (सफेद होने के कारण पानी की) लहर जैसी प्रतीत होती है।' - इस प्रकार पार्वती की दृष्टि से शिरस्थ गंगा को छिपाने का प्रयत्न करते हुए भगवान् शंकर आपकी रक्षा करें। ४।

(- अज्ञात कवि)

धन्या केयं स्थिता ते शिरसि शशिकला किं नु नामैतदस्या
नामैवास्यास्तदेतत्परिचितिमपि ते विस्मृतं कस्य हेतोः।
नारीं पृच्छामि नेन्दुं कथयतु विजया न प्रमाणं यदीन्दु-
र्देव्या निह्नोतुमिच्छोरिति सुरसरितं शाठ्यमव्याद्विभोर्वः।। ५।।

मुद्राराक्षसे नान्दी-पद्यम्, विशाखदत्तस्य।

(पार्वती-) 'आपके शिर पर यह कौन-सी सौभाग्यशालिनी नारी बैठी है ?' (शिव-) 'यह तो शशिकला है।' (पार्वती-) 'क्या इसका यही नाम है ?' (शिव-) हाँ, इसका यह नाम ही है, और इस नाम से तो तुम परिचित ही हो, फिर तुमने किसलिए इसे भुला दिया ?' (पार्वती-) अरे, मैं स्त्री के विषय में पूछ रही हूँ, चन्द्रमा (अथवा उसकी कला) के विषय में नहीं।' (शिव-) 'अरे, तुम्हें यदि इस विषय में मेरी बात पर विश्वास नहीं है, तो अपनी (सखी) विजया से पूछ लो' - इस प्रकार देवी पार्वती से गंगा को छिपाने के लिए भगवान् शंकर जिस कुटिलता का प्रयोग कर रहे हैं, वह आपकी रक्षा करे। ५।

(विशाखदत्त, मुद्राराक्षसगत नान्दी-पद्य)

८. हरहास्यम्।

पाणौ कङ्कणमुत्फणः फणिपतिर्नेत्रं ज्वलत्पावकं
कण्ठः कुण्ठितकालकूटजटिलो वस्त्रं गजेन्द्राजिनम्।
गौरीलोचनलोभनाय सुभगो वेशो वरस्येति मे
गण्डोल्लासविभावितः पशुपतेर्हास्योद्गमः पातु वः।। १।।

रुद्रस्य।

८. हर-हास्य

'(मेरे) हाथ में कंगन के रूप में फन उठाये हुए नागराज हैं, आँख आग से जल रही है, कण्ठ में कालकूट (विष) की कठोरता निहित है, वस्त्र है गजचर्म'- इस प्रकार वर के रूप में, पार्वती के नेत्रों में आकर्षण उत्पन्न करने के लिए मैंने क्या ही बढ़िया वेश बना रखा है !' - (इस बात को सोच-सोचकर अपने ही कौतुक पर स्वयं प्रसन्न होने वाले) भगवान् शंकर की वह उल्लसित हँसी आपकी रक्षा करे, जिसका अनुमान उनके गण्डस्थल के उल्लास से हो रहा है। १।

(- रुद्र)

उद्दामदन्तरुचिपल्लवितार्धचन्द्र-
ज्योत्स्नानिपीततिमिरप्रकरावरोधः।
श्रेयांसि वो दिशतु ताण्डवितस्य शम्भो-
रम्भोधरावलिघनध्वनिरट्टहासः।। २।।

सङ्घमित्रस्य।

ताण्डवनृत्य के समय, बादलों की गड़गड़ाहट के सदृश सघन रूप से ध्वनित हो रहा भगवान् शंकर का वह अट्टहास आपको कल्याणराशि की दिशा में अग्रसर करे, जिसने अपनी उत्कट दन्त-कान्ति से पल्लवित अर्धचन्द्र की चन्द्रिका से समस्त अन्धकार-समूह के अवरोध को निगल लिया है। २।

(- सङ्घमित्र)

मातर्ब्रूहि किमेतदञ्जलिपुटे तातेन गोपायितं
वत्स स्वादु फलं प्रयच्छसि न मे गत्वा गृहाण स्वयम्।

मात्रैवं प्रहिते गुहे विघटयत्याकृष्य सन्ध्याञ्जलिं
शम्भोर्भग्नसमाधिरुद्‌धमनसो हास्योद्गमः पातु वः।। ३।।

योगेश्वरस्य।

(सन्ध्या के समय अर्घ्य देने के लिए अंजलि बाँध कर समाधिस्थ शिव के विषय में स्वामिकार्तिकेय माता पार्वती से पूछ रहे हैं -)

'माँ ! पिताजी ने अपनी अंजलि के पुट में यह क्या चीज छिपा रखी है ?' (पार्वती-) 'बेटा, (वह) स्वादिष्ट फल है।' (स्कन्द-) फिर माँ ! उसे तुम मुझे क्यों नहीं दे रही हो ?' (पार्वती-) 'बेटा ! तुम स्वयं ही उसे जाकर ले लो।' - इस प्रकार समझाकर माता पार्वती ने जब स्कन्द को भेजा, तो उन्होंने (शिव की) सान्ध्यकालिक अंजलि को खींचकर अलग कर दिया। (इसके कारण जब) शिव की समाधि टूटी, (और उन्हें वास्तविकता का पता चला, तो उनके) स्थिर मन से ठहाका फूट पड़ा। शिव का वही हास्योद्गम आपकी रक्षा करे। ३।

(-योगेश्वर)

निर्विघ्नं घनसारसारविशदस्वर्लोककल्लोलिनी-
कल्लोलप्रतिमल्लबाहुचलनैर्व्याप्तान्तरालश्रियः।
शम्भोः सम्भवदङ्गहारतरलोत्तंसामृतांशुद्रव-
प्राणत्प्राणिकपालचापलदृशो हासोर्मयः पान्तु वः।। ४।।

वाचस्पतेः।

राशि-राशि कपूर की तरह उज्ज्वल आकाश गंगा की लहरों का मुकाबला करने वाली भुजाओं के चलने से व्याप्त मध्यभाग की शोभा वाली, भगवान् शंकर की वे हास्य लहरें, विघ्नों का निराकरण कर आपकी रक्षा करें, जो अंगहार के हिलने से तरल हुए चन्द्रमा से टपकी अमृत की बूँदों से जी उठे कपालों के चंचल नेत्रों वाली हैं। ४।

(- वाचस्पति)

भृङ्गी कस्तव चर्चिके गुह न कोऽप्याकार एकस्तु नौ
सत्यं भृङ्गरिटे सुसत्यमनृतं लोकं तु मोटिर्विदितुः।
नग्नं पृच्छतमस्तु वां परिणयैकात्मत्वमित्युद्भट-
स्तावुत्सृज्य सपर्षदः पशुपतेर्हास्योद्गमः पातु वः।।५।।

शतानन्दस्य।

(भृंगी अथवा भृंगरिटि तथा कूष्माण्ड- ये दोनों शिव के गण हैं, इनमें से पहला दुबला-पतला है तथा दूसरा स्थूलकाय। चर्चिका पार्वती की सेविका है। इनके पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में स्वामिकार्त्तिकेय की विनोदवार्त्ता) 'अरी चर्चिके ! (यह) भृंगी तुम्हारा कौन है ?' (चर्चिका-) 'कुमार! कोई भी नहीं। हम दोनों का तो आकार ही एक (जैसा) है।' (स्कन्द-) 'भृङ्गी क्या यह (चर्चिका का) कथन सत्य है ?' (भृङ्गी-) 'पूर्णतया सत्य है। यह तो मोटे (कुष्माण्ड की शरारत है जो वह) लोगों से झूठी बात कहता रहता है।'

(स्कन्द-) '(चलो), दिगम्बर (शिव-) से पूछ लें।'

(भृङ्गी-) 'ठीक है।' (शिव-) 'तुम लोगों की वैवाहिक एकात्मता है।' (शिव के ऐसा कहते ही भृङ्गी और चर्चिका-) इन दो को छोड़कर, अपने गणों सहित शिव ने जो अट्टहास किया, वह आपकी रक्षा करे। ५।

(- शतानन्द)

६. हरशिरः।

त्वङ्गद्गङ्गमुदञ्चदिन्दुशकलं भ्रश्यत्कपालावलि-
क्रोडभ्राम्यदमन्दमारुतचयस्फारीभवद्भांकृति।
पायाद्वो घनताण्डवव्यतिकरप्राग्भारखेदस्खल-
द्भोगीन्द्रश्लथपिङ्गलोत्कटजटाजूटं शिरो धूर्जटेः।।१ ।।

वीर्यमित्रस्य।

६. हर-शिर

ताण्डवनृत्य के समय भगवान् शिव का वह शिर आपकी रक्षा करे, जिसमें गंगाजी सरपट दौड़ रही हैं, चन्द्रकला हिल रही है, मुण्डमाला खिसक रही है, तेज हवा का शोर बढ़ता जा रहा है, सब कुछ एक में गड्ड-मड्ड होता जा रहा है, नागराज लड़खड़ा रहे हैं और पीली-पीली उत्कट जटाएँ ढीली होकर बिखर गई हैं। १।

(- वीर्यमित्र)

सन्ध्याताण्डवितस्य खण्डपरशोरव्याज्जगन्ति ज्वल-
ल्ललाटाक्षिपुटोद्भवानलशिखालीढेन्दुलेखं शिरः।
भ्रश्यत्कृत्ति चलन्महाहि विगलद्व्योमापगाम्बु स्खल-
त्खण्डेन्दुच्छलदच्छभूति चटुलभ्राम्यज्जटासन्तति।। २।।

योगेश्वरस्य।

सन्ध्या के समय ताण्डव नृत्य में संलग्न भगवान् शिव का वह शिर संसार की रक्षा करे, जिसमें जलते हुए मस्तक के नेत्र-पुट से निकली अग्निशिखा ने चन्द्रलेखा को निगल लिया है; गज-चर्म खिसक रहा है, नागराज चलायमान हो उठे हैं, आकाशगंगा विगलित हो गई है, उससे बहे जल से चन्द्रमा (बिछल कर) लड़खड़ा रहा है, स्वच्छ भस्म घुलने लगी है और जटा-समूह हिल रहा है। २।

(- योगेश्वर)

धूमोद्भेदानभिज्ञस्फुरदनलमनाघ्रातपङ्काधिकार-
प्रेङ्खत्कल्लोलवारिव्यतिकरमनघस्पर्शजाग्रत्कपालम्।
अज्ञातास्तत्रियामादयितमविदितप्राणिहिंसोरगस्र-
ग्भूतेशस्य प्रभूताद्भुतमवतु शिरः श्रेयसां सन्ततिं वः।। ३।।

वैद्यगदाधरस्य।

भूतनाथ भगवान् शिव का वह शिर प्राचुर्य से आपकी कल्याण-परम्परा की रक्षा करे, जिसमें प्रज्वलित अग्नि यह नहीं जानती कि आग में धुआँ भी होता है ! पंकरहित गंगा-जल में लहरें दोलायमान हो रही हैं, निष्पाप स्पर्श से मुण्ड जग गये हैं, मस्तकस्थ निशानाथ चन्द्रमा कभी अस्त नहीं होता और सर्पों की कतार प्राणि-हिंसा से अपरिचित है। ३।

(- वैद्यगदाधर)

नाट्यावेगविनिः सृतत्रिपथगावारिप्रवाहाकुलः
शीघ्रभ्रान्तिवशाल्ललाटनयनज्वालातडिद्भीषणः।
मुण्डालीकुहरप्रसर्पदनिलास्फालप्रयुक्तध्वनिः
प्रावृट्काल इवोदितः शिवशिरोमेघः शिवायास्तु वः।। ४।।

कस्यचित्।

भगवान् शिव का शिररूपी वह मेघ आपका कल्याण करे, जो नाटकीय आवेग से निकल पड़ी गंगा के जल-प्रवाह से व्याप्त है, जल्दी-जल्दी में हो गई भ्रान्तिवश ललाटस्थ नेत्र की ज्वाला रूपी बिजली से भयंकर लग रहा है, मुण्डमाला के रिक्त स्थानों में भरती हुई वायु के कारण जिसमें प्रचण्ड गड़गड़ाहट हो रही है और जिससे वर्षा-काल के आगमन की सी प्रतीति होती है। ४।

(- अज्ञात कवि)

अन्तः स्वीकृतजाह्नवीजलमतिस्वच्छन्दरत्नाङ्कुर-
श्रेणीशोणभुजङ्गनायकफणाचन्द्रोल्लसत्पल्लवम्।
भूयादभ्युदयाय मोक्षनगरप्रस्थानभाजामितः
प्रत्यूहप्रशमैकपूर्णकलशप्रायं शिरो धूर्जटेः।। ५।।

जलचन्द्रस्य।

यहाँ से मोक्ष नगरी की ओर प्रस्थान कर रहे लोगों के विघ्नसमूह के निवारणार्थ व शान्ति-जल से परिपूर्ण कलश के सदृश भगवान् शिव का वह शिर आपका अभ्युदय करे, जिसमें जाह्नवी का जल समाविष्ट है तथा (जिसमें) अत्यन्त स्वच्छन्द रत्नों के अंकुरों की पंक्ति से लाल-लाल नागराज के फन और चन्द्रकला के रूप में उल्लसित पल्लव बँधे हुए हैं। ५।

(- जलचन्द्र)

१०. हरशिरोगङ्गा।

कपाले गम्भीरः कुहरिणि जटासन्धिषु कृशः।
समुत्तानश्चूडाभुजगमणिबन्धव्यतिकरे।
मृदुर्लेखाकोणे रयवशविलोलस्य शशिनः
पुनीताद्दीर्घं वो हरशिरसि गङ्गाकलकलः। १।।

योगेश्वरस्य।

१०. शिव के शिर पर स्थित गंगा

भगवान् शिव के शिर पर (विद्यमान) गंगा का वह कलकल नाद आपको सुदीर्घ काल तक पवित्र करे, जो शिर पर गम्भीर है, कुहर और जटाओं के मध्य क्षीण है, चूडा और नागमणि के मिलन-स्थल पर भलीभाँति विस्तृत है तथा (जल-प्रवाह के) वेगवश चंचल चन्द्रमा की कला वाले कोने में कोमल है। १।

(- योगेश्वर)

स जयति गाङ्गतरङ्गः शम्भोरुत्तुङ्गमौलिविनिविष्टः।
मज्जति पुनरुन्मज्जति चन्द्रकला यत्र शफरीव।। २।।

कस्यचित्।

भगवान् शिव के समुन्नत शिर पर विराजमान गंगा की उन लहरों की जय हो, जिनमें चन्द्रकला मछली के सदृश डूबती और उतराती रहती है। २।

(-अज्ञात कवि)

यच्चन्द्रकोटिकरकोरकभावभाजि
बभ्राम बभ्रुणि जटापटले हरस्य।
तद्वः पुनातु हिमशैलशिलानिकुञ्ज-
सात्कारडम्बरविरावि सुरापगाम्भः।। ३।।

कस्यचित्।

देवनदी गंगा का वह जल आपको पवित्र करे, जो चन्द्रमा की कोटि-कोटि किरणों की कोर का प्रेमास्पद है, भूरे रंग की जटाओं में (जो) भ्रमण करता रहता है, तथा हिमालय की शिलाओं के समूह के द्वारा किये गये सत्कार के सदृश प्रतिध्वनित होता रहता है। ३।

(-अज्ञात कवि)

गौरीविभज्यमानार्द्ध-सङ्कीर्णे हरमूर्धनि।
अम्ब द्विगुणगम्भीरे भागीरथि नमोऽस्तु ते ।। ४।।

कस्यचित्। (अनर्घराघव ७।११८)

मातः गंगे ! तुम्हें नमस्कार। (तुम तो) पार्वती के द्वारा बँटा लेने के कारण संकीर्ण हो गये शिव के शिर पर दो गुनी गम्भीरता से रहती हो। ४। (-अज्ञात कवि[1])

मुक्ताभा नृकपालशुक्तिषु जटावल्लीषु मल्लीनिभा-
वह्नौ लाजनिभा दृशोर्मणिनिभा भोगोत्करे भोगिनः।
नृत्यावर्तपरम्परेरितपयःसंमूर्च्छनोच्छालिताः
खेलन्तो हरमूर्न्धि पान्तुं भवतो गङ्गापयोबिन्दवः।। ५।।

नटगाङ्गोकस्य।

भगवान् शंकर के शिर पर क्रीड़ा करती हुई गंगा के जल की वे बूँदें आपकी रक्षा करें, जो नरकपाल (रूपी) सीपियों में मोतियों की कान्ति (बिखेरती) हैं, जटा (रूपी) बेलों में जूही की तरह (खिलती और महकती) हैं, नेत्रस्थ अग्नि में सील की तरह (चमकती) हैं, नागराज के फणसमूह पर मणियों के सदृश (जगमगाती) हैं तथा नृत्यावृत्ति की परम्परा से प्रेरित सम्मूर्च्छनाओं में बार-बार उछाली जाती हैं। ५।

(-नटगाङ्गोक)

---

१. अनर्घराघव (७.११८) में यह पद्य प्राप्त हो जाता है।

११. हरशिरश्चन्द्रः

स वः पायादिन्दुर्नवविसलताकोटिकुटिलः
स्मरारेर्यो मूर्ध्नि ज्वलनकपिशे भाति निहितः।
स्रवन्मन्दाकिन्याः प्रतिदिवससिक्तेन पयसा
कपालेनोन्मुक्तः स्फटिकधवलेनाङ्कुर इव।। १।।

राजशेखरस्य।

११. शिव के शिर पर स्थित चन्द्रमा

कामारि भगवान् शिव के अग्निवर्ण शिर पर स्थित चन्द्रमा (की वह कला) आपकी रक्षा करे, जो नई कमललता की कोर की तरह कुछ टेढ़ी है। वह स्फटिक के सदृश उज्ज्वल कपाल पर प्रस्फुटित उस (नये) अंकुर के सदृश है, जिसकी आकाशगंगा से टपकते हुए जल से प्रतिदिन सिंचाई होती रहती है। १।

(-राजशेखर)

व्यलीके पार्वत्याः परिलघुलवैरञ्जनजुषः
पतद्भिर्वाष्पस्य क्रमलिखितलक्ष्मा विजयते।
लसल्लीलाचन्द्रश्चरणगतमौलेः स्मरजितः
किरद्भिः स्वज्योत्स्नानखमणिभिरापूरितकणः।। २।।

वामनस्य।

रुष्ट पार्वती को मनाने के लिए, कामविजयी होने पर भी, शिव ने उनके चरणों पर शिर रख दिया है। उस समय नाराज पार्वती की आँखों से जो जलबिन्दु गिरते हैं, उनमें उनकी आँखों के काजल-कण भी मिले हुए हैं। (कवि की उत्प्रेक्षा है कि) शिरस्थ चन्द्रमा में जो कलंक का चिह्न है, उसका निर्माण उन्हीं काजल-कणों से हुआ है। पार्वती के चन्द्रिका सदृश नाखूनों की मणियों से निकले प्रकाश के कण जिस चन्द्रमा में भरे हुए हैं, उसकी जय हो। २।

(- वामन)

शम्भोरिन्दुकला शिवं दिशतु वो यस्याः प्रतिच्छायिकां
त्रिस्रोतःपतितामनेककुटिलीभावं गतां वीचिभिः।

सेनानीरवलोकते ध्वजपटाकूतेन कात्यायनी
मल्लीदामसमीहया निजवधूबोधेन नागाधिपः।। ३।।

उमापतेः।

शंकरजी के (शिर पर स्थित) वह चन्द्रकला आपका कल्याण करे, जिसकी परछाईं पड़ने पर, त्रिपथगा गंगा, लहरों के माध्यम से, बहुविध वक्रता से युक्त हो गई है। (इसके कारण गंगाजी को) देवसेनापति कार्त्तिकेय अपनी सैन्य-ध्वजा के पट के रूप में देख रहे हैं, कात्यायनी देवी जूही के फूलों की माला समझ रही हैं और नागराज अपनी अर्द्धाङ्गिनी अर्थात् नागिन (मान बैठे) हैं। ३।

(- उमापति)

अमुद्रकुमुदत्विषः स्फुटितफेनलक्ष्मीस्पृशो-
मरालकुलविभ्रमाः शफरफाललीलामृताः।
जयन्ति गिरिजापतेस्तरलमौलिमन्दाकिनी-
तरङ्गचयचुम्बिनस्तुहिनदीधितेरंशवः।। ४।।

उमापतिधरस्य।

भगवान् शिव के मस्तक पर स्थित गंगाजी की लहरों का चुम्बन करने वाली उन चन्द्र-किरणों की जय हो, जिनकी कान्ति खिले हुए कुमुद कुसुमों के सदृश है, जो स्फुटित फेन की शोभा से युक्त हैं, राजहंसों के हाव-भावों की प्रतीति कराने वाली हैं, और मत्स्यावतारकालीन वस्त्र-लीला के अमृत से परिपूर्ण हैं। ४।

(-उमापतिधर)

च्युतामिन्दोर्लेखां रतिकलहभग्नं च वलयं
द्वयं चक्रीकृत्य महसितमुखी शैलतनया
अवोचद्यं पश्येत्यवतु स शिवः सा च गिरिजा
स च क्रीडाचन्द्रो दशनकिरणापूरितकलः।।५।।

वररुचेः।

रतिक्रीड़ा की कलह में (शिव के शिर से) टूटी हुई चन्द्रलेखा और (अपने हाथ के) टूटे कंगन-इन दोनों को (एक में मिलाकर और उसे) चक्राकार बनाकर पार्वती जी ने हँस कर शिव से कहा - '(लीजिए) देखिए !' वे शिव, वही पार्वती और दन्त-कान्ति की किरणों से परिपूर्ण कलाओं वाला वही चन्द्रमा (आपकी) रक्षा करें। ५।

(- वररुचि)

१२. हरजटा

ज्वालेवोर्ध्वविसर्पिणी परिणतस्यान्तस्तपस्तेजसो
गङ्गातोयतरङ्गसर्पवसतिर्वल्मीकलक्ष्मीरिव।
सन्ध्येवार्द्रमृणालकोमलतनोरिन्दोः सहस्थायिनी
पायाद्वस्तरुणारुणांशुकपिला शम्भोर्जटासंहतिः।।१।।

रविनागस्य

१२. हर की जटाएँ

भगवान् शंकर की वे जटाएँ आपकी सुरक्षा करें, जो तरुण सूर्य की किरणों के सदृश कपिलवर्णी, अग्निशिखा के सदृश ऊपर आरोहण करने वाली, परिपक्व तेज के आन्तरिक तप के समान, गंगाजल की लहर रूपी बाँबी (-साँप के बिल) की शोभा के तुल्य तथा सरस कमल नाल के समान कोमल शरीर वाले चन्द्रमा के साथ सन्ध्या के सदृश निवास करने वाली हैं। १।

(- रविनाग)

चूडापीडनिबद्धवासुकिफणाफूत्कारनिर्यद्विष-
ज्वालाजृम्भितमत्स्यकच्छपवधूलीढेन्दुलेखामृतम्।
अव्याद्वः स्मरसूदनस्य मदनक्रीडाकचाकर्षण-
श्च्योतन्नाकसरित्सरोषगिरिजादृष्टं जटामण्डलम्।। २।।

भवभूतेः।

कामान्तक शिव का वह जटा-मण्डल आपकी रक्षा करे, (जिसमें स्थित) चन्द्रलेखागत अमृत को (शिव की) चूड़ाओं को निचोड़ने में लगे वासुकि के फनों की फूत्कार से निकलने वाले विष की ज्वाला से अंगड़ाई लेने वाले मत्स्य और कच्छपों की गृहिणियाँ चाटती रहती हैं तथा काम-क्रीड़ा के समय (शिव के) केशों को खींचती हुई पार्वती जी जिस (जटा-मण्डली) से बहती हुई आकाशगंगा को रोषपूर्वक देखती रहती हैं। २।

(-भवभूति)

क्वचिदमरसरित्क्वचित्कपालं क्वचिदुरगाः क्वचिदैन्दवी च लेखा।
इति विषमविभूषणैरुपेता प्रमथपतेरवताज्जटाटवी वः।। ३।।

दण्डिनः

भूतनाथ भगवान् शिव की जटाओं की वह अरण्यानी आपकी रक्षा करे, जो विचित्र आभूषणों से युक्त है। उसमें कहीं देवनदी गंगा है, कहीं मुण्डमाला है, कहीं सर्पसमूह है और कहीं चन्द्रलेखा है। ३।

(- दण्डी)

उत्पन्नेव दृशोर्चिषा कुसुमितेवेन्दोः करैर्भोगिभिः
सारोहेव जटाटवी फलतु वः श्रेयो भवानीपतेः।
यत्पर्यन्तविवर्तिनः सुरसरित्पूरस्य भूरिस्फुर-
त्फेनोद्रेकविलासमञ्चति विधेर्जीर्णा कपालावली।। ४।।

उमापतिधरस्य

पार्वतीपति शिव का वह जटावन आपके लिए कल्याणमय फल को उत्पन्न करे, जो मानों नेत्रों की ज्योति से समुत्पन्न है, चन्द्रमारूपी फूल जिसमें खिला हुआ है, और सर्पों के फन जिसे ऊपर उठाते रहते हैं। (इसके अतिरिक्त) जिन जटाओं के समीप लहराने वाले गंगा के जलप्रवाह में भरपूर उठी फेनराशि में विधाता की जीर्ण मुण्डमाला भी (तैरने का) आनन्द लेती रहती है। ४।

(-उमापतिधर)

मूलानवद्धभुजगेन्द्रकृतालवाल-
बन्धाः स्खलत्त्रिदशसिन्धुजलौघसिक्ताः।
उन्मुक्तचन्द्रकुसुमा जगतां हिताय
शम्भोर्जटाः कनककल्पलताः फलन्तु।। ५।।

संसार के उपकार-हेतु, शंकर जी की वे स्वर्णमयी कल्पलता (-सी) जटाएँ फलोत्पादन करें (जिनकी) जड़ों में गुँथे नागराज आलवाल-बन्धन (थाल्हा अथवा बाड़) की-सी प्रतीति कराते हैं और आकाशंगा की जलराशि जिनहें सींचती रहती है। ५।

१३. हरकपालः

शान्त्यै वोऽस्तु कपालदाम जगतां पत्युर्यदीयां लिपिं
क्वापि क्वापि गणाः पठन्ति पदशो नातिप्रसिद्धाक्षराम्।
विश्वं स्रक्ष्यति वक्ष्यति क्षितिमपामीशिष्यते ऽशिष्यते
नामानागिषु रंस्यते स्यति जगन्निर्वेक्ष्यति द्यामिति।। १।।

कस्यचित्।

१३. हर-कपाल

जगत् के स्वामी शिव की वह कपालमाला आपके लिए शान्तिकारक सिद्ध हो, जिसकी अस्पष्ट अक्षरों वाली लिपि को शिव के गण शब्दशः इस प्रकार पढ़ते हैं- 'यह विश्व की सर्जना करेगी, पृथिवी को वहन करेगी, जलराशि का स्वामित्व करेगी, नागों को आघात नहीं पहुँचायेगी, रागियों में रमण करेगी, (प्रलयकाल में) संसार का प्रक्षेप करेगी और स्वर्गलोक में समग्र रूप से प्रवेश करेगी।' १।

(- अज्ञात कवि)

गाढग्रन्थिप्रफुल्लद्गलविकलफणापीठनिर्यद्विषाग्नि-
ज्वालानिष्टप्तचन्द्रद्रवदमृतरसप्रोषितप्रेतभावाः।
उज्जृम्भा बभ्रुनेत्रद्युतिमसकृदसृक्तृष्णयालोकयन्त्यः
पान्तु त्वां नागनालग्रथितशवशिरः श्रेणयो भैरवस्य।। २।।

भवभूतेः।

भैरव के, नागों की नाल में गूँथे गये शवों के शिरों की वे कतारें आपकी रक्षा करें, जो गले की प्रगाढ़ विष-ग्रन्थि के फूलने से बेचैन (साँपों के) फनों से निकलती हुई विष-ज्वाला से सन्तप्त चन्द्रमा के बहते हुए अमृत रस से पुष्ट होकर प्रेतत्व पा गई हैं तथा जँभाई लेकर भूरे नेत्रों की कान्ति को बार-बार रुधिर-पान की तृष्णा से ताक रही हैं। २।

(- भवभूति)

जयति भुजगरज्जुग्रन्थिनिष्पीडितेन्दु-
स्रवदमृतनिवृत्तप्रेतभावैः कपालैः।
विरचितनुतिबन्धो मूर्ध्नि सद्यः पुरारिः
परिणतबहुकल्पब्रह्मणां ब्रह्मघोषः।। ३।।

कस्यचित्

त्रिपुरारि शिव के मस्तक पर, बीते हुए बहुत-से कल्पों के उन ब्राह्मणों के वेदघोष की जय हो, जो (शिव के शरीर में कपालों के रूप में स्थित हैं और) सर्प-माला की गाँठ के द्वारा दबाये गये चन्द्रमा से टपके हुए अमृत के प्रभाव से अपने प्रेतस्वरूप से छुटकारा पा गये हैं तथा जिन्होंने (इन प्रेतस्वरूप से विमुक्त) कपालों के द्वारा (शिव के मस्तक पर) प्रार्थना-मुद्रा बना ली है। ३।

(- अज्ञात कवि)

लिप्ता लालाटनेत्रस्फुरदुरुदहनज्वालजालप्रतापो-
त्ताम्यत्कोटीरभारस्थिरशशिशकलप्रस्रुताभिः सुधाभिः।
अन्तर्नृत्यप्रमोदप्रचलितशिरसश्चन्द्रमौलेः कपालाः
कल्याणं वः क्रियासुः स्तुतिमभिदधतस्ताण्डवाडम्बरेषु।। ४।।

नरसिंहस्य।

ताण्डव-नृत्यों में, आन्तरिक नृत्यानन्द से हिलते हुए शिर वाले, चन्द्रमौलि भगवान् शिव के वे कपाल आप सभी स्तुतिकर्त्ताओं का कल्याण करें, जो मस्तकस्थ (तृतीय) नेत्र से निकली प्रचण्ड अग्नि-ज्वाला से सन्तप्त जटाभार से स्थिर चन्द्रमा की कला से बही अमृतधारा से सिंचित हैं। ४।

(- नरसिंह)

पायाद्वः स शिरांसि ताण्डवविधौ यन्मूर्ध्नि खिन्नोरग-
श्वासाग्निद्रुतचूडचन्द्रसुधया प्राणन्त्यकस्माद्विधेः।
ऋक्सामे कतिचित्पठन्ति कतिचिन्मज्जन्ति गङ्गाजले
स्वात्मानं कतिचिन्मनन्ति कतिचिन्नेत्रानले जुह्वति।। ५।।

वामदेवस्य।

वे (भगवान् शंकर) आपकी रक्षा करें, ताण्डव नृत्य के अनुष्ठान के समय जिनके मस्तक पर बेचैन सर्पों की श्वासाग्नि से पिघले शिरस्थ चन्द्रमा के अमृत (- पान) से अकस्मात् मुण्डमालागत कपाल जीवित हो उठे हैं। उनमें से कुछ ऋग्वेद का पाठ और सामवेद (का गान) कर रहे हैं, कुछ गंगा स्नान कर रहे हैं, कुछ आत्म-चिन्तन में लीन हैं और कुछ नेत्राग्नि में अग्निहोत्र कर रहे हैं। ५।

(- वामदेव)

१४. हरनयनम्

धूमध्यामककुम्भि भूधरतटत्रुट्यद्दृषन्ति स्फुटा-
टोपोल्लुण्ठितसागराम्भि विफलव्यालोकभास्वन्ति च।
दृप्यत्तूर्णमरुन्ति कातरतरभ्रश्यज्जगन्ति प्रभो-
रुद्यन्ति त्रिपुरान्तकृन्ति नयनादर्चींषि पुष्यन्तु वः।। १।।

कस्यचित्।

१४. हर-नयन

भगवान् शिव के तृतीय नेत्र की वे उदयशील और त्रिपुरविनाशिनी ज्वालाएँ आपको परिपुष्ट करें, जिनके धुएँ की रेखाएँ दिशाओं में व्याप्त हैं, पर्वत तटों के टूटने से जो प्रसन्न होती हैं, जिनके स्वाभिमान से सागर का जल ऊभ-चूभ करने लगता है, जयोतिष्पिण्डों की दृष्टि-सामर्थ्य विफल हो जाती है, दर्प से मरुद्गण शीघ्रता करने लगते हैं और संसार अधिक कातर होकर विनष्ट होने लगता है। १।

(- अज्ञात कवि)

यज्जोतिर्द्वादशार्कं हिमगिरिदुहितुर्यन्त्रिशाकेलिदीपो
यत्कन्दर्पास्थिभस्मीकरणतरुणिताभ्यन्तरज्वाललेखम्।
कल्पान्ते जुह्वतो यत्त्रिभुवनसमिधं वेधसः पुण्यवह्नि-
र्बिभ्राणं बभ्रुकान्तिं त्रिनयननयनज्योतिरस्तु श्रिये वः।। २।।

अंशुधरस्य।

त्रिनेत्रधारी भगवान् शिव के तृतीय नेत्रस्थ भूरे रंग की वह ज्योति आपका कल्याण करे, जो द्वादश आदित्यों के स्वरूप वाली है, पार्वती की निशा-केलि में दीपक का कार्य करती है, कामदेव की हड्डियों को भस्म करते समय जिसकी आन्तरिक अग्निशिखा युवा हो उठी थी और प्रलयकाल में तीनों लोकों की समिधा से होम करते हुए ब्रह्मा जी की जो पवित्र (अर्थात् यज्ञीय) वह्नि है। २।

(अंशुधर)

आनन्दस्तिमिताः समाधिषु मुखे गौर्या विलासालसाः
सम्भ्रान्ताः क्षणमद्भुताः क्षणमथ स्मेरा निजे वैकृते।
क्रूराः कृष्टशरासने मनसिजे दग्धे घृणाकूणिता-
स्तत्कान्तारुदितेश्रुपूरतरलाः शम्भोर्दृशः पान्तु वः।। ३।।

कस्यचित्।

भगवान् शंकर के वे नेत्र आपकी रक्षा करें, जो समाधि-वेला में आनन्द से शान्त और निमीलित रहते हैं, पार्वती के मुख पर विलासजन्य आलस्य से केन्द्रित रहते हैं, क्षण में (इधर-उधर) घूमते हैं, (फिर) क्षण में ही विचित्र आकार के हो जाते हैं, अपने ही विकृत स्वरूप पर मुस्कराते रहते हैं। कामदेव के द्वारा धनुष तानने पर जो शिव-नेत्र निष्ठुर हो जाते हैं, उसके दग्ध होने पर उनमें ही दया मुखर हो जाती है और जब कामदेव की पत्नी रति विलाप करने लगती है तो उन्हीं आँखों में आँसू छलछला आते हैं। ३।

(- अज्ञात कवि)

पक्ष्मालीपिङ्गलिम्नः कण इव तडितां यस्य कृत्स्नः समूहो
यस्मिन् ब्रह्माण्डमीषद्विघटितमुकुले कालयज्वा जुहाव।
अर्चिर्निष्टप्त चूडाशशिगलितसुधासारसाङ्कारिकोणं
तार्तीयीकं पुरारिस्तदवतु मदनप्लोषणं लोचनं वः ।।४।।

भवभूतेः।

कामदेव को जलाकर खाक कर देने वाला त्रिपुरारि शिव का वह तृतीय नेत्र आपकी रक्षा करे, जिसका समस्त स्वरूप पलकों के पीलेपन के कारण विद्युत्कण-सा प्रतीत होता है, जिसकी थोड़ी-थोड़ी कलिका सदृश खुली वहि में कालरूपी यज्ञानुष्ठाता समग्र ब्रह्माण्ड को (हवि बनाकर) होम करता है, और जिसके एक कोने में ज्वाला से सन्तप्त मस्तकस्थ चन्द्रमा से टपके अमृत का सर्वस्वांश लगा हुआ है। ४।

(- भवभूति)

एकं योगनियोजनान्मुकुलितं चक्षुर्द्वितीयं पुनः
पार्वत्या जघनस्थलस्तनतटे सम्भोगभावालसम्।
अन्यद्दूरविकृष्टचापमदनक्रोधानलोद्दीपितं
शम्भोर्भिन्नरसं समाधिसमये नेत्रत्रयं पातु वः।। ५।।

श्रीहर्षदेवस्य।

समाधि के समय, विभिन्न रसों की (एक साथ अनुभूति में) संलग्न भगवान् शंकर के तीनों नेत्र आपकी रक्षा करें। इनमें से एक नेत्र योग-साधना में संलग्न होने से निमीलित है, दूसरा पार्वती के जघनस्थल और स्तनों के किनारे पर सम्भोगावस्था में अलसाया सा केन्द्रित है और तीसरा दूर पर धनुष को ताने हुए कामदेव पर उमड़े क्रोध की अग्नि में धधक रहा है। ५।

(- श्रीहर्षदेव)

१५. त्रिपुरदाहारम्भः।

संरब्धाङ्घ्रिनिवेशनादनिभृतं सर्वंसहाविग्रहे
वीतालम्बनमारसातलमधोविभ्रंशिनि स्यन्दने।
याते दृक्पथदूरतां मयपुरे देवस्य भूतप्रभो-
र्द्राग्विश्वंभरबाणमोक्षविषयो यत्नः शिवायास्तु वः।। १।।

वैद्यगदाधरस्य।

१५. त्रिपुरदाह का आरम्भ

पृथिवी (-सर्वंसहा-) पर युद्ध होने पर, विक्षुब्ध चरण-निक्षेप के कारण, जब स्पष्टरूप से रसातल तक आधार समाप्त हो गया और रथ नीचे धँसने लगा तथा मय के द्वारा निर्मित पुर दूर दिखने लगा, उस समय भूतनाथ भगवान् शिव के द्वारा जल्दी से संसार का पोषण करने के लिए (धनुष पर आरोपित) बाण को छोड़ने का प्रयत्न आपका कल्याण करे। १।

चापोत्क्षेपापसर्पद्वलयफणिगुणोत्तंसितापाङ्गभित्ति
प्रत्यालीढानुबन्धोच्छलितजलनिधिव्याप्तवेलोपकण्ठम्।
उन्मीलद्भालवह्निक्रमशिथिलजटाजूटागङ्गेन्दुलेखं
भूयाद्वश्चन्द्रमौलेर्मयनगरभिदः सौष्ठवं मङ्गलाय।। २।।

जलचन्द्रस्य।

मय दैत्य के द्वारा निर्मित पुरों का नाश करने वाले चन्द्रमौलि भगवान् शिव का वह सौन्दर्य आपका मंगल करे, जिसमें धनुष ऊपर उठाने के कारण खिसकते हुए कंकणगत साँप नेत्रों के किनारे कर्णाभूषण-सदृश प्रतीत हो रहे हैं, लक्ष्यवेध की मुद्रा से उछली जलराशि सीमातट पर लहरा रही है, खुलते हुए ललाटस्थ नयन की अग्नि से क्रमशः जटा-जूट, गङ्गा का प्रवाह और चन्द्रलेखा जिसमें अस्त-व्यस्त हो गये हैं। २।

(- जलचन्द्र)

संव्यानांशुकपल्लवेषु तरलं वेणीगुणेषु स्थितं
मन्दं कञ्चुकसन्धिषु स्तनतटोत्सङ्गेषु दीप्तार्चिषम्।
आलोक्य त्रिपुरावरोधनवधूवर्गस्य धूमध्वजं
हस्तस्रस्तशरासनो विजयते देवो दयार्द्रेक्षणः।। ३।।

मयूरस्य।

(त्रिपुर-दाह के समय) तीनों पुरों में रहने वाली दैत्य स्त्रियाँ (अपने पतियों की मृत्यु हो जाने पर आत्म-दाह में प्रवृत्त हुईं, उस समय उनके पास से उठने वाली) अग्नि चादर-दुपट्टों में तरल, कञ्चुक-रन्ध्रों में मन्द और स्तनों के समीप प्रदीप्त शिखाओं वाली थी। उसे देखकर भगवान् शिव के नेत्र दयार्द्र हो उठे, हाथों में गृहीत धनु शिथिल हो गया-ऐसे भगवान् शिव की जय हो ! ३।

(- मयूर)

वाणीभूतपुराणपूरुषधृतिप्रत्याशया धारिते
विद्रातीक्षणजाशुशुक्षणिकणक्लान्ते शकुन्तेश्वरे।
नम्रोन्नम्रभुजङ्गपुङ्गवगुणव्याकृष्टवाणासन-
क्षिप्तास्त्रस्य पुरद्रुहो विजयते सन्धानसीमाश्रमः।। ४।।

मुरारेः।

वाणीभूत पुराण पुरुष (-विष्णु) के धैर्य की प्रत्याशा से धारित, तथा नेत्रोत्पन्न वायु के कणों से क्लान्त हुए पक्षिराज गरुड़ के विचलित हो जाने पर, झुके और आकाशोन्मुखी प्रचण्ड नागों की प्रत्यंचा से युक्त धनु पर आरोपित बाणों का प्रक्षेप करने वाले त्रिपुरारि शिव के लक्ष्य वेध की सीमा (तक किये गये) श्रम की जय हो ! ४।

(- मुरारि)

दृष्टः सप्रेमदेव्या किमिदमिति भयात्सम्भ्रमाच्चासुरीभिः
शान्तान्तस्तत्त्वसारैः सकरुणमृषिभिर्विष्णुना सस्मितेन।
आकृष्यास्त्रं सगर्वैरुपशमितवधूसम्भ्रमैर्दैत्यवीरैः
सानन्दं देवताभिर्मयपुरदहने धूर्जटिः पातु युष्मान्।। ५।।

भट्टनारायणस्य।

मयनिर्मित पुरों के दाह के समय वे भगवान् शिव आपकी रक्षा करें, जिन्हें भगवती पार्वती ने प्रेम से, असुर-पत्नियों ने भय और घबड़ाहट से (कि) 'यह क्या हो गया !' - इस भाव से, तत्त्वद्रष्टाओं ने शान्त हृदय से, ऋषियों ने (संसार-नाश की संभावनावश) करुणापूर्वक, विष्णु ने मुस्कानपूर्वक तथा देवों ने आनन्दपूर्वक देखा था। दैत्यों ने धनुष को तानकर पहले तो गर्व से देखा फिर जब अपनी स्त्रियों को घबड़ाई हुई अवस्था में देखा, तो वे गर्वरहित होकर देखने लगे। ५।

(- भट्टनारायण)

१६. हरबाणः।

क्षिप्तो हस्तावलग्नः प्रसभमभिहतोप्याददानोंऽशुकान्तं
गृह्णन् केशेष्वपास्तश्चरणनिपतितो नेक्षितः सम्भ्रमेण।

आलिङ्गन्योऽवधूतस्त्रिपुरयुवतिभिः साश्रुनेत्रोत्पलाभिः
कामीवार्द्रापराधः स दहतु दुरितं शाम्भवो वः शराग्निः।। १।।

अमरुकस्य।

१६. शिव का बाण

भगवान् शंकर के बाण की वह अग्नि आपके दुःख, दुर्व्यसन और पापों को दग्ध करे, जो आँसू भरे नेत्रों वाली त्रिपुर युवतियों के द्वारा (दूर) फेंकी जाने पर हाथ में लग जाती है, बरबस फिर हटाने पर चादर के छोर को पकड़ लेती है, बालों को पकड़ने पर जब पुनः हटाई जाती है, तो घबड़ाहट के कारण वे उसे देख नहीं पातीं। स्त्रियों के आलिङ्गन में वह (अग्नि) किसी कामुक संन्यासी की तरह ताजा-ताजा अपराध करने वाली-सी प्रतीत होती है। १।

(- अमरुक)

सिन्दूरश्रीर्ललाटे कनकरसमयः कर्णपाशेऽवतंसो
वक्त्रे ताम्बूलरागः पृथुकुचकलसे कुङ्कुमस्यानुलेपः।
दैत्याधीशाङ्गनानां जघनपरिसरे लाक्षिकक्षौमलक्ष्मी-
रश्रेयांसि क्षिणोतु त्रिपुहरशरोद्गारजन्मानलो वः।। २।।

मङ्गलस्य।

त्रिपुरारि शिव के द्वारा छोड़े गये बाणों से निकली वह अग्नि आपके अमंगल को विनष्ट करे, जो दैत्य-राजाओं की रानियों के ललाट पर सिन्दूर की शोभा, कर्णाभूषण में पिघले हुए सोने, मुख में ताम्बूल की लाली, भारी-भारी स्तन-कलशों पर कुंकुमलेप, और जघन भाग पर लाक्षारस में रंगे रेशमी वस्त्रों की सुन्दर शोभा के सदृश प्रतीत होती है। २।

(- मङ्गल)

विष्वग्व्याधूय धूमप्रचययवनिकां स्फायमानस्फुलिङ्ग-
व्याजादाकीर्य पुष्पाञ्जलिमुपरि पटं न्यस्यतो मन्दिराणाम्।
स्वच्छन्दाभोगसीमा महति मयपुरे दत्तरौद्राङ्गराग-
व्याप्ताशेषस्य विश्वेश्वरशरशिखिनस्ताण्डवं नः पुनातु ।। ३।।

वैद्यगदाधरस्य।

भगवान् विश्वनाथ के बाणों की उस अग्नि की ताण्डव (लीला) आपको पवित्र करे, जिसने भवनों पर पैर रखकर चारों ओर धुएँ के पर्दे को फैला दिया है, बड़ी-बड़ी चिनगारियों के रूप में पुष्पाञ्जलि बिखेर दी है, और स्वच्छन्द रूप से विशाल मयपुर में लाल-लाल अंगराग को बिखेरते हुए समस्त त्रिपुर-क्षेत्र को व्याप्त कर लिया है। ३।

(- वैद्यगदाधर)

वाष्पैर्वीताङ्गरागच्छविषु विरचयन्नच्छधूमच्छटाभिः
कस्तूरीपत्रमायां मयनगरवधूवर्गवक्षोरुहेषु।
आसामम्लानपुष्पस्तवकनवकलामंशुभिः कुन्तलेषु
व्याकुर्वन्नन्धकारं हरतु हरशरोद्गारजन्मानलो वः।। ४।।

जलचन्द्रस्य।

शिव के बाण से उद्भूत वह अग्नि आपके (जीवन में व्याप्त) अन्धकार को हरे, जो मयपुर की स्त्रियों के उन स्तनों पर जिनके अंगराग की शोभा (लम्बी उसाँसें भरने के कारण उत्पन्न) वाष्प से समाप्त हो गई है, स्वच्छ धूम की छटा से कस्तूरी-पत्र रचना-सी करती हुई उनके केश-कलाप में अपनी ज्वालाओं से अम्लान पुष्पगुच्छ की नूतन कला का विस्तार करती है। ४।

(- जलचन्द्र)

चापं मुष्टिर्भवान्याः सरसिजमुकुलश्रीः कथं वा विधत्ते
प्रत्यालीढं कथं वा रचयतु मणिमन्नूपुरो वामपादः।
इत्थं यावद्वितर्कं विदधति विबुधास्तावदग्रे य आसी-
द्बाणाग्निः नष्टदैत्यो मयपुरदहने धूर्जटेः सोवताद्वः।। ५।।

कस्यचित्।

'पार्वती की कमल-कलिका के सदृश शोभा वाली मुट्ठी, धनुष की रचना किस प्रकार करती है या उनका मणिमय नूपुरों वाला बायाँ पैर लक्ष्यवेध की मुद्रा किस प्रकार बना सकता है'- देवगण जब इस प्रकार तर्क-वितर्क ही कर रहे थे तब तक मय नगरी के दाह के समय (शिव की) बाणाग्नि ने त्रिपुरासुर का विनाश कर दिया। धूर्जटी की वही बाणाग्नि आपकी रक्षा करे। ५।

(- अज्ञात कवि)

१७. अष्टमूर्तिः।

पयोदानां पन्थाः कवलविषयो वा परिमलं
वहन् बिभ्राणो वा सुहृदपसुहृद्वा जलरुहाम्।
ददद्गृह्णानो वा हविरिति मुहुर्यस्य विबुधाः
स्तुवन्त्यष्टौ मूर्तीः स जगदवतादन्धकरिपुः।। १।।

श्रीहनुमतः।

१७. अष्टमूर्त्ति (भगवान् शिव)

अन्धकासुर के शत्रु भगवान् शिव, जिनके आठ स्वरूपों की स्तुति देवगण करते रहते हैं, जगत् की रक्षा करें। (शिव की वे आठ मूर्त्तियाँ ये हैं -) पयस् (- जल -), दाताओं का मार्ग (आकाश), कवल का विषय (पृथिवी), परिमलवाहक (अग्नि), परिमलधारक (वायु), कमलों का मित्र (सूर्य), कमलों का शत्रु (चन्द्रमा), हविर्दान करके फलग्रहण करती हुई (यजमानरूपा) मूर्त्ति । १।

(- श्रीहनुमान्)

दिक्कालात्मसमैव यस्य विभुता यस्तत्र विद्योतते
यत्रामुष्य सुधीभवन्ति किरणा राशेः स यासामभूत्।
यस्तत्पित्तमुषःसु योऽस्य विधये यस्तस्य जीवातवे
वोढा यद्गुणमेष मन्मथरिपोस्ताः पान्तु वो मूर्तयः।। २।।

चित्तपस्य।

कामारि भगवान् शिव की ये मूर्त्तियाँ आपकी रक्षा करें-इनमें से एक वह है, जिसकी व्यापकता दिशाओं और कालस्वरूप के समकक्ष है, अर्थात् पृथिवी और दूसरी जो वहाँ चमकती है अर्थात् अग्नि, जहाँ किरणें अमृत बन जाती हैं अर्थात् चन्द्रमा, उनका पुँजीभूत रूप अर्थात् जल, उषःकालों में जो पीलेपन की वाहक है अर्थात् सूर्य, जो इसकी विधि के लिए है अर्थात् यजमान, और जो उसके प्राण-धारण के लिए है अर्थात् वायु तथा आकाश। २।

(- चित्तप)

मौलिं नेनेक्ति भालं तिलकयति तनोरङ्गरागं विधत्ते
धम्मिल्लं सन्दधाति प्रथयति शिरसि व्यक्तमुत्तंसलक्ष्मीम्।
सम्प्रीणीते भुजङ्गानपनयति रसं वेत्ति संमोदमुद्रां
याभिः श्रृङ्गारबन्धस्तनुभिरिव शिवस्ताभिरस्तु श्रिये वः।। ३।।

जलचन्द्रस्य।

भगवान् शिव अपनी उन मूर्त्तियों से आपका कल्याण करें, जिनसे उनकी श्रृंगार-सज्जा होती है। (उनमें से एक गंगाजी के रूप में जलरूपामूर्त्ति है, जिससे) शिर का प्रक्षालन होता है; (दूसरी अग्नि है जो) मस्तक में तिलक लगाती है, (तीसरी पृथिवी है, जिससे) शरीर में अंगराग (भस्म) का लेपन होता है, चौथी वह है जिसे जूड़े में धारण करते हैं, (पाँचवीं वह है जो) शिर पर मुकुट की शोभा-सदृश है; (छठी वायु है, जिससे) सर्पों को तृप्ति मिलती है (-साँपों का आहार वायु है-), सातवीं आर्द्रता सोखती है (अर्थात् सूर्य) आठवीं वह है, जिससे शिव को आनन्द-मुद्रा प्राप्त होती है अर्थात् शून्य ध्यानरूप आकाश रूपा मूर्त्ति। ३।

(- जलचन्द्र)

यां धम्मिल्लपदेभिषिञ्चति यया सन्ध्यासु बद्ध्वाञ्जलि-
र्यामायम्य यदात्मकानि नयनान्यामील्य यां ध्यायति।
यां च स्यन्दनतां निनाय सहितस्ताभिः स्वयं मूर्तिभि-
र्देवो विश्वतनुः पुनातु स जगच्चन्द्रार्धचूडामणिः।। ४।।

सुधाकरस्य।

विश्वमूर्त्ति चन्द्रमौलि भगवान् शिव अपनी उन मूर्त्तियों सहित आपको पवित्र करें, जिनमें से एक को (गंगाजी के रूप में) वे अपने जूड़े में अभिषिक्त करते हैं; दूसरी वह है, जिससे सन्ध्याकाल में वे अंजलि बाँधे रहते हैं, तीसरी (वायु) है जिससे वे प्राणायाम करते हैं, (अग्निरूपा मूर्त्ति) नेत्र स्वरूप है, आकाश रूपा मूर्त्ति का वे शून्य के रूप में ध्यान करते हैं, नन्दी बैल के रूप में गोरूपा (पृथिवी) मूर्त्ति है, जिसे उन्होंने रथ बना लिया है। ४।

(- सुधाकर)

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।

यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः ।।५।।

कालिदासस्य ।

प्रत्यक्ष आठ मूर्त्तियों से युक्त भगवान् शिव आपकी रक्षा करें। (इनमें से पहली जलरूपा मूर्त्ति) विधाता की प्रथम रचना है, (दूसरी है अग्नि जो) विधिपूर्वक डाली गई आहुति को (देवों तथा पितरों तक) पहुँचाती है, हवि रूपा मूर्त्ति, यजमान रूपा मूर्त्ति, काल का विधान करने वाला दोनों सूर्य और चन्द्रमा रूपी मूर्त्तियाँ, समस्त विश्व में व्याप्त शब्द-गुण वाली आकाश रूपा मूर्त्ति, सभी बीजों (-कारणों-) की मूल प्रकृति (-मूलकारण) अर्थात् पृथिवी और अन्तिम वायुरूपा मूर्त्ति है, जिससे सभी प्राणी प्राणवान् हैं। ५।

(- महाकवि कालिदास, शाकुन्तल १.१)

१८. भैरवः।

खट्वाङ्गीकृतधूमकेतु घटितप्रेताधिराट्पञ्जर-
प्रोतब्रह्मशिरःकपालवलयं बिभ्रज्जटामण्डलम्।
कण्ठे सप्तमहर्षिवक्त्ररचितामेकावलीमुद्वहन्
पायाद्वः सुलभव्रतोपकरणः कल्पान्तकापालिकः।। १।।

कस्यचित्।

१८. भैरव

प्रलयकालीन वे कापालिक (भैरव) आपकी रक्षा करें, जिन्होंने धूमकेतु को अपनी खाट का पाया बना रखा है, समस्त प्रेत स्वामियों के कंकालों में पिरोये ब्राह्मण-शिरों की मुण्डमाला और जटाओं को धारण कर रखा है, गले में सातों महर्षियों के मुखों से बनी एक लड़ी वाली माला डाल रखी है- इस प्रकार व्रत के सभी साधन जिनके स्वरूप में एक साथ उपलब्ध हो जाते हैं। १।

(- अज्ञात कवि)

सद्यःप्रध्वस्तदेवासुरसरसशिरःश्रेणिशोणारविन्द-
स्रग्दामानद्धमूर्तेर्घनरुधिरकणक्लिन्नचर्मांशुकस्य।

निष्पर्यायत्रिलोकीभवकवलरसव्यात्तवक्त्रस्य जीया-
दानन्दः कालरात्रीकुचकलसपरीरम्भिणो भैरवस्य।। २।।

उमापतिधरस्य।

कालरात्रि रूपी रमणी के स्तनपयोधरों के आलिङ्गन में निवद्ध उन महाभैरव का आनन्द सदैव (बना) रहे जिनके (कण्ठ में) तत्काल विनष्ट देवों और असुरों के रक्तलिप्त शिरों की श्रेणियों से लाल-लाल नीलकमलों की माला पड़ी है, गाढ़े रुधिर के कणों से जिनका चर्मवस्त्र गीला है, तीनों लोकों के समग्र प्राणियों को जिन्होंने अपना मुखग्रास बना रखा है और जिसका रस उनके मुख पर फैल रहा है। २।

(- उमापतिधर)

वैकुण्ठस्य करङ्कमङ्कनिहितं स्रष्टुः कपालं करे
प्रत्यङ्गं च विभूषणं विरचितं नाकौकसां कीकसैः।
भस्म स्थावरजङ्गमस्य जगतः शुभ्रं तनौ बिभ्रतः
कल्पान्तेषु कपालिनो विजयते रौद्रं कपालव्रतम्।। ३।।

भवभूतेः।

वैकुण्ठ का अस्थिपञ्जर जिनकी गोद में रखा है, विधाता का कपाल (जिनके) हाथ में है, प्रत्येक अंग में स्वर्गवासियों की हड्डियों से बने आभूषण निहित हैं, चराचर (-सम्पूर्ण-) जगत् की उज्ज्वल भस्म को जिन्होंने अपने शरीर पर धारण कर रखा है-ऐसे कपालधारी (-भैरव-) के रौद्र कपालव्रत की प्रलयकाल में जय हो। ३।

(-भवभूति)

एकाम्भोधीकृतायां भुवि जगदखिलं निर्जनीकृत्य खेल-
न्देवः कालीसहायः प्रसभविहरणोन्मुक्तलीलाट्टहासः।
सद्यो दंष्ट्रांशुभिन्ने तमसि निजवपुर्बिम्बमालोक्य कस्त्वं
कस्त्वं ब्रूहीति कोपादभिदधदभयं भैरवश्चेष्टतां वः।। ४।।

वैद्यगदाधरस्य।

(प्रलयवेला में) सम्पूर्ण विश्व को जनशून्य करके जब एक समुद्र के रूप में परिणत कर दिया गया है, उस समय काली के साथ क्रीड़ा-विहार करते हुए भैरव बरबस उन्मुक्त अट्टहास कर रहे हैं। अचानक उनकी दाढ़ों से निकली किरणावली से जब अन्धकार छिन्न-भिन्न हो जाता है, तो अपनी ही परछाई को देखकर वे क्रोध से चिल्ला पड़ते हैं- 'तुम कौन हो? कौन हो तुम ? (जल्दी) बोलो'-ऐसे महाभैरव आपके भय का निवारण करें। ४।

(- वैद्यगदाधर)

कल्पान्ते शमितत्रिविक्रममहाकङ्कालदन्ती स्फुर-
च्छेषस्यूतनृसिंहपाणिनखरप्रोतादिकोलामिषः।
विश्वैकार्णवतानितान्तमुदितौ तौ मत्स्यकूर्मावुभौ
कर्षन्धीरवतां गतोऽस्यतु महामोहं महाभैरवः।। ५।।

चित्तपस्य।

. प्रलयकाल में शान्त हो गये वामनावतारगत महाकंकाल रूपी दाँतों वाले और फड़कते हुए शेष (नाग) से जुड़े नृसिंह के हाथों के नाखूनों में लगे वाराह-मांस वाले वे महाभैरव धैर्यवान् व्यक्तियों के महामोह को निकाल फेकें, जो पूरे विश्व के एक समुद्र बन जाने के कारण प्रसन्न हुए मत्स्य और कूर्म दोनों को एक साथ खींच रहे हैं। ५।

(- चित्तप)

१६. हरनृत्यारम्भः।

आर्द्रां कण्ठे मुखाब्जस्रजमवनमयत्यम्बिकाजानुलम्बां
स्थाने कृत्वेन्दुलेखां निबिडयति जटापन्नगेन्द्रेण नन्दी।
कालः कृत्तिं निबन्धात्युपनयति करे कालरात्रिः कपालं
शम्भोर्नृत्यावतारे परिषदिति पृथग्व्यापृता वः पुनातु।। १।।

शतानन्दस्य।

१६. हर के द्वारा नृत्यारम्भ

नृत्यारम्भ के समय विभिन्न कार्यों में लगी शिवमण्डली आपको पवित्र करे। (इसमें से) देवी पार्वती शिव के कण्ठ में पड़ी गीली-गीली मुख-कमलों की मुण्डमाला को, जो घुटनों तक लम्बी है, ऊपर कर रही हैं (ताकि नृत्य के समय वह पैरों में न फँसे) नन्दी बाबा (खिसक गई) चन्द्रलेखा को (फिर से सही) स्थान पर रखकर जटाओं को नाग से बाँध रहे हैं। महाकाल गज-चर्म पहना रहा है और कालरात्रि हाथ में कपाल पकड़ा रही है। १।

(-शतानन्द)

नन्दिन् खञ्जनमञ्जुनादमुरजं संगृह्य सज्जीभव
कूष्माण्डानय भस्मभाजनमितो लम्बोदरागम्यताम्।

स्कन्दं नन्दय मन्दिरोदरगतं देवीति रङ्गाङ्गणे
शम्भोस्ताण्डवमण्डनैकमनसः सञ्जल्पितं पातु वः।। २।।

योगेश्वरस्य।

'अरे नन्दी ! खंजन पक्षी की तरह मधुर ध्वनि करने वाले मृदंग को लेकर तैयार हो जाओ, कूष्माण्ड ! तुम इधर भस्मपात्र ले आओ, लम्बोदर ! तुम भी आओ। देवी पार्वती! (तुम केवल बच्चे को सँभालो, वह देखो -) स्कन्द मन्दिर के गर्भ-गृह में चला गया है, तुम बस उसे प्रसन्न रखो।'-इस प्रकार ताण्डव-नृत्य के समय एकाग्रचित्त से सजने-धजने (और अन्य तैयारियाँ करने) में लगे शिव के आदेश-वाक्य आपकी रक्षा करें। २।

(-योगेश्वर)

भो भो दिक्पतयः प्रयात परतः खं मुञ्चताम्भोमुचः
पातालं व्रज मेदिनि प्रविशत क्षोणीतलं क्ष्माभृतः।
ब्रह्मन्नुन्नय दूरमात्मसदनं देवस्य नो नृत्यतः
शम्भोः सङ्कटमेतदित्यवतु वः प्रोत्सारणा नन्दिनः।। ३।।

तस्यैव।

(शिव के ताण्डव-नृत्य के समय नन्दी बाबा सभी को डाँट-फटकार कर दूर हटने के लिए कह रहे हैं-)

'अरे दिक्पालों ! परे हट जाओ, मेघों ! तुम आकाश को खाली करो, देवी पृथिवी! तुम पाताल में धँस जाओ, पर्वतों! तुम भी रसातल में चले जाओ, ब्रह्मा जी ! आप भी अपने घर का रास्ता नापिए। देखो, हमारे स्वामी शिव जी इस समय नृत्य कर रहे हैं, उन्हें स्थान की कोई कठिनाई न होने पाये' - इस प्रकार (सभी को) हटाते हुए नन्दी बाबा की फटकार आपकी रक्षा करे। ३।

(-योगेश्वर)

अस्थीन्यस्थीन्यजिनमजिनं भस्म भस्मेन्दुरिन्दु-
र्गङ्गा गङ्गोरग उरग इत्याकुलाः सम्भ्रमेण।
भूषादानोपकरणगणप्रापणव्यापृतानां
नृत्यारम्भप्रणयिनि शिवे पान्तु वाचो गणानाम्।। ४।।

धनपालस्य।

नृत्यारम्भ हेतु समुद्यत शिव के गण शिव को विविध श्रृंगार-सामग्री देने में अत्यन्त व्यस्त हैं। उस समय घबड़ाहट में वे चिल्लाते हुए कह रहे हैं -

'अरे, हड्डियाँ लाओ, हड्डियाँ। गजचर्म लाओ, गजचर्म। भस्म (चाहिए) भस्म। चन्द्रमा-चन्द्रमा। गंगा (कहाँ है) गंगा। नाग (लपेटो) नाग।' - शिव के व्यस्तगणों की हड़बड़ाई हुई ये बोलियाँ आपकी रक्षा करें। ४।

(- धनपाल)

क्षोभं क्षोणि क्षमस्व त्वमपि कुरु महाकूर्म कर्म स्वकीयं
भो भीः कैलासमेरुप्रभृतिकुलधराधारिणो गच्छताधः।
ब्रह्मन्नुद्गच्छ दूरं कुरुत जलधयः स्थैर्यमित्यष्टमूर्ते-
र्भर्तुर्नृत्यावतारे सरभसगदिताः पान्तु वो नन्दिवाचः ।। ५।।

द्वैपायनस्य।

अष्टमूर्त्ति भगवान् शिव के नृत्यावतरण के समय बरबस कहे गये नन्दी के ये वचन आपकी रक्षा करें -

'अरी पृथ्वी ! (अपने) कम्पन को शान्त करो; महाकच्छप तुम अपना काम करो। (खाली न बैठो) अरे कैलास-सुमेरु प्रभृति कुल पर्वतों ! नीचे चले जाओ। ब्रह्मा जी ! आप भी दूर चले जाइए। अरे समुद्रों ! कुछ स्थिर बनो।' ५।

(- द्वैपायन)

२०. हरनृत्यम्।

भ्राम्यद्विश्वम्भराणि भ्रमिचलननमत्कूर्मकुम्भीनसानि
त्रुट्यत्ताराणि रिङ्गद्धरणिधरशिरः श्रेणिशीर्यद्दृषन्ति।
दिक्कीर्णोदञ्चदम्पि द्रवदमरचमूचन्द्रचञ्चद्वियन्ति
व्यस्तन्तु व्यापदं वस्त्रिपुरविजयिनस्ताण्डवारम्भणानि।। १।।

राजशेखरस्य।

२०. हर-नृत्य

त्रिपुरविजयी भगवान् शिव के ताण्डव नृत्य के आरम्भ (में घटित वे घटनाएँ) आपकी बड़ी-बड़ी विपत्तियों को दूर फेंक दें, (जिनमें) विश्वम्भर चकरा रहे हैं, चक्राकार चलने-घूमने के कारण कछुए और विषैले साँप झुक रहे हैं, तारागण टूट रहे हैं, रेंगते हुए पहाड़ों की चोटियाँ (आपस में) टकरा-टकरा कर बिखर रही हैं, दिशाओं में फैली जलराशि ऊपर उछल रही है, आकाश में देवताओं की सेना बिखर रही है और चन्द्रमा चलायमान हो रहा है। १।

(- राजशेखर)

हेलापादप्रपातान्नमदवनिभराक्रान्तकूर्मेशशेष-
प्रोद्भूतश्वासवातोच्छलदुदधिपयोधौतसूर्येन्दुतारम्।
भ्राम्यद्दोःसङ्घवेगापतदचलकुलध्वानसन्त्रस्तविश्वं
त्रैलोक्यैश्वर्यकारि द्यतु तव दुरितं ताण्डवं चन्द्रमौलेः।। २।।

वाच्छोकस्य।

चन्द्रमौलि भगवान् शिव का वह ताण्डव नृत्य आपके दुःख, दुर्व्यसन और पापों को खण्डित कर दे, जो तीनों लोकों के ऐश्वर्य का कारक है, (और जिसमें) हेलावश (-अनायास) रखे गये चरण के भार से झुकती हुई पृथ्वी से दबे कूर्म और शेषनाग के द्वारा ली गई लम्बी-लम्बी श्वास-वायु से उछलते हुए समुद्रों की जलराशि इतनी ऊपर उठ गई है कि उससे सूर्य, चन्द्रमा और तारे तक घुल गये हैं। (शिव की) दोनों भुजाएँ चारों ओर घूम रही हैं और उनसे टकराकर पर्वतसमूह इतनी प्रचण्ड ध्वनि कर रहे हैं कि उससे विश्व सन्त्रस्त हो गया है। २।

(- वाच्छोक)

उत्तानाः कति वेल्लिताः कति रयादाभुग्नमध्याः कति
क्षिप्तोत्क्षिप्तविकुञ्चिताः कति भुजास्तौर्यत्रिकानुक्रमात्।
कल्पान्तेषु महानटस्य झटिति प्रक्रान्तचक्रभ्रमि-
भ्रान्तौ केवलमग्निहासगरलैर्लेखात्रयं पातु वः।। ३।।

सागरधरस्य।

प्रलयकाल में, महानट शिव (नृत्य करते हुए) चक्र से भी अधिक गति से शीघ्रतापूर्वक घूम रहे हैं। उनके उस भ्रमण में वाद्यों (-आर्केस्ट्रा) का अनुकरण करती हुई उनकी कितनी भुजाएँ ऊपर उठी हैं, कितनी टेढ़ी हो गई हैं, वेग से कितनी बीच में ही झुक गई हैं, कितनी क्षिप्त, उत्क्षिप्त और विकुंचित हो गई है, (इसका कुछ अता-पता नहीं है)। केवल अग्नि, हास और गरल- ये तीन रेखाएँ भर शेष हैं, वे आपकी रक्षा करें। ३।

(- सागरधर)

पायाद्वः सुरदीर्घिकाजलरयभ्राम्यज्जटामण्डली-
वेगव्याकुलनागनायकफणफूत्कारवातोच्छल-

त्सप्ताम्भोनिधिजन्मचण्डलहरीमज्जन्नभोमण्डल-
ग्रासत्रस्तसुराङ्गनाकलकलक्रीडाविलक्षो हरः।। ४।।

ब्रह्महरेः

गंगाजी के जल-प्रवेग से लहराती हुई जटा-मण्डली के वेग से व्याकुल होकर नागराज फुफकार रहे हैं। इस फूत्कार की वायु से सातों समुद्र उछल रहे हैं और उन समुद्रों में उठी लहरों में आकाश-मण्डल के डूबने से भयविह्वल अप्सराओं की कल-कल क्रीड़ा से लज्जित शिव आपकी रक्षा करें। ४।

(- ब्रह्महरि)

सन्ध्याताण्डवडम्बरव्यसनिनो भीमस्य चण्डभ्रमि-
व्यानृत्यद्भुजदण्डमण्डलभुवो झञ्झानिलाः पान्तु वः।
येषामुच्छलतां जवेन झगिति व्यूहेषु भूमीभृता-
मुड्डीनेषु विडौजसा पुनरसौ दम्भोलिरालोकितः।। ५।।

कस्यचित्।

सन्ध्या के समय ताण्डव नृत्य के अभ्यासी भगवान् शिव की प्रचण्ड वेग से घूमती और नाचती हुई भुजदण्ड-मण्डली से निकली आँधियाँ आपकी रक्षा करें। ये झंझानिल जब वेग से उमड़ते हैं, तो पर्वत व्यूहबद्ध होकर उड़ने लगते हैं और उन उड़ते हुए पर्वतों में इन्द्र को बार-बार अपना वज्र दिखाई देने लगता है। ५।

(- अज्ञात कवि)

२१. हरप्रसादनम्।

निःशङ्क शङ्कर करग्रथिताहिभोग
भोगप्रद प्रदलितामरवैरिवृन्द।
वृन्दारकार्चित चिताभसिताङ्गराग
रागातिदूर दुरितापहर प्रसीद।। १।।

बाणस्य।

२१. हर का प्रसादन

हे शंकारहित, हाथ में सर्प-कंकण धारण करने वाले, (भक्तों को समस्त) भोग प्रदान

करने वाले, देवशत्रु दैत्यों के विनाशक, देवताओं से पूजित, चिताभस्म का अंगराग लगाये हुए, और विषयानुराग से दूर रहने वाले शंकर जी ! हमारे दुःखों और दुर्व्यसनों को दूर कीजिए। १।

(- बाण)

करकलितपिनाक नाकनाथद्विषदुरुमानसशूल शूलपाणे।
भव वृषभविमान मानशौण्ड त्रिजगदकारणतारक प्रसीद।। २।।

सञ्चाधरस्य।

हाथ में पिनाक धनुष को धारण किये हुए, स्वर्ग के स्वामी इन्द्र के शत्रुओं के हृदय में शूल की तरह चुभने वाले, शूलपाणि, भव, वृषभ-विमान के आरोही, सम्मान को ही सर्वस्व समझने वाले, त्रिलोक के अहैतुक तारक हे शंकर जी! (आप हम पर) प्रसन्न होइए। २।

(- सञ्चाधर)

कटुविशिखशिखिप्रपञ्च पञ्चानन धनदप्रियमित्र मित्रनेत्र।
धृतसकलविकल्प कल्पशेषप्रकटमहानट नाटय प्रसादम्।। ३।।

तस्यैव।

हे तीक्ष्ण बाणें के सन्धाता ! पञ्चमुख ! कुबेर के प्रिय मित्र ! सूर्यलोचन ! समग्र सृष्टि को धारण करने वाले ! कल्प के शेष ! महानर्तक के रूप में प्रसिद्ध शिव ! (आप अपनी) प्रसन्नता की अभिव्यक्ति कीजिए। ३।

(- वही)

भव शिव शवभस्मगौर गौरीग्रथितशरीर सरीसृपोत्तरीय।
स्मरहर हर भीम भीमभूतप्रकरभयङ्कर शङ्कर प्रसीद। ४।।

तस्यैव

हे भव ! शिव ! चिताभस्म से गौरवर्ण ! पार्वती से युक्त अर्धनारीश्वर स्वरूप वाले! सर्पों को उत्तरीय के सदृश धारण करने वाले ! कामारि ! हर ! भयंकर ! भयानक भूत-प्रेतों के समूह से (स्वयं भी) भीषण (दिखने वाले) शंकर जी ! आप प्रसन्न हो जाइए। ४।

(-वही)

धृतनिधनधनुःप्रचण्ड चण्डीमुखकमलभ्रमरामराधिनाथ।
हर रणरणकान्त कान्तमूर्ते गगनदुकूल विकूलयापदं नः।। ५।।

तस्यैव।

हे संहारक ! धनुष धारण करके प्रचण्ड दिखाई देने वाले ! चण्डिका के मुख-कमल पर भ्रमर की तरह मँड़राने वाले! देवाधिदेव ! हर ! युद्ध के सन्तापदायी कोलाहल को समाप्त करने वाले ! कमनीय स्वरूप वाले ! आकाश को दुकूल की तरह धारण करने वाले शिव! हमारी विपत्तियों को दूर कर दो। ५।

(- वही)

२२. गौरी

यानुद्ध्रूलयतीश्वरः सिकतिला यैर्मौलिमन्दाकिनी
यैर्बालेन्दुकणार्द्रकेतकदलोत्सङ्गे परागायितम्
यैः कैलासविलासकाननतटीकङ्केल्लिपुष्पोद्गम-
क्रीडाकार्मणमद्रिजाचरणयोस्ते रेणवः पान्तु वः।। १।।

उमापतिधरस्य।

२२. गौरी

भगवती पार्वती के चरणों के वे घूलि-कण आपकी रक्षा करें, जिन्हें शंकर जी झाड़ते रहते हैं। (शिव के) मस्तक पर स्थित मन्दाकिनी जिनसे बालुकामयी है, बालचन्द्र के हिमकणों से क्लिन्न (-गीली-) केतकी के दलों में जो पराग बन गये हैं और कैलास पर्वतस्थ विलास-कानन के किनारे लगे अशोक वृक्ष में पुष्पोद्भव हेतु किये गये दोहद कर्म[1] को सम्पन्न करने वाले हैं। १।

(- उमापतिधर)

लाक्षारागं हरित शिखराज्जाह्नवीवारि येषां
ये तन्वन्ति स्रजमधिजटामण्डलं मालतीनाम्।

---

१. मान्यता है कि अशोक वृक्ष में फूल तब आते हैं, जब युवती और सौभाग्यवती स्त्रियाँ उस पर पाद-प्रहार करती हैं। इसे दोहद कर्म कहा जाता है।

प्रत्युत्सर्पद्विमलकिरणैर्यैस्तिरोधानमिन्दो-
र्देव्याः स्थाणौ चरणपतिते ते नखाः पान्तु विश्वम्।। २।।

कस्यचित्।

(केलि-क्रीड़ा में) शिव के मस्तक पर गिरे हुए (पार्वती के) चरणों के वे नाखून समग्र विश्व की रक्षा करें, जिनके लाक्षा-राग (महावर) को मौलि-मन्दाकिनी का जल धोता रहता है; शिव के जटा-मण्डल के ऊपर जो मालती कुसुमों की माला को फैला देते हैं और जिनसे निकली निर्मल किरण-कान्ति से चन्द्रमा (पराजित होकर) छिप जाता है। २।

(-अज्ञात कवि)

भवजलधिजलावलम्बयष्टिर्महिषमहासुरशैलवज्रधारा।
हरहृदयतडागराजहंसी दिशतु शिवं भवतश्चिरं भवानी।। ३।।

भगीरथदत्तस्य।

वे भगवती पार्वती आपकी रक्षा चिरकाल तक करें, जो भवसागर की जलराशि (को पार करते समय) सहारे की लाठी हैं; महिषासुर रूपी महापर्वत को चूर-चूर कर देने के लिए वज्र की धार हैं और शिव के हृदय-सरोवर में (विहार करने वाली) राजहंसी हैं। ३।

(- भगीरथदत्त)

कां तपस्वी गतोवस्थामिति स्मेराविव स्तनौ।
वन्दे गौरीघनाश्लेषभवभूतिसिताननौ।। ४।।

भवभूतेः।

पार्वती के उन स्तनों की मैं वन्दना करता हूँ, जो (शिव का) सुदृढ़ आलिंगन (करते समय शिव के शरीर की) भस्म लग जाने से श्वेताग्रभाग वाले हो गये हैं। वे मानों (यह सोच-सोचकर कि स्त्री के चक्कर में पड़ जाने के बाद शिव जैसे महान्) तपस्वी की भी कितनी दुर्दशा हो जाती है- मुस्कुरा रहे हैं। ४।

(- भवभूति)

विशेष-हँसी और मुस्कान का रङ्ग श्वेत माना गया है। भस्म से श्वेताग्र भाग वाले स्तनों के विषय में इसी आधार पर कवि ने यह उत्प्रेक्षा की है। (४)

अभिमतफलसिद्धिसिद्धमन्त्रा-
वलि बलिजित्परमेष्ठिनोरुपास्ये।

भगवति मदनारिनारि वन्दे
निखिलनगाधिपभर्तृदारिके त्वाम्।। ५।।

वामदेवस्य।

समस्त पर्वतों के सम्राट् की पुत्री भगवती पार्वती ! मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ। तुम अभीष्ट-सिद्धि प्रदान करने वाले (अमोघ) मन्त्रों की माला, ब्रह्मा और विष्णु की भी उपास्या देवी तथा कामारि शिव की अर्द्धाङ्गिनी हो। ५।

(- वामदेव)

२३. विवाहसमयगौरी

गोनासाय नियोजितागदरजाः सर्पाय बद्धौषधिः
कण्ठस्थाय विषाय वीर्यमहतः पाणौ मणीन्बिभ्रती।
भर्तुर्भूतगणाय गोत्रजरतीनिर्दिष्टमन्त्राक्षरा
रक्षत्वद्रिसुता विवाहसमये प्रीता च भीता च वः।। १।।

राजशेखरस्य।

२३. विवाह के समय की गौरी

वे भगवती पार्वती आपकी रक्षा करें, जो (शिव के साथ अपने) विवाह के समय प्रसन्न भी हैं और डरी हुई भी। उन्होंने (उत्पात करते हुए) बैल (नन्दी) की नाक में डालने के लिए औषधि के चूर्ण की व्यवस्था कर रखी है। (शिव के गले में पड़े) साँपों से (निबटने के लिए भी) जड़ी-बूटियाँ बाँध रखी हैं। (शिव के) कण्ठस्थ विष (का प्रतिरोध करने के लिए) हाथ में शक्तिशाली मणियों को धारण कर रखा है और अपने स्वामी (शिव) के भूत-प्रेतों की सेना का सामना करने के लिए (अपने) कुल की वृद्धा स्त्रियों के द्वारा बताये गये मन्त्र के अक्षरों (का जप भी करती जा रही हैं)।' । १।

(-राजशेखर)

---

१. विद्धशालभञ्जिका (नाटिका), १.३।

प्रत्यासन्नविवाहमङ्गलविधौ देवार्चनव्यस्तया
दृष्ट्वाग्रे परिणेतुरेव लिखितां गङ्गाधरस्याकृतिम्।
उन्मादस्मितरोषलज्जितरसैर्गौर्या कथञ्चिच्चिरा-
द्वृद्धस्त्रीवचनात्प्रिये विनिहितः पुष्पाञ्जलिः पातु वः।। २।।

भासस्य।

(अपने) विवाह की मांगलिक विधि (के संपादन की वेला) के निकट होने पर, देव-पूजन में व्यस्त पार्वती ने, जब सामने (अपने) परिणेता शिव के स्वरूप को ही अंकित देखा, तो वे (पहले) उन्माद, मुस्कान, ईषत्क्रोध, और लज्जा के मिले-जुले भावों से भर उठीं, फिर कुछ देर बाद (परिवार की किसी) वृद्धा स्त्री के कहने पर किसी प्रकार शिव के ऊपर उन्होंने पुष्पाञ्जलि डाल (ही) दी। (पार्वती के द्वारा शिव के ऊपर डाली गई) वही पुष्पाञ्जलि आपकी रक्षा करे। २।

(- भास)

ब्रह्मायं विष्णुरेष त्रिदशपतिरसौ लोकपालास्तथैते
जामाता कोऽत्र योऽसौ भुजगपरिवृतो भस्मरुक्षः कपाली।
हा वत्से वञ्चितासीत्यनभिमतवरप्रार्थनाव्रीडिताभि-
र्देवीभिः शोच्यमानाप्युपचितपुलका श्रेयसे वोऽस्तु गौरी।। ३।।

कस्यचित्।

(पार्वती के साथ विवाह हेतु शिव की वर-यात्रा जब हिमालय के द्वार पर पहुँची, तो परिवार की वृद्धा) स्त्रियों ने (बरातियों को पहचानते हुए) कहा- 'यह ब्रह्मा जी हैं, यह विष्णु भगवान् हैं, यह इन्द्र हैं और ये लोकपाल हैं, लेकिन (बरात में हमारा भावी) दामाद कौन है ?' (इस पर उत्तर मिला)- 'वही जो साँपों से लिपटा, भस्म-लेपन से रुक्ष शरीर वाला और मुण्डमाला धारण किये हैं।' (इसे सुनकर) स्त्रियाँ उस अस्वीकार्य वर (-स्वरूप) को देखकर लज्जित और शोकग्रस्त होकर (पार्वती से बोलीं-) 'अरे बेटी ! तुम्हें तो (बड़ा) धोखा हो गया !' इसे (सुनकर) पार्वती और भी पुलकित हो उठीं। वही पुलकित पार्वती आपका कल्याण करें। ३।

(- अज्ञात कवि)

धूमव्याकुलदृष्टिरिन्दुकिरणैराह्लादिताक्षी पुनः
पश्यन्ती वरमुत्सुका नतमुखी भूयो ह्रिया ब्रह्मणः।

सेर्ष्या पादनखाच्छदर्पणगतां गङ्गां दधाने हरे
स्पर्शादुत्पुलका करग्रहविधौ गौरी शिवायास्तु वः।। ४।।

श्रीहर्षदेवस्य।

पाणिग्रहण-विधि (की सम्पादन-वेला) में, वे पार्वती आपका मंगल कल्याण करें, जिनकी आँखें (पहले होम के) धुएँ से व्याकुल हो गईं, (लेकिन जब शिव के मस्तकस्थ) चन्द्रमा की किरणें उन पर पड़ी, तो उनकी आँखें फिर आह्लादित हो उठीं। (उस समय पहले तो) वे उत्सुकतावश वर को देखना चाहती थीं, लेकिन जब उनकी दृष्टि ब्रह्मा जी पर पड़ी, तो उन्होंने लज्जा से मुख को झुका लिया। अपने चरण-नख के स्वच्छ दर्पण में जब उन्होंने शिव के शिर पर बैठी गंगा (के प्रतिबिम्ब) को देखा, तो ईर्ष्या से भर उठीं, लेकिन जब (शिव ने पाणिग्रहण करते समय उनके हाथ का) स्पर्श किया, तो वे (पुनः) प्रसन्न हो उठीं। ४।

(- श्रीहर्षदेव)

पादाग्रे स्थितया मुहुः स्तनभरेणानीतया नम्रतां
शम्भोः सस्पृहलोचनत्रयपथं यान्त्या तदाराधने।
ह्रीमत्या शिरसीहितः सपुलकस्वेदोद्गमोत्कम्पया
विश्लिष्यन् कुसुमाञ्जलिर्गिरिजया क्षिप्तोन्तरे पातु वः।। ५।।

तस्यैव।

पैरों के अग्रभाग पर स्थित, (फिर) स्तन-भार से झुका दी गईं, शंकर जी के तीनों नेत्रों से स्पृहापूर्वक देखी जाती हुई पार्वती, शिवाराधन के समय (पहले तो) लज्जित हो गईं और प्रसन्नता, स्वेदोद्गम तथा थरथराहट से भर गईं (किन्तु फिर शिव की) कामना से (प्रेरित होकर) उन्होंने उनके शिर पर पुष्पाञ्जलि डाल ही दी। (पार्वती के द्वारा शिव के शिर पर डाली गई) वही पुष्पाञ्जलि हृदय में (ध्यान करने पर) आपकी रक्षा करे। ५

(- वही)

२४. गौरीश्रृङ्गारः

स्वेदस्ते कथमीदृशः प्रियतमे! त्वन्नेत्रवह्नेर्विभो!
कस्मात्कम्पितमेतदिन्दुवदने भोगीन्द्रभीतेर्भव।

रोमाञ्चः कथमेष देवि भगवन् गङ्गाम्भसां शीकरै-
रित्थं भर्तरि भावगोपनपरा गौरी चिरं पातु वः ।। १।।

लक्ष्मीधरस्य।

२४. गौरी का श्रृंगार

(-शिव-) 'अरी प्रियतमे ! इतना पसीना तुम्हें क्यों आ रहा है ?' (-पार्वती-) 'प्रभो! आपके नेत्र की ऊष्मा के कारण।' (शिव-) 'अरी चन्द्रमुखी ! तुम काँप क्यों रही हो ?' (पार्वती-) 'भगवन् ! आपके साँपों से डरने के कारण।' (शिव-) 'देवि ! तुम्हे यह रोमाञ्च क्यों हो रहा है ?' (पार्वती-) 'नाथ ! आपके (मस्तक पर स्थित) गंगाजल की बूँदों से' - इस प्रकार (केलि-क्रीड़ा के समय) पति से अपने (वास्तविक) मनोभावों को छिपाने में लगी (नवोढा) पार्वती जी सुदीर्घकाल तक आपकी रक्षा करें। १।

(-लक्ष्मीधर)

शम्भो सत्यमिदं पयोधिमथने लक्ष्म्या वृते केशवे
वैलक्ष्यात्किल कालकूटमशितं पीतं विषं यत्त्वया।
सत्यं पार्वति नास्ति नः सुभगता साक्षी तथा च स्मरो
देवेनेति कृतस्मृतिः स्मितमुखो गौरी चिरं पातु वः।। २।।

श्री हर्षदेवस्य।

(पार्वती-) 'शिव ! क्या यह सच है कि समुद्र-मन्थन के समय जब लक्ष्मी ने विष्णु का वरण कर लिया, तो लज्जा (और ग्लानि) वश तुमने (आत्महत्या के निमित्त) कालकूट विष को पी लिया ?' (शिव-) 'हाँ, पार्वती ! यह ठीक है। हममें सुन्दरता या सौभाग्य का अभाव तो है ही। कामदेव इसका साक्षी है' - इस प्रकार शिव के द्वारा अतीत के (प्रसंगों का) स्मरण करा देने पर मुस्कराती हुई पार्वती चिरकाल तक आपकी रक्षा करें। २।

(- श्रीहर्षदेव)

चर्मालम्बिदुकूलवल्लरि चिताभस्मावधूतस्तनो-
न्मीलच्चन्दनमुत्तरीयभुजगव्यासक्तमुक्तावलि।
मुग्धाया अपि शैलराजदुहितुर्गङ्गाधरालिङ्गनं
गाढप्रेमरसानुबन्धनिकषग्रावा शिवायास्तु वः।। ३।।

जलचन्द्रस्य।

मुग्धा होती हुई भी पार्वती का, प्रगाढ़ प्रेम की आनन्दानुभूति की कसौटी वाला (शिव के शरीर का) वह आलिङ्गन आपका कल्याण करे, जिसमें (पार्वती के) दुकूल की लता (शिव के) गज-चर्म में उलझ गई है, (पार्वती के) स्तनों का चन्दन (शिव के) चिताभस्म से मिलकर (एक हो गया है) और (पार्वती की) मोतियों की लड़ी (शिव के) साँपों से गुँथ गई है। ३।

(- जलचन्द्र)

शिरसि कुटिला सिन्धुर्दोषाकरस्तव भूषणं
सह विषधरैः प्रत्यासन्ना पिशाचपरम्परा।
हरसि न हर प्राणानेवं न वेद कथं न्विति
प्रणयकुपितक्ष्माभृत्पुत्रीवचांसि पुनन्तु वः।। ४।।

भगवद्गोविन्दस्य।

(पार्वती-) 'अरे शिव ! तुम्हारे शिर पर कुटिलता भरी नदी (गंगा) है, दोषा[1]कर (चन्द्रमा, दोषों का भण्डार) तुम्हारा आभूषण है, विषधरों के साथ भूत-प्रेतों की कतार तुमसे जुड़ी है, इस पर भी तुम यदि प्राण-हरण नहीं करते, तो किसलिए ? - यह मुझे नहीं पता है-' इस प्रकार प्रणयजन्य रोष में (शिव से कहे गये) पार्वती के ये वचन आपको पवित्र करें। ४।

(- भगवद्गोविन्द)

नादत्ते फणिकङ्कणप्रणयिनं नीवीनिवेशे करं
नो चूर्णैरुपहन्ति भालनयनज्योतिर्मयीं दीपिकाम्।
धत्ते चर्म हरेण मुक्तमपि न द्वैपं भयादित्यसौ
पायाद्वो नवमोहनव्यतिकरव्रीडावती पार्वती।। ५।।

आचार्य्यगोपीकस्य।

नये और आकर्षक परिणय में आबद्ध पार्वती इतनी लज्जालु हो उठी हैं कि सर्प के कंकण से सुशोभित (शिव का) हाथ जब उनके नीवि-बन्धन पर पड़ता है तो (रोकने के लिए) उसे पकड़ती नहीं है; ललाटस्थ तीसरे नेत्र से निकलती हुई ज्योति-शिखा को (बुझाने के लिए) उस पर चूरा भी नहीं छिड़कती हैं; डर के कारण, शिव के द्वारा त्यक्त गज-चर्म को भी नहीं धारण करतीं-ऐसी (नवोढा होने से लज्जावती) पार्वती आपकी रक्षा करें। ५।

(-आचार्य गोपीक)

---

१. दोषाकर- इसका विग्रह दो प्रकार से किया जा सकता है - १. दोषा+कर - 'दोषा' रात्रि का वाचक है, अर्थ है निशाकर चन्द्रमा। २. दोष+आकर = दोषों का भण्डार।

२५. दुर्गा

एकं महिषशिरः स्थितमपरं सानन्दसुरगणप्रणतम्।
गिरिदुहितुः पदयुगलं शोणितमणिरागरञ्जितं जयति।।१।।

जलचन्द्रस्य।

२५. दुर्गा

लाल-लाल मणि के रंग में रंगे (महावरयुक्त) पार्वती के उस चरणयुग्म की जय हो, जिनमें से एक महिषासुर के शिर पर रखा है और दूसरे पर (दैत्य-वध से) प्रसन्न देवगण प्रणाम की मुद्रा में झुके हुए हैं। १।

(- जलचन्द्र)

त्रिभुवनशुभपञ्जिकाञ्जिंकेव
स्फुरति भवानि तवाङ्कुशः कराग्रे।
डमरुरपि बिभर्ति देवि तत्त-
द्विपदवसानविसर्जनीयलक्ष्मीम् ।।२।।

हरेः।

हे भवानी ! तुम्हारे हाथ के अग्रभाग में रखा अंकुश तीनों लोकों की पत्रावली (फाइल-) पर कल्याणमय आलेख अंकित करने के लिए फड़क रहा है और देवि ! करस्थ डमरू भी विभिन्न विपत्तियों को विदा करने की शोभा को धारण कर रहा है। २।

(- हरि)

ज्याकृष्टिबद्धखटकामुखपाणिपृष्ठ-
प्रेङ्खन्नखांशुचयसंवलितोऽम्बिकायाः
त्वां पातु मञ्जरितपल्लवकर्णपूर-
लोभभ्रमद्भ्रमरविभ्रमभृत्कटाक्षः।।३।।

अमरोः।

अम्बिका का वह कटाक्ष आपकी रक्षा करे, जो प्रत्यञ्चा को खींचने के लिए बाँधी गई बाण चलाने की विशेष मुद्रा (खटकामुख) से युक्त हाथ की पीठ पर अठखेलियाँ करती हुई किरणावली से समन्वित है तथा किसलयमय कर्णाभूषण के प्रलोभनवश मँडराते हुए

भ्रमरों के हाव-भावों से संवलित है। ३।

(-अमरु)[1]

पादावष्टम्भनम्रीकृतमहिषतनोरुल्लसद्बाहुमूलं
शूलं प्रोल्लासयन्त्याः सरलितवपुषो मध्यभागस्य देव्याः।
विश्लिष्टस्पष्टदृष्टोन्नतविरलबहुव्यक्तगौरान्तराला-
स्तिस्रो वः पान्तु रेखाःक्रमवशविकसत्कञ्चुकप्रान्तमुक्ताः।।४।।

बाणस्य।

देवी के शरीर के मध्यभाग की वे तीन रेखाएँ, जो क्रमशः फैलते हुए कञ्चुक के किनारे-किनारे अनावृत हो गई हैं, आपकी रक्षा करें। ये तीनों रेखाएँ अलग-अलग, साफ-साफ दिखाई देने वाली, ऊँची, दूर-दूर हैं तथा इनमें प्रचुर गौरवर्णीय अन्तराल स्पष्ट रूप से व्यक्त हो रहा है। (ये रेखाएँ उस समय दिखाई देती हैं जिस समय) देवी के, चरणों पर टेक लगाये महिषासुर की देह पड़ी है, शूल को लहराने के कारण उनका बाहुमूल खिल गया है और शरीर सीधा हो गया है। ४।

(- बाण)

विद्राणे रुद्रवृन्दे सवितरि तरले वज्रिणि ध्वस्तवज्रे
जाताशङ्के शशाङ्के विरमति मरुति त्यक्तवैरे कुबेरे।
वैकुण्ठे कुण्ठितास्त्रे महिषमतिरुषं पौरुषोपघ्नविघ्नं
निर्विघ्नं निघ्नती वः शमयतु दुरितं भूरिभावा भवानी।।५।।

तस्यैव।

(महिषासुर के आतंक से) रुद्रों के द्वारा पलायन कर जाने पर, सवितृदेव के पिघल जाने पर, इन्द्र के वज्र के विनष्ट हो जाने पर, चन्द्रमा के आशंकित हो उठने पर, मरुतों के रुक जाने पर, कुबेर के द्वारा शत्रुता छोड़ देने पर, विष्णु के अस्त्रों के कुण्ठित हो जाने पर, (महिषासुर के द्वारा अपने) पौरुष के ललकारे जाने के कारण अत्यन्त क्रोधित होकर महिषासुर का निर्विघ्न वध करती हुई (क्रोधादि) बहुसंख्यक भावों से युक्त देवी दुर्गा आपके दुःखों, दुर्व्यसनों और पापों का शमन करें। ५।

(- वही)

---

१. अमरुशतक के अधिकांश संस्करणों में यही प्रथम पद्य है।

२६. काली

यद्वक्त्राकाशशेषो नभसि न सुलभो यद्भुजानां सहस्रैः
प्रेङ्खद्भिः कीर्यमाणास्वणुरपि विदितो नावकाशो दिशासु।
पञ्च ग्रासा न यस्यास्त्रिभुवनमभवत्पूरणार्थं समस्तं
क्षुत्क्षामाऽकाण्डचण्डी चिरमवतुतरां भैरवी कालरात्रिः।।१।।

भासोकस्य।

२६. काली

जिनके (फैले हुए) मुख से आकाश में (तनिक स्थान भी) अवशिष्ट नहीं रहा; जिनकी झूलती हुई हजारों भुजाओं के विखरने के वाद दिशाओं में अणुभर (स्थान) रिक्त नहीं रहा, सम्पूर्ण त्रिभुवन जिनकी (उदर) पूर्ति-हेतु पाँच ग्रास भर भी (पर्याप्त) नहीं सिद्ध हुए, वे भूख से परिक्षीणा, असमय ही उग्रस्वरूपा, भैरवी कालरात्रि देवी सुदीर्घकाल तक (हम सबकी) रक्षा करें। १।

(- भासोक)

शिखण्डे खण्डेन्दुः शशिदिनकरौ कर्णयुगले।
गले ताराहारस्तरलमुडुचक्रं च कुचयोः
तडित्काञ्ची सन्ध्यासिचयरचिता कालि तदयं
तवाकल्पः कल्पव्युपरमविधेयो विजयते।। २।।

कस्यचित्।

हे देवि काली ! चोटी पर चन्द्रकला, दोनों कानों पर सूर्य और चन्द्रमा, कण्ठ में तारों का हार, स्तनों पर द्रवित नक्षत्रों का समूह, कौंधती हुई विद्युत् रूपी साड़ी और सन्ध्यारूपी खड्गसमूह से विरचित तुम्हारे उस सर्वोत्कृष्ट स्वरूप की जय हो, जो सृष्टि का अवसानकारक है। २।

(- अज्ञात कवि)

निर्मांसप्रकटास्थिजालविकटां पातालनिम्नोदरीं
कूपक्रोडगभीरनेत्रकुहरामुन्नद्धजूटाटवीम्।

दन्तान्तर्गतदैत्यकीकसकणव्याकर्षणव्यापृत-
क्रूरैकाग्रनखामखण्डितरुचं त्वां चण्डि वन्दामहे ।।३ ।।

कस्यचित् ।

हे चण्डिके ! हम तुम्हारे उस स्वरूप की वन्दना करते हैं, जो मांसरहित होने के कारण स्पष्ट अस्थि-जाल से भीषण है, पाताल जिसका निम्नोदर है, नेत्र-विवर कूप के सदृश गहरे हैं, शिर पर आपस में गुँथी हुई लटों का जंगल है, और दाँतों में फँसी दैत्यों की हड्डियों के कणों के खींचने से निष्ठुर नखों की फैली हुई अखण्ड कान्ति है। ३।

(- अज्ञात कवि)

तारान्तर्ज्वलदग्निलक्षनयनश्वभ्रान्तकूपान्तरां
क्रुद्धागस्त्यनिरस्तवारिधिपयःपातालनिम्नोदरीम्।
वन्दे त्वामजिनावृतोत्कटसिरापृष्ठास्थिसाराकृतिं
दंष्ट्राकोटितटोत्पतिष्णुदितिजासृक्चर्चितां चर्चिकाम् ।।४ ।।

उमापतिधरस्य ।

हे देवि चर्चिके ! हम तुम्हारे उस स्वरूप की वन्दना करते हैं, जिसके नेत्र-विवरों में पुतलियों के अन्दर (निरन्तर) अग्नि प्रज्वलित रहती है, क्रुद्ध महर्षि अगस्त्य के द्वारा जलरहित कर दिये गये समुद्रों से युक्त पाताल निम्नोदर है; तुम्हारी उभरती हुई नसें, पीठ की हड्डियाँ और कंकाल चर्माम्बर से आवृत हैं और दाढ़ों के तटभाग चीरे-फाड़े गये दैत्यों के रक्त से लिप्त हैं। ४।

(- उमापतिधर)

जयति तव कूणितेक्षणमश्नतया दशनपेषमसुरास्थि।
कल्पशिखिस्फुटदद्रिध्वानकरालः कडत्कारः।।५।।

शतानन्दस्य ।

दाँतों से चबा-चबाकर असुरों की हड्डियों का भक्षण करती हुई हे देवि ! तुम्हारे निमीलित नयनों की जय हो ! (अस्थिभक्षण करते समय तुम्हारे मुख से ऐसी) कड़कड़ ध्वनि हो रही है, जैसी प्रलयकालिक बाणों से चूर-चूर होते हुए पर्वतों से निकलती है। ५।

(- शतानन्द)

२७. अर्द्धनारीशः

स ज़्यति गिरिकन्यामिश्रिताश्चर्य्यमूर्ति-
स्त्रिपुरयुवतिलीलाविभ्रमभ्रंशहेतुः।
उपचयवति यस्य प्रोन्नतैकस्तनत्वा-
दुपरि भुजगहारः स्थानवैषम्यमेति।।१।। ।

माघस्य।

२७. अर्द्धनारीश

पार्वती जी के साथ मिले हुए (भगवान् शंकर के) उस अद्भुत स्वरूप (-अर्द्धनारीश्वर रूप) की जय हो, जो त्रिपुरासुर की युवतियों के लीला-विलास के विनाश का कारण बन गया। उस स्वरूप में एक स्तन (निरन्तर) अधिक उभरने से (इतना) ऊबड़-खाबड़ (ऊँचा-नीचा) हो गया है कि उसके ऊपर लटकने वाला सर्पहार लड़खड़ा रहा है। १।

(- माघ)

आश्लेषाधरबिम्बचुम्बनसुखालापस्मितान्यासतां
दूरे तावदिदं मिथो न सुलभं जातं मुखालोकनम्।
इत्थं व्यर्थकृतैकदेहघटनाविन्यासयोरावयोः
केयं प्रीतिविडम्बनेत्यवतु वः स्मरोर्द्धनारीश्वरः।।२।।

कस्यचित्।

आलिङ्गन, अधर-चुम्बन, सुखपूर्वक वार्तालाप और परस्पर मुस्कराने की बात तो दूर रही, हम लोग तो एक-दूसरे के मुख को भी नहीं देख सकते। अतः हम दोनों का अपने-अपने शरीरों को मिलाकर एक हो जाना व्यर्थ ही है। प्रेम में यह कैसी विडम्बना है !' - इस प्रकार (की बातें कहते-सुनते और) मुस्कराते हुए अर्द्धनारीश्वर (रूप. में परस्पर मिले हुए शिव-पार्वती) आपकी रक्षा करें। २।

(- अज्ञात कवि)

चन्द्रालोकय पश्य पन्नगपते वीक्षध्वमेतद्गणाः
कामारेः स्तनभारमन्थरमुरो लाक्षारुणाङ्घ्रिश्रियः।

आकर्ण्य त्रिदशापगागिरमिमां सोत्प्रासमाभाषितां
ब्रीडास्मेरनताननो विजयते कान्तार्द्धहारीश्वरः ।।३।।

योगेश्वरस्य।

'हे चन्द्र ! हे नागराज ! हे (शिव के अन्य) गणों ! (तुम सभी लोग) मन्मथारि शिव के स्तनभार से बोझिल वक्षःस्थल और महावर से रंगे पैरों की शोभा को देख लो' - इस प्रकार गंगाजी के द्वारा व्यंग्यपूर्वक कहे गये इन वचनों को सुनकर मुस्कराते और झुके हुए मुख वाले, पत्नी के अर्द्धभाग से युक्त अर्द्धनारीश्वर भगवान् शिव की जय हो ! ३।

(- योगेश्वर)

स्वच्छन्दैकस्तनश्रीरुभयगतमिलन्मौलिचन्द्रः फणीन्द्र-
प्राचीनावीतवाही सुखयतु भगवानर्द्धनारीश्वरो वः।
यस्यार्द्धे विश्वदाहव्यसनविसृमरज्योतिरर्द्धे कृपोद्य-
द्वाष्पं चान्योन्यवेगप्रहतिसिमसिमाकारि चक्षुस्तृतीयम् ।।४।।

मुरारेः।

अर्द्धनारीश्वर रूप में वे भगवान् शिव आपको सुखी करें, जिनका एक स्तन उन्मुक्त शोभा वाला है तथा उससे मस्तकस्थ चन्द्रमा का मिलन हो रहा है। नागराज को वे यज्ञोपवीत की तरह दाहिने कन्धे के ऊपर से तथा बायीं भुजा के नीचे धारण किये हुए हैं। उनके अर्द्धभाग में विश्व को जलाने की सामर्थ्य से सम्पन्न अमर ज्योति फैल रही है तथा आधे में अनुग्रहकारी अश्रु-जल है। (इन दोनों के साथ) उनका तृतीय नेत्र (दोनों भागों के) एक दूसरे के प्रहार को समग्रता प्रदान कर रहा है। ४।

(-मुरारि)

धम्मिल्लं च जटां च मौक्तिकसरं चाहिं च रत्नानि च
ब्रह्मास्थीनि च कुङ्कुमं च नृशिरश्चूर्णोत्तरं भस्म च।
क्षौमं च द्विपचर्म चैकवपुषा बिभ्रद्दिशन्नेकतां
भावानामिव योगिनां दिशतु वः श्रेयोर्द्धनारीश्वरः ।।५।।

शङ्करदेवस्य।

अर्द्धनारीश्वर रूपधारी भगवान् शिव एक ही शरीर से (विभिन्न परस्पर विरोधी तत्त्वों, यथा) केशपास और जटा, मुक्तामाला और सर्पहार, रत्नराशि और ब्रह्मास्थियों, कुंकुम और नरमुण्ड, अंगराग और (चिता) भस्म तथा रेशमी वस्त्र और गज-चर्म को (एक साथ) धारण

करते हुए योगियों के (परस्पर विरोधी) भावों की एकता का निर्देश कर रहे हैं। वे आपका कल्याण करें। ५।

(- शङ्करदेव)

२८. श्रृङ्गारात्मकार्द्धनारीश्वरः

अर्द्धं दन्तच्छदस्य स्फुरति जपवशादर्द्धमप्युत्प्रकोपा-
देकः पाणिः प्रणन्तुं शिरसि कृतपदः क्षेप्तुमन्यस्तमेव।
एकं ध्यानान्निमीलत्यपरमविकसद्वीक्षते नेत्रमित्थं
तुल्यानिच्छाविधित्सा तनुरवतु स वो यस्य सन्ध्याविधाने।।१।।

कस्यचित्।

२८. श्रृङ्गारात्मक अर्द्धनारीश्वर

सन्ध्योपासना के समय (अर्द्धनारीश्वरात्मक रूप में जिन शिव की) एक ओर की दन्तावली (मन्त्र-जप करती हुई) स्फुरित हो रही है और दूसरी (प्रणयजन्य) रोष में बुदबुदा रही है; एक हाथ शिर पर प्रणाम करने के लिए उठ गया है और दूसरा उसे हटाने में लगा है; एक नेत्र ध्यान (-मुद्रा) में निमीलित है और दूसरा उसे देख रहा है- इस प्रकार कार्य करने की इच्छा और अनिच्छा जिनकी समान है, (वे अर्द्धनारीश्वरात्मक) स्वरूप (में स्थित) भगवान् शिव आपकी रक्षा करें। १।

(- अज्ञात कवि)

अच्छिन्नमेखलमलब्धदृढोपगूढ-
मप्राप्तचुम्बनमवीक्षितवक्त्रकान्ति।
कान्ताविमिश्रवपुषः कृतविप्रलम्भ-
सम्भोगसख्यमिव पातु वपुः स्मरारेः।।२।।

क्षित्तपस्य।

प्रिय पत्नी के साथ सम्मिलित रूप में स्थित वे भगवान् शिव (हमारी) रक्षा करें, जिनकी मेखला नहीं टूटी है, (फिर भी) जिन्हें सुदृढ़ आलिङ्गन (का आनन्द) नहीं मिल रहा है; चुम्बन-सुख भी अनुपलब्ध है; मुख की कान्ति भी जो नहीं देख पा रहे हैं- उन्होंने मानों संयोग और वियोग में मित्रता सी स्थापित कर दी है। २।

(- वित्तप)

प्रौढप्रेमरसादभेदघटितामङ्गे दधानः प्रियां
देवः पातु जगन्ति केलिकलहे तस्याः प्रसादाय यः।
व्याहर्त्तुं प्रणयोचितं नमयितुं मूर्धानमप्यक्षमो
धत्ते केवलमेव वामचरणाम्भोजे करं दक्षिणम्।।३।।

गदाधरस्य।

प्रगाढ़ प्रेमानन्दवश अपने शरीर में ही अभिन्न रूप से प्रिया को धारण किये हुए वे महादेव संसार की रक्षा करें, जो केलि-कलह में, पत्नी को प्रसन्न करने के लिए, प्रणय-व्यापार में, समुचित ढंग से अपने शिर को भी नहीं झुका पा रहे हैं - (एतदर्थ) उन्होंने केवल (प्रिया के) बायें चरण-कमल पर अपना दाहिना हाथ भर रख दिया है (क्योंकि अर्द्धनारीश्वर रूप में वे इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कर सकते)। ३।

(- गदाधर)

मिश्रीभूतां तव तनुलतां बिभ्रतो गौरि कामं
देवस्य स्यादविरलपरीरम्भजन्मा प्रमोदः।
किन्तु प्रेमस्तिमितमधुरस्निग्धमुग्धा न दृष्टि-
र्दृष्टेत्यन्तःकरणमसकृत्ताम्यति त्र्यबकस्य।।४।।

भगीरथस्य।

हे गौरी ! (अपने स्वरूप में सम्मिलित) तुम्हारी देहलता को धारण करते हुए (भगवान् शिव) भले ही सुदृढ़ आलिङ्गन का आनन्द प्राप्त कर रहे हों, लेकिन प्रेम से अधमुँदी, मधुर, प्यार भरी और भोली-भाली चितवन को न देख पाने के कारण त्र्यम्बेश्वर का हृदय बार-बार खीझ रहा है। ४।

(- भगीरथ)

अन्यस्यै सम्प्रतीमं कुरु मदनरिपो स्वाङ्गदानप्रसादं
नाहं सोढुं समर्था शिरसि सुरनदीं नापि सन्ध्यां प्रणन्तुम्।
इत्युक्त्वा कोपविद्धां विघटयितुमुमामात्मदेहं प्रवृत्तां
रुन्धानः पातु शम्भोः कुचकलसहठस्पर्शकृष्टो भुजो वः।।५।।

मयूरस्य।

हे कामारि शिव ! इस समय (आप) अपने अंग-दान का अनुग्रह किसी अन्य स्त्री पर कीजिए (अर्थात् अपने अर्द्धनारीश्वर स्वरूप में किसी अन्य स्त्री को सम्मिलित

कीजिए-), क्योंकि मैं अपने शिर पर न तो गंगा को सहन कर सकती हूँ और न सन्ध्या के सामने ही झुक सकती हूँ' - ऐसा कहकर रोषाविष्ट पार्वती को, जो अपने ही शरीर को तोड़ने-फोड़ने में लगी हैं, रोकते हुए शिव की वह भुजा आपकी रक्षा करे, जिसे स्तन-पयोधरों ने बरबस अपनी ओर खींच लिया है। ५।

(- मयूर)

२६. गणेशः

एकः स एव परिपालयताज्जगन्ति
गौरीगिरीशचरितानुकृतिं दधानः।
आभाति यो दशनशून्यमुखैकदेश-
देहार्धहारितवधूक इवैकदन्तः।।१।।

वसुकल्पस्य।

२६. गणेश

वे एकदन्त गणेश जी अकेले ही संसार की रक्षा करें, जो (एक साथ) शिव-पार्वती के कार्य-कलाप का अनुकण करने की चेष्टा कर रहे हैं। अपने दन्तहीन मुख के एक भाग से वे अर्द्धनारीश्वर शिव के समान प्रतीत हो रहे हैं। १।

(- वसुकल्प)

कपोलादुड्डीनैर्भयवशविलोलैर्मधुकरै-
र्मदाम्भःसंलोभादुपरि पतितुं बद्धपटलैः।
चलद्बर्हच्छत्रश्रियमिव दधानोऽतिरुचिरा-
मविघ्नं हेरम्बो जगदघविघातं घटयतु।।२।।

तस्यैव।

(हाथी की मुखाकृति से युक्त होने के कारण गणेश जी के मुख पर) मदजल (-जन्य सुगन्धि) के प्रलोभनवश झुण्ड-के-झुण्ड भौंरे टूट पड़ते हैं, (लेकिन फिर) भयवश, चंचल होकर, कपोल पर से उड़ते हुए भी दिखाई देते हैं। (उस समय ऐसा प्रतीत होता है जैसे गणेश जी ने) चलायमान मोरछत्र की रुचिर शोभा को धारण कर रखा हो ! ऐसी (शोभा से सम्पन्न) हेरम्ब (गणेश जी-) संसार भर के पापों का निर्विघ्न निवारण करें। २।

(- वही)

सन्ध्यासिन्दूररागारुणगगनतलासङ्गिगङ्गोत्तमाङ्ग-
त्वङ्गन्नक्षत्रमालाकृतरुचिररुचिः कर्णशङ्खीकृतेन्दुः।
निस्तोयाम्भोदवृन्दैः श्रुतियुगलचलच्चामराडम्बरश्री-
रव्याजालङ्कृतिर्वः प्रवितरतु गणग्रामणीर्मङ्गलानि।।३।।

दङ्कस्य।

संध्याकालिक सिन्दूरी रंग के लाल-ला आकाश में लहराती हुई (आकाश) गंगा के मस्तक से हिलते हुए नक्षत्रों की माला ने जिनकी कान्ति को अत्यन्त मनोहर बना दिया है। चन्द्रमा को जिन्होंने अपने कान में शंख (-निर्मित आभूषण की तरह धारण) कर रखा है, निर्जल मेघों से कर्णयुग्म ऐसा प्रतीत होता है जैसे उस पर चँवर डुलाया जा रहा हो- ऐसे स्वाभाविक आभूषणों और शोभा वाले गणनायक गणेश जी आपको मांगलिक दान करें। ३।

(- दङ्क)

गर्जद्गभीरघनघर्घरघोरघोष-
दिग्दन्तिभीतिजननोद्गतकण्ठनादः।
धुन्वन्मुखं तव निरस्यतु सर्वविघ्नं
लम्बोदरः सहजनाट्यरसप्रमत्तः।।४।।

पापाकस्य।

गरजते हुए गम्भीर मेघों की घर्घराहट से युक्त प्रचण्ड घोष से जो दिग्गजों के सदृश कण्ठनाद वाले हैं, ऐसे स्वाभाविक अभिनय के आनन्द में मतवाले लम्बोदर गणेश जी, सहमति-सूचक मुख को हिलाते हुए आपके समस्त विघ्नों का निराकरण करें। ४।

(- पापाक)

देवेन्द्रमौलिमन्दार-मकरन्दकणारुणाः।
विघ्नं हरन्तु हेरम्ब-चरणाम्बुजरेणवः।।५।।

उपापतिधरस्य।

देवराज इन्द्र के मस्तक पर (चढ़े) मन्दार पुष्प के मकरन्द कणों के सदृश लाल-लाल, गणेश जी के चरण-कमलों की धूलि (हमारे) विघ्नों का हरण करें। ५।

(- उमापतिधर)

३०. कार्त्तिकेयः

स्वच्छारम्यं लुठित्वा पितुरुरसि चिरं भस्मधूलीचिताङ्गी
गङ्गावारिण्यगाधे झटिति हरजटाजूटतो दत्तझम्पः।
सद्यः सीत्कारकारी जलजडिमरणद्दन्तपङ्क्तिर्गुहो वः
कम्पी पायादपायाज्ज्वलितशिखिशिखे चक्षुषि न्यस्तहस्तः।।१।।

बाणस्य।

३०. कार्त्तिकेय

पिता (शिव) के वक्षस्थल पर आराम से देर तक लोट-पोटकर, शरीर में भस्म-धूलि लग जाने पर (स्वामि कार्त्तिकेय) शंकर जी के जटाजूट से (छलाँग लगाकर) झट से गंगाजी के अगाध जल में कूद गये। वहाँ बर्फ की तरह शीतल जल में, (मारे ठंड के) जब (उनके) दाँत बजने लगे, तो सी-सी करते हुए (शिव के मस्तकस्थ तृतीय) नेत्र की जलती हुई अग्नि की लपट पर हाथ रखकर (तापने) लगे। ऐसे कार्त्तिकेय जी आपकी विपत्ति से रक्षा करें।'

(- बाण)

अर्चिष्मन्ति विदार्य्य वक्त्रकुहराण्यासृक्कतो वासुके-
स्तर्जन्या विषकर्बुरान् गणयतः संस्पृश्य दन्ताङ्कुरान्।
एकं त्रीणि नवाष्ट सप्त षडिति व्यस्तास्तसंख्याक्रमा-
वाचः शक्तिधरस्य शैशवकलाः कुर्वन्तु नो मङ्गलम् कस्यचित्।।२।।

(शिव के कण्ठ में लिपटे) वासुकि नाग के प्रज्ज्वलित मुख-विवरों को चीर कर, उसे निष्प्राण-सा बनाकर, तर्जनी से दन्ताङ्कुरों को छूते हुए कार्त्तिकेय विष की रंग-विरंगी (गांठों) की उल्टी-सीधी गिनती कर रहे हैं- 'एक, तीन, नौ, आठ, सात, और छह.. -' कार्त्तिकेय की, बचपन की यही तोतली बोलियाँ हमारा मंगल-कल्याण करें। २।

(- अज्ञात कवि)

---

१. इसी प्रकार की कल्पना महाकवि कालिदास के कुमारसम्भव (११.४७) महाकाव्य में भी मिलती है -'शम्भोः शिरोऽन्तस्सरितस्तरंगान् विभाव्य गाढं शिशिरान् रसेन।
स जातजाड्यं निजपाणिपद्ममतापयद् भालविलोचनाग्नौ।।'
- बालक कार्त्तिकेय जब कभी शंकर जी के शिर पर स्थित गंगा जी की लहरों में हाथ डाल देते थे, तो ठण्ड से उनके हाथ सुन्न हो जाते थे, तब वह अपना कमल-सा कोमल हाथ शिव के मस्तकस्थ तृतीय नेत्र के आगे ले जाकर सेंकने लगते थे।

सुप्तं पक्षपुटे निलीनशिरसं दृष्ट्वा मयूरं पुरः
कृत्तं केन शिरोऽस्य तात कथमेत्याक्रन्दतः शैशवात्।
अन्तर्हासपिनाकिपाणियुगलस्फालोल्लसच्चेतस-
स्तन्मूर्धेक्षणहर्षितस्य हसितं पायात्कुमारस्य वः।।३।।

कस्यचित्।

कुमार कार्त्तिकेय ने (बचपन में) अपने सामने (कदाचित्) पंखों में शिर को छिपाये सोते हुए मयूर को देखकर (पिता शिव से) रोते हुए पूछा- 'तात ! इसके शिर को किसने काट दिया ?' (बच्चे के इस भोले प्रश्न पर) भीतर-ही-भीतर प्रसन्न होते हुए शिव ने अपने दोनों हाथों से (बिना कुछ बोले) आनन्दपूर्वक कार्त्तिकेय को हल्के-हल्के उछालना (प्रारम्भ) किया, तो वे प्रसन्न होकर हँसने लगे। कुमार कार्त्तिक की वही (निश्छल) हँसी आपकी रक्षा करे। ३।

(- अज्ञात कवि)

हंसश्रेणिकुतूहलेन कलयन् भूषाकपालावलीं
बालामिन्दुकलां मृणालरभसादान्दोलयन् पाणिना।
रक्ताम्भोजधिया च लोचनयुगं लालाटमुद्घाटयन्
पायाद्वः पितुरङ्कभाक् शिशुजनक्रीडोन्मुखः षण्मुखः।।४।।

जलचन्द्रस्य।

पिता की गोद में बैठकर बाल-क्रीड़ा करते हुए वे षडानन कार्त्तिकेय आपकी रक्षा करें, जो (शिव कण्ठस्थ) मुण्डमाला को हंसों की पंक्ति समझकर गिन रहे हैं, छोटी-सी चन्द्र-कला को कमलनाल समझकर हाथ से हिला रहे हैं और मस्तकस्थ नेत्रयुग्म को लाल कमल समझकर खोल रहे हैं। ४।

(- जलचन्द्र)

नालैर्नीलोत्पलानां रचितगुरुजटाजूटविन्यासशोभः
कृत्वा सम्भुग्नकोटिद्वयमथविसिनीकन्दमिन्दोः प्रदेशे।
मातुश्चित्रांशुकेन त्वचमुचितपदे पौण्डरीकीं विधाय
क्रीडारुद्रायमाणो जगदवतु गुहो वीक्ष्यमाणः पितृभ्याम्।।५।।

हलायुधस्य।

खिलवाड़ में रुद्र का स्वांग रचाने के कारण माता-पिता के द्वारा (सामान्य) देखे जाते हुए वे स्वामि कार्तिकेय संसार की रक्षा करें, जिन्होंने नीलकमलों से भारी-भरकम जटाजूट की शोभा बना रखी है, चन्द्रमा के स्थान पर कमलनाल के दो टेढ़े-टेढ़े टुकड़े (लगा रखे हैं) और माता पार्वती के चित्रांकित दुपट्टे से त्वचा को श्वेतकमल की तरह सफेद कर रखा है। (इस प्रकार शिव की पूरी-पूरी नकल वे उतार रहे हैं।) ५।

(- हलायुध)

३१. भृङ्गी

दिग्वासा यदि तत्किमस्य धनुषा सास्त्रश्च किं भस्मना
भस्माथास्य किमङ्गना यदि च सा कामं ततो द्वेष्टि किम्।
इत्यन्योन्यविरोधि चेष्टितमिदं पश्यन्निजस्वामिनो
भृङ्गी सान्द्रसिरावनद्धमपुषं धत्तेऽस्थिशेषं वपुः।।१।।

योगेश्वरस्य।

३१. भृंगी

'(हमारे स्वामी शिव) यदि दिगम्बर हैं, तो इन्हें धनुष (धारण करने की) क्या (आवश्यकता है) ? और यदि अस्त्र के रूप में (धनुष को) धारण ही कर रखा है, तो भस्म का लेप क्यों करते हैं ? (फिर जब) भस्म रमा ही ली, तो (युवती और सुन्दर) स्त्री से उन्हें क्या लेना-देना ? (और यदि पास में युवती स्त्री को रख ही लिया है) तो उससे (अब) चिढ़ते क्यों हैं ?' - इस प्रकार अपने स्वामी की परस्पर विरोधी चेष्टाओं को देखते-देखते (बेचारे) भृंगी का शरीर हड्डियों का ढाँचा भर रह गया है, जिसमें (सर्वत्र रक्तमांसहीन) उभरी हुई नसें (भर दिखाई देती हैं)। १।

(- योगेश्वर)

कस्मात्त्वं तातगेहादपरमभिनवा ब्रूहि का तत्र वार्ता
देव्या देवो जितः किं वृषडमरुचिताभस्मभोगीन्द्रचन्द्रान्।
इत्येवं बर्हिनाथे कथयति सहसा भर्तृभिक्षाविभूषा-
वैगुण्योद्वेगजन्मा जगदवतु चिरं हारवो भृङ्गिरीटेः।।२।।

तुङ्गोकस्य।

'तुम कहाँ से आ रहे हो ?'

'तुम कहाँ से आ रहे हो ?'

'तात-गृह से।' 'आगे की बात बोलो, नया समाचार क्या है ?' 'देवी (पार्वती) ने स्वामी (-शिव-) को जीत लिया है-' 'फिर उन्हें नन्दी बैल, डमरू, चिता-भस्म, नागराज और चन्द्रमा से (क्या लेना-देना ? इन्हें उन्होंने अब क्यों धारण कर रखा है ?)' - इस प्रकार मयूर के कहने पर, भृंगी के मन में अचानक (अपने) स्वामी की भिक्षा और वेश-भूषा की विकृति से पहले उद्वेग उत्पन्न हुआ और तदन्तर हा-हाकार। भृंगी का वही हा-हाकार शब्द संसार की सुदीर्घ काल तक रक्षा करे। २।

(- तुङ्गोक)

चर्चेयं क्षुधिता सदैव गृहिणी पुत्रोऽप्ययं षण्मुखो
दुष्पूरोदरभारमन्थरवपुर्लम्बोदरोऽपि स्वयम्।
इत्येवं स्वकुटुम्बमेकवृषभो देवः कथं पोक्ष्यती-
त्यालोक्येव विशुष्कपञ्जरतनुर्भृङ्गी चिरं पातु वः।।३।।

नीलाङ्गस्य।

'(लोगों में) यह चर्चा सदैव बनी रहती है कि (शिव की) गृहिणी भूखी रहती है, पु? षडानन का उदर भी बड़ी कठिनाई से भरता है, और स्वयं शिव भी लम्बोदर तथा (गृहस्थ-जीवन की चिन्ताओं के) भार से मन्द गति वाले हैं। (परिवार बड़ा है) और बैल एक ही है (-इससे खेती भी नहीं कर सकते, क्योंकि उसमें दो बैल लगते हैं) - इस कारण (हमारे) मालिक शिव अपने (बड़े) परिवार का पालन-पोषण कैसे करेंगे ?' - यही (सोचते हुए तथा) देख-देखकर (बेचारे) भृंगी का शरीर सूखकर ठठरी भर रह गया है। ऐसे (स्वामिभक्त) भृंगी आपकी सुदीर्घ काल तक रक्षा करें। ३।

(- नीलाङ्ग)

भिक्षाभोजिनि कृत्तिवाससि वसुप्राप्तिः कुतः स्यादिति
प्रागर्द्धं वपुषः स्वयं व्यसनिनी यस्याहरत्पार्वती।
तस्यार्द्धं कुपिता हठाद्यदि हरेन्मूर्ध्नि स्थिता जाह्नवी
हा नाथः क्व तदेति दुःस्थहृदयो भृङ्गी चिरं शुष्यति।।४।।

भवानन्दस्य।

'(हमारे स्वामी शिव) भिक्षा (मांग कर) भोजन करते हैं, कपड़े के स्थान पर गज-चर्म लपेटे रहते हैं, इन्हें कहाँ से धन प्राप्त हो ? (ऊपर से) इनकी आदतें बिगड़ी हैं। शरीर के आधे हिस्से पर पार्वती ने कब्जा कर रखा है और अब यदि बाकी बचे आधे भाग पर गंगा ने भी जबर्दस्ती कब्जा कर लिया, तो ये रहेंगे कहाँ ? हाय मेरे स्वामी !'- (यही

सोच-सोचकर) बेचारे भृंगी का मन दुःखी होता रहता है (और इसी दुःख में) उसका शरीर निरन्तर सूखता ही जा रहा है। ४।

(- भवानन्द)

सेवां नो कुरुते करोति न कृषिं वाणिज्यमस्यास्ति नो
पैत्र्यं नास्ति धनं न बान्धवबलं नैवास्ति कश्चिद्गुणः।
द्यूतस्त्रीव्यसनं न मुञ्चति तथापीशस्तदस्मात्फलं
किं मे स्यादिति चिन्तयन्निव कृशो भृङ्गी चिरं पातु वः।।५।।

कस्यचित्।

'(हमारे स्वामी शिव) नौकरी करते नहीं है, कृषि और व्यापार भी इनके पास नहीं है। न तो (इनके पास) पैतृक धन है और न भाइयों का ही कोई सहारा है। इनमें कोई (ऐसा व्यावसायिक विशेष) गुण (हुनर) भी नहीं है (जिससे कोई काम करके ये अपनी जीविका कमा सकें)। (और इस पर) द्यूत, स्त्री और (भंग-धतूरे आदि के सेवन की) बुरी लतें भी ये नहीं छोड़ते - इसलिए मालिक होने पर भी इनसे मेरा कोई लाभ होने वाला नहीं है' - यही सोचते हुए दुर्बल हो गये भृंगी सुदीर्घ काल तक आपकी रक्षा करें। ५।

(- अज्ञात कवि)

३२. गणोच्चावचम्

स्थूलो दूरमयं न यास्यति कृशो नैष प्रयातुं क्षम-
स्तेनैकस्य ममैव तत्र कशिपुप्राप्तिः परं दृश्यते।
इत्यादौ परिचिन्तितं प्रतिमुहुस्तद्भृङ्गिकूष्माण्डयो-
रन्योन्यप्रतिकूलमीशशिवयोः पाणिग्रहे पातु वः।।१।।

तुङ्गोकस्य।

३२. गणों (में परस्पर) ऊँच-नीच भाव

(भृंगी और कूष्माण्ड के मध्य परस्पर आक्षेप-प्रत्याक्षेप चल रहा है-) 'यह (कूष्माण्ड) तो (इतना) मोटा है कि दूर नहीं जा पायेगा।' - 'अरे यह (भृंगी) तो सींकिया पहलवान है, यह तो चल-फिर भी नहीं सकता। इसलिए अकेले मुझे ही भोजन मिलने की (संभावना) दिखाई देती है।' - इस प्रकार, शिव-पार्वती के विवाह में, (शिव के दोनों गणों) भृङ्गी और कूष्माण्ड के मध्य चलने वाला परस्पर विरुद्ध विचार-विमर्श आपकी रक्षा करे। १।

(- तुङ्गोक)

चर्चायाः कथमेव रक्षति सदा सद्यो नृमुण्डस्त्रजम्
चण्डीकेशरिणो वृषं च भुजगान् सूनोर्मयूरादपि।
इत्यन्तः परिभावयन् भगवतो दीर्घं धियः कौशलं
कूष्माण्डो धृतिमम्भृतामनुदिनं पुष्णाति तुन्दश्रियम्।।२।।

कस्यचित्।

'(भगवान् शिव पार्वती की सखी) चर्चा (अथवा चर्चिका की खींचतान) से (अपनी) मुण्डमाला की, पार्वती के (वाहन) सिंह से नन्दी बैल की, तथा पुत्र कार्त्तिकेय और मयूर से (अपने कण्ठ में स्थित) सर्पों की रक्षा कैसे करते हैं !' - अपने हृदय में भगवान् शिव के इसी प्रभूत बुद्धिकौशल के विषय में सोच-सोच कर कूष्माण्ड नामक शिव का गण धैर्य-पूर्वक अपनी तोंद की शोभा को बढ़ाता रहता है। २।

(- अज्ञात कवि)

देवी सूनुमसूत नृत्यत गणाः किं तिष्ठतेत्युद्भुजे
हर्षाद्भृङ्गरिटावयाचितगिरा चामुण्डयालिङ्गिते।
अव्याद्वो हतदुन्दुभिस्वनघनध्वानातिरिक्तस्तयो-
रन्योन्यप्रचलास्थिपञ्चररणत्कङ्कारजन्मा रवः।।३।।

योगेश्वरस्य।

'देवी पार्वती ने पुत्र को जन्म दिया है, अरे (शिव के) गणों ! अब तो (खुशी से) नाचो'- (ऐसा कहकर) प्रसन्नता से हाथ उठाये हुए भृङ्गिरिटिका चामुण्डा ने, बिना बोले ही, आलिङ्गन कर लिया। (इससे) भृङ्गीरिरि और चामुण्डा के अस्ति-पंजरों के आपस में टकराने से इतनी प्रचण्ड ध्वनि हुई कि उसने नगाड़े और मेघों की गर्जना को भी पीछे छोड़ दिया। वही (प्रचण्ड ध्वनि) आपकी रक्षा करे। ३।

(- योगेश्वर)

श्रृङ्गं भृङ्गिन्विमुञ्च त्यज गजवदन त्वं च लाङ्गूलमूलं
मन्दानन्दोऽसि नन्दिन्नलमबल महाकाल कण्ठग्रहेण।
इत्युक्त्वा नीयमानः सुखयतु वृषभः पार्वतीपादमूले
पश्यन्नक्षैर्विलक्षं बलितगतिचलत्कम्बलं त्र्यम्बकं वः।।४।।

अभिनन्दस्य।

'अरे भृङ्गी ! (नन्दी की) सींग को छोड़ो; गणेश ! तुम भी (उसकी) पूँछ को छोड़ दो; नन्दी ! तुम्हारा मजा तो किरकिरा हो गया ! अरे महाकाल ! (नन्दी का) गला पकड़ना अब बन्द करो, (देखो, बेचारा कितना) कमजोर (हो गया) है !' - ऐसा कहकर पीछे घूमकर हिलते हुए कम्वल वाले लज्जित त्र्यम्बकेश्वर शिव को आँखों से निहारते हुए और पार्वती के चरणों में ले जाये जाते हुए वृषभ नन्दी (आपको) सुखी करें। ४।

(- अभिनन्द)

दिग्वासा वृषवाहनो नरशिरोधारी दधानोऽजिनं
भिक्षुर्भस्मभुजङ्गभूषिततनुर्भूतैर्भ्रमन् काननम्।
स्मर्तॄणां शिवकृत्तथापि जगति स्वेच्छोऽस्मदीयः प्रभु-
र्धन्योऽस्मीत्यतितोषपुष्टजठरः कूष्माण्डको ऽव्याज्जगत्।।५।।

महानिधेः।

'दिगम्बर, बैल पर सवारी करने वाले, नरमुंडमालाधारी, गज-चर्म को पहनने वाले, भीख (माँग कर) खाने वाले, सर्पों से सुशोभित शरीर वाले (होने) तथा भूत-प्रेतों के साथ जंगलों में विचरण करने पर भी (हमारे स्वामी शिव) संसार में अपने स्मरणकर्त्ता भक्तों का कल्याण स्वेच्छा से करते हैं; (उनके गण के रूप में) मैं धन्य हूँ' - इस आत्म-सन्तोष से पुष्ट उदरवाला कूष्माण्ड (नामक शिव का गण) संसार की रक्षा करें। ५।

(- महानिधि)

३३. हरिहरौ

यद्‌बद्धार्धजटं यदर्धमुकुटं यच्चन्द्रमन्दारयो-
र्धत्ते धाम च दाम च स्मितलसत्कुन्देन्दुनीलश्रियोः।
तत्खट्वाङ्गरथाङ्गसङ्गविकटं श्रीकण्ठवैकुण्ठयो-
र्वन्दे नन्दिमहोक्षतार्क्ष्यपरिषन्नामाङ्कमेकं वपुः।।१।।

राजशेखरस्य।

३३. हरि और हर

शिव और विष्णु के उस एकीभूत स्वरूप की मैं वन्दना करता हूँ, जिसके आधे भाग में जटाएँ बँधी हैं तथा आधे में मुकुट है, जो (क्रमशः) चन्द्रमा की किरणों तथा मन्दारमाला को धारण किये हुए हैं, जिसकी मुस्कान में (क्रमशः) कुन्दकुसुम और इन्द्रनीलमणि की

शोभाएँ सन्निहित हैं। उसके (एक हाथ में) खट्वाङ्ग तथा (दूसरे में) चक्र है। उसे नन्दी नामक वृद्ध बैल तथा गरुड जी चारों ओर से घेरे हुए हैं। १।

(– राजशेखर)

नियमितजटावल्लीलीलाप्रसुप्तमहोरगं
चरणकमलप्रान्ते मुक्तस्वविक्रमगोवृषम्।
विततफणिभुक्पत्रच्छत्रं गदालगुडाश्रयं
हरिहरवपुर्ब्रह्मोपास्यं पुनातु जगत्त्रयम्।।२।।

भवानन्दस्य।

भगवान् शिव तथा भगवान् विष्णु का वह (एकीभूत) स्वरूप तीनों लोकों को पवित्र करे, जिसकी उपासना स्वयं ब्रह्मा जी करते हैं। (उसमें) जटाओं की बेल बँधी हुई है, क्रीड़ावश नागराज सोये हुए हैं, चरण-कमलों के समीप (बैठे हुए) बैल ने (अपने) उत्पात बन्द कर दिये हैं, गरुड के पंखों का छत्र फैला हुआ है तथा वह गदा और लगुड (लाठी) के आश्रित है। २।

(– भवानन्द)

येन ध्वस्तमनोभवेन बलिजित्कायः पुरास्त्रीकृतो
यो गङ्गा च दधेऽन्धकक्षयकरो यो बर्हिपत्रप्रियः।
यस्याहुः शशिमच्छिरोहर इति स्तुत्यं च नामामराः
सोऽव्यादिष्टभुजङ्गहारवलयस्त्वां सर्वदो माधवः।।३।।

भारवेः।

वे सर्वप्रदाता भगवान् विष्णु तुम्हारी रक्षा करें, जिन्होंने प्राचीनकाल में, (शिव के रूप में) कामदेव को ध्वस्त करके बलि को जीतने वाले (विष्णु) का स्वरूप स्वीकार किया था। अन्धकासुर के विनाशक जिन्होंने गंगा को धारण कर रखा है। मयूर के पंख जिन्हें (बहुत) प्रिय हैं तथा देवगण जिनके 'चन्द्रमौलि' नामक स्तुतियोग्य नाम का उच्चारण करते रहते हैं। ३।

(– भारवि)

एकावस्थितिरस्तु वः पुरमुरप्रद्वेषिणोर्देवयोः
प्रालेयाञ्जनशैलश्रृङ्गसुभगच्छायाङ्गयोः श्रेयसे।

ताक्ष्यत्रासविहस्तपत्रगफटा यस्यां जटापालयो
बालेन्दुद्युतिसुप्तकोशजलजो यस्यां च नाभीह्रदः।।४।।

तुङ्गोकस्य।

हिमालय और नीलाचल के शिखरों की सुन्दर कान्ति से युक्त त्रिपुरारि शिव और मुरारि विष्णु के (विग्रह) आपके कल्याण के लिए मिलकर एक हो जायें। (दोनों के इस एकीभूत स्वरूप में) गरुड़ जी के भय से पराभूत नागों के फन जटाओं के किनारे-किनारे (छिपे) हैं, और बाल चन्द्र की कान्ति से बन्द कोष वाला कमल नाभि के गर्त में स्थित है। ४।

(- तुङ्गोक)

यज्जम्बूकम्बुरोचिः फणधरपरिषद्भोजिभोगीन्द्रकान्तं
नन्दच्चन्द्रारविन्दद्युतिचरणशिरःस्यन्दिमन्दाकिनीकम्।
रक्षासंहारदक्षं मदनसमुदयोद्दीपनं शश्वदव्या-
दव्याघातं विबोधेऽप्युदधिगिरिसुताकान्तयोर्देहमेकम्।।५।।

जलचन्द्रस्य।

समुद्रतनया लक्ष्मी और गिरिजा पार्वती दोनों के पतियों का एक में मिला हुआ वह शरीर, निर्विघ्न रूप से सदैव प्रबोध (-काल) में आपकी रक्षा करे, जो जामुन और शंख की (सम्मिलित) कान्ति वाला है, नागों के भक्षक गरुड और नागराज के (एक साथ रहने से) रमणीय है, उदित चन्द्र और नीलकमल की द्युति जिसके चरणों में (युगपत् और एक ही समय में) है, रक्षा और संहार दोनों में ही जो कुशल है, और जिसमें काम का आविर्भाव तथा उद्दीपन (दहन) ये (दोनों ही क्रियाएँ एक साथ हो रही) हैं। ५।

(- जलचन्द्र)

३४. कान्तासहितहरिहरौ

सम्भोगस्पृहयालुमन्मथपुनर्जन्मास्पदं भूर्भुवः-
स्वः पायात्पुरुषोत्तमक्रतुभिदोरर्द्धाङ्गपूर्णं वपुः।
यल्लक्ष्मीगिरिजाकटाक्षकुटिलक्रीडाहठाकृष्टिभिः
स्यादेव त्रुटितं परस्परगुणस्यूतं न चेदन्तरा।।१।।

त्रिपुरारिपालस्य।

३४. कान्तासहित हरि और हर

सम्भोग के लिए लालायित कामदेव के पुनर्जन्म के आस्पद विष्णु और शिव के आधे-आधे भागों और एक दूसरे के गुणों से मिलकर बने स्वरूप को यदि लक्ष्मी और पार्वती के कटाक्षों की कुटिल क्रीड़ा के हठीले आकर्षण यदि बीच में ही न तोड़ दें, तो वह पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग-इन तीनों लोकों की रक्षा कर सकता है। २।

(- त्रिपुरारिपाल)

वपुरवतु जटाकिरीटमिश्रं
पुरसुरसूदनयोर्विमिश्रितं वः।
गिरिजलधिसुतास्वभर्तृकण्ठग्रह-
चलिताहृतबाहुवल्लरीकम्।।२।।

तस्यैव।

त्रिपुरारि शिव और देवप्रिय विष्णु के (परस्पर) मिलकर (एक होने से) निष्पन्न शरीर, जिसमें जटा और किरीट मिश्रित हैं, पार्वती और लक्ष्मी दोनों अपने-अपने पतियों के कण्ठों में बाहुलताएँ डालकर झूल रही हैं, आपकी रक्षा करें। २।

(- वही)

स्फटिकमरकतश्रीहारिणोः प्रीतियोगा-
त्तदवतु वपुरेकं कामकंसद्विषोर्वः।
न विरमति भवान्याः सार्धमब्धेर्दुहित्रा
सदृशमहसि कण्ठे यत्र सीमाविवादः।।३।।

योगेश्वरस्य।

स्फटिक और मरकत (पन्ना) मणियों की शोभाओं से संवलित कामारि शिव और कंसारि विष्णु के प्रगाढ़ पारस्परिक प्रेम से आपस में एकीभूत वह शरीर आपकी रक्षा करे, जिसमें लक्ष्मी के साथ पार्वती का, समान अवसरों (अथवा उत्सवों) पर, कण्ठ सम्बन्धी सीमा-विवाद (कभी) समाप्त नहीं हो पाता (अर्थात् दोनों महिलाएँ ऐसे अवसरों पर आपस में कभी यह निर्णय नहीं कर पातीं कि उस एकीभूत शरीर के कण्ठ का कितना-कितना भाग उनका है। दोनों ही सम्पूर्ण कण्ठ पर अपनी-अपनी दावेदारी किया करती हैं।)। ३।

(- योगेश्वर)

देवस्यैकतमालपत्रमुकुटस्यार्धं पुरद्वेषिणो
देहार्द्धेन समस्यमानमसमं श्वः श्रेयसायास्तु वः।
यस्मिन् भूधरकन्यकाब्धिसुतयोरप्राप्तसम्भोगयो-
रन्योन्यप्रतिकर्मनर्मभिदुरो भूयाननङ्गज्वरः।।४।।

हरेः।

तमालपत्र के (सदृश) मुकुट वाले भगवान् विष्णु के शरीर का वह आधा भाग कल आपका कल्याण करें, जो त्रिपुरारि शिव के आधे शरीर से मिलकर पूर्ण होने की चेष्टा में निरत होने पर भी असमान है। इसमें, पार्वती और लक्ष्मी दोनों को ही समागम (का भरपूर आनन्द) प्राप्त न होने के कारण, एक-दूसरे के प्रति कर्म और आमोद-प्रमोद की भिन्नतायुक्त प्रचुर कामज्वर (दोनों में ही विद्यमान) है। ४।

(- हरि)

धात्रा सौहृदसीमविस्मितमुखं भेदभ्रमापासना-
त्सानन्दं मुनिभिः सनिर्वृति सुरैरेकत्र सेवासुखात्।
पार्वत्या स्वपदापकृष्टिकुटिलभ्रूभङ्गमालोकितः
पायाद्वो भगवांश्चराचरगुरुर्देहार्धहारी हरिः।।५।।

आर्याविलासस्य।

देह के अर्द्धभाग में भगवान् शिव का समावेश किये हुए (समस्त) स्थावर-जंगम जगत् के गुरु भगवान् विष्णु आपकी रक्षा करें। उन्हें, भेद-भ्रम के निवारण के कारण ब्रह्मा जी हार्दिक अनुराग और आश्चर्य से देख रहे हैं; मुनिजन आनन्दपूर्वक निहार रहे हैं; (दोनों परम देवों की) एक साथ सेवा करने का सुख पाने के कारण देवगण परमानन्द से देख रहे हैं (किन्तु) अपना स्थान छीन लेने के कारण पार्वती जी टेढ़ी भौहों से देख रही हैं। ५।

(-आर्याविलास)

३५. गङ्गा

ब्राह्मं तेजो द्विजानां ज्वलयति जडिमप्रक्रमं हन्ति बुद्धे-
र्वृद्धिं सेकेन सद्यः शमयति बलिनो दुष्कृतानोकहस्य।
ऊर्ध्वं चैवात्र लोकादपि नयतितरां जन्मिनो मग्नमूर्ती-
स्त्वद्धारावारि काशीप्रणयिनि परितः प्रक्रिया कीदृशीयम्।।१।।

कोलाहलस्य।

३५. गङ्गा

काशी (के प्रगाढ़) प्रेम में आबद्ध (हे मातः गंगे !) तुम्हारे जल-प्रवाह की चारों ओर यह कैसी (उल्टी) रीति (नीति) है, जिससे वह अपने जल से सींचकर ब्राह्मणों के ब्रह्मतेज को (शान्त करने के स्थान पर) और भी प्रज्वलित कर देता है, बुद्धि की जड़ता (शीतलता) को (बढ़ाने के बजाय) समाप्त कर देता है; पाप रूपी प्रबल वृक्ष को सींच-सींच कर (बढ़ाने के स्थान पर) सुखा देता है और प्राणियों के डूबे शरीरों को (नीचे ले जाने के बजाय) और ऊपर (के लोकों में) ले जाता है। १।

(- कोलाहल)

दुर्वारदोषतिमिरागमवासरश्रीः
कैवल्यकैरवविकाससितांशुलेखा।
जीयात्त्रिविष्टपधुनी कलिकालभग्न-
गीर्वाणराजनगराकरवैजयन्ती।।२।।

ग्रहेश्वरस्य।

स्वर्गिक नदी गंगा की जय हो। (वह) प्रबल दोष रूपी अन्धकार का निवारण करने के लिए दिन की शोभा (के सदृश) है; मोक्ष रूपी कमलों के विकास के लिए दिनकर की (प्रखर) किरण है और कलियुग में ध्वस्त हो गये, देवराज के नगर-समूह (-स्वर्ग-) की विजय-पताका (-वैजयन्ती-) है। २।

(-ग्रहेश्वर)

तीर्थाटनैः किमधिकं क्षणमीक्षिता चेत्-
पीतं त्वदम्बु यदि देवि मुधा सुधापि।
स्नातं यदि त्वयि विरिञ्चपुरं न दूरे
मुक्तिः करे यदि च सा समुपासितासि।।३।।

विरिञ्चेः।

(हे मातः गंगे !) क्षण भर के लिए यदि तुम्हारे दर्शन हो जायें तो तीर्थयात्रा से क्या लाभ ? तुम्हारा जल पीने के बाद अमृत निरर्थक लगता है; तुममें स्नान करने के बाद ब्रह्मलोक दूर नहीं रह जाता; और यदि तुम्हारे पास (भक्तिभाव से कुछ देर) बैठ लिया जाये तो (फिर) मुक्ति तो हाथ में ही आ जाती है। ३।

(- विरिञ्चि)

तीरं तवावतरतीह यथा यथैव
देहेन देवि जरता मनुजो मुमूर्षुः।
अम्ब स्वयंवरवशंवदनाकनारी-
दोर्वल्लिपल्लवि नभोऽपि तथा तथैव।।४।।

तस्यैव।

स्वयंवर में वशीभूत अप्सराओं की भुजलता रूपी पल्लवों वाली हे माँ गंगे ! यहाँ भूतल पर जिस-जिस प्रकार मरणासन्न मनुष्य वृद्ध शरीर से तुम्हारे तट पर उतरकर (स्नान करता है, उसी-उसी प्रकार स्वर्ग भी उसके (निकट) होता जाता है। ४।

(- वही)

तप्तं यन्न तपो हुतं च न हविर्यज्जातवेदोमुखे
दत्तं यच्च न किञ्चिदेव न कृतो यत्तीर्थयात्रादरः।
काकेनेव शुनेव केवलमयं यत्पूरितः पुङ्गलो
मातस्त्वां परिरभ्य जाह्नवि स मे शान्तोऽयमन्तर्ज्वरः।।५।।

सेन्तुतस्य।

हे मातः जाह्नवी ! मैंने तपस्या नहीं की है, अग्नि के मुख में आहुति डालते हुए होम भी नहीं किया है, दान स्वरूप भी कुछ नहीं दिया है, तीर्थ-यात्रा का सम्मान भी नहीं किया है। (बस एक काम किया है और वह यह है कि) कुत्ते और कौवे की तरह (जैसे-तैसे) केवल (अपने इस) शरीर का पोषण भर किया है ! (फिर भी) माँ ! तुम्हारे जल में अवगाहन करने के बाद मेरा (समस्त) आन्तरिक ज्वर शान्त हो गया है। ५।

(- सेन्तुत)

३६. गङ्गाप्रशंसा

धर्मस्योत्सववैजयन्ति मुकुटस्रग्वेणि गौरीपते-
स्त्वां रत्नाकरपत्नि जह्नुतनये भागीरथि प्रार्थये।
त्वत्तोयान्तशिलानिषण्णवपुषस्त्वद्वीचिभिः प्रेङ्खत-
स्त्वन्नाम स्मरतस्त्वदर्पितदृशः प्राणाः प्रयास्यन्ति मे।।१।।

लक्ष्मीधरस्य।

३६. गङ्गा-प्रशंसा

हे धर्म-महोत्सव की विजय पताके ! शिव की मुकुटमाला की वेणि ! रत्नराशि समुद्र की पालिके ! महर्षि जह्नु की पुत्रि ! राजर्षि भगीरथ की आत्मजे ! हे माँ गंगे ! मैं तुमसे केवल यही प्रार्थना करता हूँ कि (जीवन की अवसान-वेला में) तुम्हारे जल-प्रवाह (का स्पर्श करती हुई) अन्तिम शिला पर बैठकर, तुम्हारी लहरों में कूदते-झूलते हुए, तुम्हारे नाम का स्मरण करते हुए, और आँखों से (केवल) सर्वात्मना तुम्हें निहारते हुए (ही) मेरे प्राण प्रयाण करें। १।

(लक्ष्मीधर)

शत्रौ मे सुहृदीव काप्युपकृतिर्भूयादसूया न तु
स्वाच्छ्यं सत्सु मतिर्जनेषु करुणा हीना न दीनात्मसु।
प्रक्षीणा कलिकल्मषक्षयकरी तृष्णा न कृष्णार्चने
देवि श्रद्दधतां गतिस्त्वयि मुदा मन्दा न मन्दाकिनि।।२।।

तस्यैव।

हे देवि मन्दाकिनि ! मित्र के सदृश शत्रु पर भी मेरा कोई उपकार (ही) हो, न कि निन्दा-भाव। निर्मल व्यक्तियों के विषय में (मैं) विचार करूँ; दीनजनों के प्रति (मेरे मन में) हीनता का भाव न होकर करुणा की (भावना से युक्त) प्रवृत्ति हो; हे देवि ! तुम्हारे प्रति सहर्ष श्रद्धाभाव रखने वाले व्यक्तियों की तृष्णा क्षीण हो जाये और उनकी कृष्णार्चन-विषयिणी प्रवृत्ति कभी मन्द न होने पाये। २।

(- वही)

प्रसीद श्रीगङ्गे मृडमुकुटचूडाग्रसुभगे
तवोल्लोलोन्मूलः स्खलतु मम संसारविटपी।
अथोत्पत्स्ये भूयस्त्रिजगदधिराज्येऽपि न तदा
श्वपाकः काको वा भगवति भवेयं तव तटे।।३।।

पादुकस्य।

भगवान् शिव के मुकुट के शिखर पर सुशोभित हे माँ गंगे ! (तुम मुझ पर) प्रसन्न हो जाओ और तुम्हारी लहरों से टकराकर मेरा संसार-वृक्ष जड़ से उखड़ जाये। अगली बार जब मैं पुनः जन्म लूँ तो स्वर्ग में नहीं, बल्कि तुम्हारे तट पर (भले ही मैं) चाण्डाल या कौवा बनकर रहूँ। ३।

(-पादुक)

कदा ते सानन्दं विततनवदूर्वाञ्चिततटी-
कुटीरे तीरे वा सवनमनु मन्वादिकथितैः।
कथाबन्धैरन्धङ्करणकरणग्रामनियमा-
द्यमादुज्झन् भीतिं भगवति भवेयं प्रमुदितः।।४।।

गोपीचन्द्रस्य।

हे भगवति गंगे ! कब मैं आनन्दपूर्वक, तुम्हारे, नई-नई दूर्वा के दलों से हरे-भरे विस्तृत तीर अथवा कुटीर में, तीनों समय, मनु प्रभृति (ऋषि-महर्षियों) के द्वारा विहित कथा-वार्त्ता (को सुनते हुए) और इन्द्रियों की वहिर्मुखी प्रवृत्ति को नियंत्रित करने वाले यम-नियमों (का पालन करते हुए) (भव-) भयमुक्त होकर प्रसन्नता का अनुभव करूँ (गा)। ४।

(- गोपीचन्द्र)

बद्ध्धाञ्चलिर्नौमि कुरु प्रसादमपूर्वमाता भव देवि गङ्गे।
अन्ते वयस्यङ्कगताय मह्यमदेहबन्धाय पयः प्रयच्छ।।५।।

केवट्टपपीपस्य।

हे देवि गंगे! मैं करवद्ध होकर तुम्हें प्रणाम करता हूँ। (तुम) मुझ पर (प्रसन्नता से परिपूर्ण) अनुग्रह करो। तुम्हारे सदृश माता तो पहले (कभी) हुई ही नहीं। (अब मैं अपनी) अन्तिम अवस्था में हूँ। तुम्हारी गोद में बैठा हूँ। मेरा देह-बन्धन छूट जाये, इसलिये (हे माँ !) अपना जल मुझे दो। ५।

(- केवट्टपपीप)

३७. हरेर्मत्सावतारः

मत्स्यः पुनातु जगदोङ्कृतिकुञ्चितास्यो
ब्रह्माद्वयप्रणयपीवरमध्यभागः।
क्रीडन्नसौ जलधिवीचिभिरेव नेति
नेत्यादरादिव विभावितपुच्छकम्पः।।१।।

आवन्त्यकृष्णस्य।

३७. विष्णु का मत्स्यावतार[1]

(भगवान् विष्णु का वह) मत्स्य (अवतार) हमें पवित्र करे, जिसका मुख भाग ओङ्कार के आकार में मुड़ा हुआ है, मध्य भाग ब्रह्म के साथ एकात्म अनुराग से स्थूल हो गया है, और समुद्र की लहरों में क्रीड़ा करते हुए वह (मानों) परमात्मा के 'नेति-नेति'[2] स्वरूप के प्रति आदरभाव व्यक्त करते हुए (अपनी) पूँछ को हिलाता रहता है।१।

(-आवन्त्यकृष्ण)

देव्याः श्रुतेर्दनुजदुर्णयदूषिताया
भूयः समुद्गमविधाप्यवलम्बभूमिः।
एकार्णवीभवदशेषपयोधिमध्य-
द्वीपं वपुर्जयति मीनतनोर्मुरारेः।।२।।

उमापतिधरस्य।

दैत्य की दुर्नीति से दूषित भगवती श्रुति (वेद) को पुनः प्रकट करने की प्रक्रिया में जो अवलम्ब भूमि (बने), समस्त समुद्रों के मिलकर एक हो जाने पर उस एक समुद्र के मध्य में जिनका शरीर (अकेला) द्वीप बनकर (रक्षक सिद्ध हुआ), उन मत्स्यरूपधारी भगवान् विष्णु की जय हो। २।

(- उमापतिधर)

ब्रह्माण्डोदरदर्पणे भ्रमिरयोत्क्षिप्ताम्बुधिक्षालिते
संक्रान्तामनिमेषलोचनयुगेनोत्पश्यतः स्वान्तनुम्।
शौरेर्मीनतनोः कृशानुकपिशं पार्श्वद्वयं प्रोल्लस-
च्चन्द्रार्काङ्किततकाञ्चनाद्रिशिखराकारं शिरः पातु वः।।३।।

वसन्तदेवस्य।

---

१. भगवान् विष्णु के दस अवतारों में यह सबसे पहला माना जाता है। सातवें मनु के शासनकाल में दूषित हुई सारी पृथिवी बाढ़ग्रस्त हो गई थी। उस समय समस्त जीवधारी कालकवलित हो गये थे। विष्णु ने मत्स्यरूप में केवल मनु तथा सप्तर्षियों को बचा लिया था। जयदेवकृत गीतगोविन्द में इस अवतार का वर्णन इस प्रकार है -
'प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम्,
विहितवहित्रचरित्रमखेदम्।
केशवधृतमीनशरीर ! जय जगदीश हरे !')

२. ईश्वर का कोई एक रूप सुनिश्चित न होने से, आर्ष ग्रन्थों में उसे 'नेति-नेति' (-ऐसा अथवा इस प्रकार का नहीं-) कहा गया है।

भ्रमण-वेग से ऊपर उठाये गये समुद्रों के द्वारा प्रक्षालित ब्रह्माण्ड के उदर-दर्पण में प्रतिबिम्बित अपने शरीर को निर्निमेष नेत्रों से देखते हुए विष्णु के मत्स्य शरीर का वह शिर आपकी रक्षा करे, जो अग्नि के सदृश आरक्त भूरे रंग (- कपिशवर्ण-) का है तथा दोनों ओर उल्लसित चन्द्रमा और सूर्य के द्वारा अभिलषित स्वर्णगिरि (- सुमेरु पर्वत -) के शिखर के आकार का है। ३।

(- वसन्तदेव)

पातु त्रीणि जगन्ति पार्श्वकषणप्रक्षुण्णदिङ्मण्डलो
नैकाब्धिस्तिमितोदरः स भगवान्क्रीडाझषः केशवः।
त्वङ्गन्निष्ठुरपृष्ठरोमखचितब्रह्माण्डभाण्डावधे-
र्यस्योत्फालकुतूहलेन कथमप्यङ्गेषु जीर्णायितम्।।४।।

रघुनन्दनस्य।

लीलापूर्वक मत्स्य स्वरूप धारण करने वाले वह भगवान् विष्णु तीनों लोकों की रक्षा करें, जो पास-पास टकराने से विनष्ट दिग्मण्डल वाले तथा अनेक समुद्रों (के एक में मिलने से) निश्चल (और क्लिन्न) उदर वाले हैं। उनकी हिलने-डुलने से कठोर पीठ पर रोगों से ब्रह्माण्ड रूपी पात्र के (अस्तित्व की) सीमा अंकित है तथा उनके उछलने के कौतुहल से, किसी प्रकार, जीर्ण-शीर्ण अंगों वाला होने पर भी यह (ब्रह्माण्ड अवस्थित) है। ४।

(- रघुनन्दन)

मत्स्यः पुच्छाभिघातेन तुच्छीकृतमहोदधिः।
अपर्याप्तजलक्रीडारसो दिशतु वः शिवम्।।५।।

कस्यचित्।

मत्स्य (स्वरूपधारी वह भगवान् विष्णु) आपका कल्याण करें, जिनकी पूँछ से टकराकर महासागर भी छोटा हो जाता है तथा जिनकी जल-क्रीड़ा का आनन्द असीम है। ५।

(- अज्ञात कवि)

३८. कूर्मः

पृष्ठभ्राम्यदमन्दमन्दरगिरिग्रावाग्रकण्डूयना-
न्निद्रालोः कमठाकृतेर्भगवतः श्वासानिलाः पान्तु वः।

यत्संस्कारकलानुवर्तनवशाद्वेलाच्छलेनाम्भसां
यातायातमयन्त्रितं जलनिधेर्नाद्यापि विश्राम्यति।।१।।

केशटाचार्यस्य।

३८. कूर्म[1] (अवतार)

पीठ पर तेजी से घूमते हुए मन्दराचल की शिला के अग्रभाग से खुजलाने से निद्रायुक्त, कच्छपाकार वाले उन भगवान् विष्णु की श्वासवायु (-खर्राटा-) आपकी रक्षा करे जिनके द्वारा डाले गये संस्कार का अंशमात्र अनुवर्तन करने के कारण, समुद्र में, तट से टकराती हुई जलराशि का अनियन्त्रित आवागमन आज भी नहीं रुक पा रहा है। १।

(-केशटाचार्य)

क्षीराब्धौ मथ्यमाने त्रिदशदनुसुतोद्भूतकोलाहलोद्यद्-
ब्रह्माण्डाकाण्डचण्डस्फुटनगुरुरवभ्रान्तिभाजि त्रिलोक्याम्।
सद्यो निद्रावबोधादुपरि रयवशक्षिप्तदीर्घक्षितिध्रा-
लग्नग्रीवाप्रकाण्डो जयति कमठराट् चण्डविष्कम्भतुल्यः।।२।।

बन्धसेनस्य।

क्षीरसागर का मन्थन होने पर, देवताओं और दैत्यों ने (इतना) कोलाहल किया कि उससे तीनों लोक ब्रह्माण्ड के असमय महा विस्फोटजन्य प्रचण्ड ध्वनि की आशंका करने लगे। (उस समय) तत्काल नींद टूटने से, (ग्रीवा के ऊपर) वेगयुक्त भारी-भरकम पर्वत धारण करने वाले उन कच्छपराज की जय हो, जो एक बड़े स्तम्भ की तरह (प्रतीत हो रहे) थे। २।

(- बन्धसेन)

पायाद्वो मन्दराद्रिभ्रमणनिकषणाकृष्टपृष्ठाग्रकण्डू-
लीलानिद्रालुरब्धेः क्षुभितमगणयन्नद्भुतः कूर्मराजः।
यस्याङ्गामर्दहेलावशचलितमहाशैलकीला धरित्री
त्वङ्गत्कल्लोलरत्नाकरवलयचलन्मेखला नृत्यतीव।।३।।

सूरेः।

---

१. विष्णु का यह दूसरा अवतार है। गीतगोविन्द में इसका वर्णन् इस प्रकार है
'क्षितिरतिविपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे धरणिधरणकिणचक्र गरिष्ठे।
केशवधृतकच्छपरूप !, जय जगदीश हरे !'

लीलावश निद्रालु वे विलक्षण कच्छपराज आपकी रक्षा करें, जिनकी पीठ की खुजली घूमते हुए मन्दराचल की रगड़ से (दूर हुई है) और जो पर्वत के हिलने-डुलने की परवाह नहीं करते हैं। महाशैल की कीली पर रखी पृथिवी जो उनके अंगों की रगड़ से (सूरत-क्रीड़ा के निमित्त) विचलित-सी हो गई थी, और समुद्र की चंचल लहरें जिसकी करधनी जैसी प्रतीत हो रही थी, (उस समय) नृत्य-सा कर रही (प्रतीत होती) थी। ३।

(-सूरि)

पार्श्वास्फालातिवेगाज्झगिति च विरहादुच्छलद्भिः पतद्भि-
र्भूयोभूयः समुद्रैर्मिहिरमतिरयादापिबद्भिर्वमद्भिः।
कोटीरस्तोदयानां क्षणमिव गगने दर्शयन्वः पुनीता-
दीषद्गात्रावहेलाचलितवसुमतीमण्डलः कूर्मराजः।।४।।

धरणीधरस्य।

तीव्र मन्थन के कारण अत्यन्त वेग से 'झक्-झक्' (ध्वनि) के साथ बार-बार ऊपर उठते और गिरते हुए समुद्र सूर्य को (कभी) निगल रहे थे और (कभी) उगल रहे थे। (उस समय) आकाश में, क्षण में सूर्य के प्रकट होने और (क्षण भर में ही) विलीन हो जाने की स्थितियों को दिखाते हुए वे कूर्मराज आपकी रक्षा करें, जिनके शरीर के तनिक स्पर्श से ही भूमण्डल विचलित हो रहा था। ४।

(-धरणीधर)

कुर्मः कूर्माकृतये हरये मुक्तावलम्बनाय नमः।
पृष्ठे यस्य निषण्णं शैवलवल्लीसमं विश्वम्।।५।।

भवानन्दस्य।

(अपने) आधार का त्याग कर कच्छप स्वरूप (धारण करने वाले) उन भगवान् विष्णु को हम नमस्कार करते हैं जिनकी पीठ पर यह विश्व शैवाल-लताओं के सदृश रखा हुआ प्रतीत होता है। ५।

(-भवानन्द)

३९. वराहः

दंष्ट्रापिष्टेषु सद्यः शिखरिषु न कृतः स्कन्धकण्डूविनोदः
सिन्धुष्वङ्गावगाहः खुरकुहरविशत्तोयतुच्छेषु नाप्तः।

प्राप्ताः पातालपङ्के ननु च न रतयः पोत्रमात्रोपयुक्ते
येनोद्धारे धरित्र्याः स जयति विभुताबृंहितेच्छो वराहः।।१।।

वराहमिहिरस्य।

३८. वराह[1] (अवतार)

अपनी विशालता और सामर्थ्य से संवर्धित इच्छा वाले उन (भगवान्) वराह की जय हो, जिन्होंने पृथिवी का उद्धार करते समय, दाँतों से पीसे गये पर्वतों में न तो अपने कन्धे की खुजली मिटाई और न खुर (भर) गर्त में लीन जलराशि वाले समुद्रों में अवगाहन (ही) किया। (उन्होंने) थूथन भर के लिए पर्याप्त पाताल के पंक में (भी) कोई अनुराग नहीं प्रकट किया था। १।

(-वराहमिहिर)

अस्ति श्रीस्तनपत्रभङ्गमकरीमुद्राङ्कितोरस्थलो
देवः सर्वजगत्पतिर्मधुवधूवक्त्राब्जचन्द्रोदयः।
क्रीडाक्रोडतनोर्नवेन्दुविशदे दंष्ट्राङ्कुरे यस्य भू-
र्भाति स्म प्रलयाब्धिपल्वलतलोत्खातैकमुस्ताकृतिः।।२।।

नग्नस्य।

समस्त जगत् के स्वामी (भगवान् विष्णु), जिनके वक्षस्थल पर लक्ष्मी के स्तनों पर रची गई पत्र-रचना (चित्रकारी) गत मकड़ी की मुद्रा (आलिङ्गन में) अंकित हो गई है, (वराह अवतार में) मधु दैत्य की स्त्रियों के मुख-कमलों के लिए चन्द्रोदय (के सदृश आविर्भूत प्रतीत होते) हैं। (तात्पर्य यह कि उनके आविर्भाव से मधु दैत्य की स्त्रियों के मुख पर विद्यमान प्रसन्नता वैसे ही समाप्त हो गई है, जैसे चन्द्रोदय होने पर कमल कुम्हला जाते हैं। उनके खेल-खेल में फैलाये गये नवीन चन्द्रमा के सदृश शुभ दंष्ट्राङ्क में (रखी) पृथिवी की आकृति ऐसी प्रतीत होती है, जैसे वह प्रलय कालीन समुद्ररूपी पोखर से उखाड़ी गई भद्रमोथा की (जड़) हो। २।

(-नग्न)

---

१. विष्णु का यह तृतीय अवतार माना जाता है। गीतगोविन्द में इसका वर्णन इस प्रकार है -
'वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना,
शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना,
केशव! धृतशूकररूप! जय जगदीश हरे!'

सेयं चन्द्रकलेति नाकवनितानेत्रोत्पलैरर्चिता
मद्भारापगमक्षमेति फणिना सानन्दमालोकिता।
दिङ्नागैः सरलीकृतायतकरैः स्पृष्टा मृणालाशया
भित्वोर्वीमभिनिःसृता मधुरिपोर्दंष्ट्रा चिरं पातु वः।।३।।

केशवस्य।

वराहरूपधारी भगवान् विष्णु की, धरती को फोड़कर निकली (वह) दाढ़ आपकी सुदीर्घ काल तक रक्षा करे, जिसकी पूजा स्वर्ग की अप्सरायें चन्द्रकला समझकर नेत्र-कमलों से करती हैं, शेषनाग उसे अपना भार हटाने में समर्थ समझकर निहारते हैं और दिग्गजवृन्द, अपनी सूँड़ों को सीधी करते हुए, कमलनाल समझ कर उसे छूते रहते हैं। ३।

(-केशव)

घोणाघोराभिघातोच्छलदुदधिजलासारसिक्ताग्ररोमा
रोमाग्रप्रोततारानिकर इति सुरैर्धीरमालोकितो वः।
श्वासाकृष्टावकृष्टप्रविशदपसरद्ब्रध्नबिम्बानुबन्धा-
दाविर्नक्तन्दिनश्रीः स दिशतु दुरितध्वंसमाद्यो वराहः।।४।।

नरसिंहस्य।

आद्य वराहरूपधारी वे भगवान् विष्णु आपके दुःखों, दुर्व्यसनों और पापों का विध्वंस करें, जिनके आगे की रोमराशि उन्हीं के थूथन के प्रचण्ड आघात से उछलती हुई सामुद्रिक जलराशि से गीली हो गई थी (और) रोमों पर लगी जल की बूँदें, देवताओं के द्वारा धैर्यपूर्वक देखने पर, नक्षत्र-समूह-सी प्रतीत होती थीं। सूर्य का बिम्ब उनके साँस लेने पर छिप जाता था और साँस छोड़ने पर (फिर) प्रकट हो जाता था। (इसके कारण) दिन और रात की शोभा (एक साथ) दिखलाई देती थी। ४।

(-नरसिंह)

येनाधोमुखपद्मिनीदलधिया कूर्मश्चिरं वीक्षितः
घ्रातो येन मृणालमुग्धलतिकाबुद्ध्या फणिग्रामणीः।
यः शालूकमिवोद्दधार धरणीबिम्बं पुनीतादसौ
त्वामेकार्णवपल्लवैकरसिकः क्रीडावराहो हरिः।।५।।

कस्यचित्।

लीलावश वराह (बने वे भगवान् विष्णु) तुम्हें पवित्र करें, जिनके द्वारा निम्नाभिमुख कमलिनीदल समझकर कच्छप को देर तक देखा गया तथा शेषनाग को कमल की लता समझकर सूँघा गया। उन्होंने कुमुदिनी की जड़ के सदृश पृथ्वी के स्वरूप का उद्धार पुनः किया है। ५।

(- अज्ञात कवि)

४०. नरसिंहः

सोमार्धायितनिष्पिधानदशनः सन्ध्यायितान्तर्मुखो
बालार्कायितलोचनः सुरधनुर्लेखायितभ्रूलतः।
अन्तर्नादगभीरपल्वलगलत्वग्रूपनिर्यत्तडि-
त्तारस्फारसटावरुद्धगगनः पायान्नृसिंहो जगत्।।१।।

मुरारेः।

४०. नरसिंह[1]

(वे) नृसिंह भगवान् जगत् की रक्षा करें, जिनके दाँत अर्द्धचन्द्राकार तथा (बाह्य) अवलम्ब रहित हैं, मुख का भीतरी भाग सन्ध्या के सदृश लाल-लाल है, आँखें (भी) बाल सूर्य के समान (लाल-पीली) हैं, (आँखों के ऊपर) भौंहें इन्द्रधनुष की रेखाओं जैसी हैं, कण्ठ अन्तर्नाद की गम्भीरता से युक्त है, त्वचा ऐसी चमक रही है, जैसे बिजली कौंध रही हो और कन्धे के अयालों से आकाश अवरुद्ध हो गया है। १।

(- मुरारि)

चटच्चटिति चर्मणि च्छमिति चोच्छलच्छोणिते
धगद्धगिति मेदसि स्फुटतरोऽस्थिषु ष्ठादिति।
पुनातु भवतो हरेरमरवैरिनाथोरसि
क्वणत्करजपञ्जरक्रकचकाषजन्मा रवः।।२।।

वाक्पतिराजस्य।

नृसिंह भगवान् (जब अपने) नखरूपी आरे से देवताओं के शत्रु (दैत्य हिरण्यकशिपु) के सीने पर प्रहार कर रहे थे, उस समय जब वह खाल में (धँसा तो) 'चट्-चट्' की तथा

---

१. विष्णु का यह चतुर्थ अवतार है। गीतगोवन्दि में इसका वर्णन इस प्रकार है-
तव करकमले नखमद्‌भुतश्रृंगम्,
दलितहिरण्यकशिपु तनु भृंगम्,
केशव धृतनरसिंहरूप! जय जगदीश हरे!।

रक्त में (धँसा तो) 'छम्-छम्' की ध्वनि करते हुए खून का फौव्वारा फूट पड़ा, मेदस् में जव प्रविष्ट हुआ तो 'धग्-धग्' की प्रतिध्वनि हुई। नखरूपी आरे से निकली वही प्रतिध्वनि आपको पवित्र करे। २।

(-वाक्पतिराज)

प्रेङ्खद्भास्वरकेशरौधरचितत्रैलोक्यसन्ध्यातपो
ब्रह्माण्डोदररोधिघर्घरसघूत्कारप्रचण्डध्वनिः।
स्फूर्जद्वज्रकठोरघोरनखरक्षुण्णासुरोरस्थली-
रक्तास्वादविदीर्णदीर्घरसनः पायान्नृसिंहो जगत्।।३।।

तस्यैव।

वे नृसिंह भगवान् जगत् की रक्षा करें, जिनकी झूलती और चमकती हुई केसर-सटाओं (कन्धे के बालों) से तीनों लोकों में सन्ध्या के सूर्य के सदृश (लालिमा) छा गई, (सम्पूर्ण) ब्रह्माण्ड के भीतर घर्घराहट करती हुई, 'घू-घू' की प्रचण्ड ध्वनि व्याप्त हो गई। अपने वज्र के सदृश कठोर और चमचमाते नाखूनों से उन्होंने असुर (राज हिरण्यकशिपु) के वक्षस्थल को चीर दिया। (उस समय) रक्त के आस्वादन से उनकी लम्बी जिह्वा लपलपा रही थी। ३।

(-वही)

चक्र ब्रूहि विभो गदे जय हरे कम्बो समाज्ञापय
भोभो नन्दक जीव पन्नगपते किं नाथ भिन्नो मया।
को दैत्यः कतमो हिरण्यकशिपुः सत्यं भद्र्भ्याः शपे
केनास्त्रेण नखैरिति प्रवदतः शौरेर्गिरः पान्तु वः।।४।।

केशटस्य।

'अरे चक्र!'-'हाँ, स्वामिन्!' 'गदे!'-'जी प्रभो!' 'शंख!'-'भगवन्! आज्ञा दीजिए।' 'अरे नन्दक! अरे गरुड!'-स्वामिन्! क्या आज्ञा है?' मैंने किस दैत्य को चीरा-फाड़ा? (क्या कहा?-हिरण्यकशिपु?) कौन-सा हिरण्यकशिपु? किस अस्त्र से? अरे, सौगन्धपूर्वक कहता हूँ कि केवल नाखूनों से।' -(पार्षदों) संभाषण करते हुए (नृसिंह रूपधारी) भगवान् विष्णु के ये वचन आपकी रक्षा करें। ५।

(-केशट)

किं किं सिंहस्ततः किं नरसदृशवपुर्देव चित्रं गृहीतो
नैवं धिक्कोत्र जीव द्रुतमुपनय तं सोपि सम्प्राप्त एव।
चापं चापं न सज्जं झटिति हहह हा कर्कशत्वं नखाना-
मित्येवं दैत्यराजं निजनखकुलिशैर्जघ्निवान् सोवताद्वः।।५।।

श्रीव्यासपादानाम्।

(हिरण्यकशिपु का प्रश्न-) 'क्या-क्या ! सिंह है ? तो उससे क्या ? (क्या कहा-) मनुष्य के समान उसका शरीर है!' - 'महाराज ! यह तो बड़े आश्चर्य की बात है !'

'पकड़ लिया न उसे ?' - 'नहीं, महाराज !' 'तुम लोगों को धिक्कार है ! अरे, कोई है ? जल्दी जाकर उसे पकड़ लाओ।' - 'महाराज ! वह स्वयं ही आ गया है।' 'अरे धनुष (लाओ), धनुष ! (क्या कहा ?) धनुष चढ़ा नहीं है।' (इसके वाद) तत्काल ही (वक्षःस्थल पर नृसिंह के नखों का आघात होने पर-) - 'आह ! कितने कड़े नाखून हैं !!' - इस प्रकार, दैत्यराज (हिरण्यकशिपु) को (अपने) वज्रवत् नाखूनों से मार डालने वाले नृसिंह आपकी रक्षा करें। २।

(- श्रीव्यासपाद)

४१. नरसिंहनखाः

दंष्ट्रासङ्कटवज्रघर्घरललज्जिह्वाभृतो हव्यभुग्-
ज्वालाभास्वरभूरिकेशरसटाभारस्य दैत्यद्रुहः।
व्यावलगद्वलवद्धिरण्यकशिपुक्रोडस्थलीपाटन-
स्पष्टप्रस्फुटदस्थिपञ्जररवक्रूरा नखाः पान्तु वः।।१।।

दक्षस्य।

४१. नृसिंह के नाखून

दैत्यों के शत्रु, वज्रवत् कड़कड़ाती दाढ़ों और लपलपाती जिह्वा वाले, अग्निशिखाओं के सदृश चमचमाती अयालों से युक्त नृसिंह भगवान् के वे नख आपकी रक्षा करें जो कूदते-फाँदते हुए हिरण्यकशिपु के वक्षः स्थल को चीरते (समय) स्पष्ट रूप से अस्थि-पिंजर के चिटखने की (ध्वनि उत्पन्न करने में) निष्ठुर हैं। १।

(- दक्ष)

ये बालेन्दुकलार्धविभ्रमभृतो मायानृसिंहाकृते-
र्निर्याता इव ये सिरासरणिभिर्नाभ्यब्जकन्दाङ्कुराः।
ते वक्षस्थलदारितासुरसरित्कीलालधारारुणाः
पायासुर्नवकिंशुकाग्रमुकुलश्रीसाक्षिणः पाणिजाः।।२।।

वराहस्य।

वालचन्द्र की आधी कला के हाव-भावों वाले तथा मायावश नृसिंह का स्वरूप धारण करने वाले (भगवान् विष्णु के) वे नख आपकी रक्षा करें, जो शिराओं के द्वारा निकले हुए नाभि-कमलगत कन्द के अंकुर के (सदृश प्रतीत होते) हैं (हिरण्यकशिपु के) फाड़े गये वक्षःस्थल से फूटी हुई (रक्त की) नदी की धारा से लाल-लाल हैं तथा नये-नये पलाश में निकली पहली-पहली कलिकाओं की शोभा से सम्पन्न हैं। २।

(- वराह)

अस्रस्रोतस्तरङ्गभ्रमिषु तरलिता मांसपङ्के लुठन्तः
स्थूलास्थिग्रन्थिभङ्गैर्धवलविसलताग्रासमाकल्पयन्तः।
मायासिंहस्य शौरेः स्फुरदरुणहृदम्भोजसंश्लेषभाजः
पायासुर्दैत्यवक्षस्थलकुहरसरोराजहंसा नखा वः।।३।।

मयूरस्य।

मायावश सिंह बने भगवान् विष्णु के, रुधिर-धारा के तरंग-चक्रावर्तों में आन्दोलित, मांस के पंक में लोटते हुए, बड़ी हिड्डियों (और उनके पास की) गाँठों के खण्डों से शुभ्र कमललंता के ग्रासों की प्रतीति कराते हुए, फड़कते हुए लाल-लाल हृदयरूपी कमल के आलिङ्गन में निरत और दैत्य (राज हिरण्यकशिपु) के वक्षःस्थल रूपी सरोवर में (विचरण करने वाले) राजहंसों (के सदृश) नख आपकी रक्षा करें। ३।

(- मयूर)

पुनन्तु भुवनत्रयं दलितदैत्यवक्षस्थल-
प्रसर्पिरुधिरच्छटाच्छुरणबालसूर्यत्विषः।
दृढास्थिचयचूर्णनाघटितशब्दसारा हरे-
र्नृसिंहवपुषश्चिरं पिशितपिण्डगर्भा नखाः।।४।।

धूर्जटिराजस्य।

नृसिंह-शरीरधारी भगवान् विष्णु के, मारे गये दैत्य के वक्षःस्थल से प्रवाहित रुधिर-धारा से लिप्त बाल-सूर्य के सदृश कान्ति वाले, सुदृढ़ हड्डियों के समूह के पिसने से निकली प्रचण्ड ध्वनियुक्त और मांसपिण्ड में धँसे नख चिरकाल तक तीनों लोकों को पवित्र करें। ४।

(- धूर्जटिराज)

जयन्ति निर्दारितदैत्यवक्षसो
नृसिंहरूपस्य हरेर्नखाङ्कुराः।
विचिन्त्य येषां चरितं सुरारयः
प्रियानखेभ्योऽपि रतेषु बिभ्यति।।५।।

कस्यचित्।

नृसिंह रूपधारी भगवान् विष्णु के, दैत्य के वक्षःस्थल को फाड़ चुके उन नखाङ्कुरों की जय हो, जिनके (विलक्षण) कर्तृत्व की याद करके, दैत्यगण (आज तक) रति-क्रीड़ाओं में (अपनी) प्रेयसियों के (भी) नखों से डरते रहते हैं। ५।

(- अज्ञात कवि)

४२. श्रृङ्गारिनरसिंहः

लक्ष्मीमुरःपरिसरे वहतः सलीलं
योगासनं च चरतो नृहरेर्जयन्ति।
एकक्षणोपनतमान्मथभावमुग्ध-
स्वात्मावबोधमसृणानि विलोकितानि।।१।।

कस्यचित्।

४२. श्रृंगारयुक्त नृसिंह

क्रीड़ावश वक्षः स्थल पर लक्ष्मी को धारण किये हुए और (साथ ही) योगासन भी करते हुए नृसिंह की उन भोली और कोमल चितवनों की जय हो, (जिनमें) एक क्षण के लिए काम-भावना के उत्पन्न होने से, वे अपने आपको (- अर्थात् अपने रौद्रस्वरूप को-) भी भूल बैठे हैं।

(अज्ञात कवि)

न्यञ्चत्केसरमुत्तरङ्गपुलकस्त्रग्नद्धमर्धस्खल-
द्वन्द्वालापमपास्तगर्जमनटद्भ्रूभङ्गमार्द्रेक्षणम्।
स्विद्यत्पाणि विनीतदृप्तिकरजं पायान्नृसिंहाकृते-
र्देवस्य श्रियमङ्कसीम्नि दधतो विश्रान्तरौद्रं वपुः।।२।।

वैद्यगदाधरस्य।

गोद में लक्ष्मी को धारण किये हुए नृसिंह रूपधारी भगवान् विष्णु का वह स्वरूप (हमारी) रक्षा करे, जिसमें उनका रौद्र रूप शान्त हो चुका है, केसर-सटाएँ अलसा गई हैं, माला आनन्दोल्लास को व्यक्त कर रही है, (विष्णु और लक्ष्मी- इन) दोनों के मध्य हो रहा वार्तालाप लड़खड़ा रहा है, गर्जन-तर्जन समाप्त हो चुका है, भ्रू-भङ्गिमाएँ स्थिर हैं, आँखें अश्रुसिक्त हैं, हाथ पसीज रहे हैं और नाखूनों की चमक में विनयशीलता आ गई है। २।

(- वैद्यगदाधर)

स्वच्छन्दं वैरिवक्षःस्थलकुलिशभिदो वीक्ष्य कन्दर्पचाप-
क्रीडाभाजो नखाग्रान् समसमयभयानन्दलोलायताक्ष्याः।
लक्ष्म्या वक्षोजकुम्भङ्करिकलभशिरःशङ्कया वीक्षमाणः
स्वैरं शान्ताक्षिरागो जयति नरहरिर्जातचित्तानुरागः।।३।।

जलचन्द्रस्य।

स्वच्छन्दतापूर्वक शत्रु के वक्षः स्थल रूपी वज्र को विदीर्ण करने वाले (नृसिंह) के नखों के अग्रभागों को (जब लक्ष्मी ने) काम-क्रीड़ा में संलग्न देखा, तो उनकी आँखें भय और आनन्द से एक साथ चंचल होकर फैल गईं। (उस समय) भगवान् नृसिंह लक्ष्मी के स्तन-पयोधरों को हस्ति-शावकों के शिर समझकर देख रहे थे। (इस आनन्दमुद्रा में निरत) उन नृसिंह भगवान् की जय हो, जिनकी आँखों की लालिमा चित्त में प्रेमानुराग (उत्पन्न होने के कारण) स्वयमेव समाप्त हो गई है। ३।

(- जलचन्द्र)

अव्याद्वो वज्रसारस्फुरदुरुनखरक्रूरचक्रक्रमाग्र-
प्रोद्भिन्नेन्द्रारिवक्षस्थलगलदसृगासारकाश्मीरगौरः
प्रस्फूर्जत्केशराग्रग्रथितजलधरश्रेणिनीलाब्जमाल्यः
सूर्याचन्द्रावतंसो नरहरिरसमायाबद्धश्रृङ्गारलीलः।।४।।

प्रजापतेः।

सूर्य और चन्द्रमा को कर्णाभूषण के सदृश धारण किये हुए और असमय में ही श्रृङ्गार-क्रीड़ा में निरत वे नृसिंह भगवान् आपकी रक्षा करें, जिनके वज्र के सदृश बलशाली और बड़े-बड़े नाखूनों के निष्ठुर-चक्र के अगले भाग में, इन्द्र-शत्रु (-हिरण्यकशिपु) के विदीर्ण वक्षः स्थल से प्रवाहित होने वाले शोणित की धारा कश्मीरी चन्दन के लेप से श्वेत हो चुकी है तथा फड़कती हुइ केशर-सटाओं पर मेघवर्णी नीलकमलों की माला सुशोभित है। ४।

(- प्रजापति)

आनन्दमुग्धनयनां श्रियमङ्कभित्तौ
बिभ्रत्पुनातु भवतो भगवान्नृसिंहः।
यस्यावलोकनविलासवशादिवासी-
दुत्सन्नलाच्छनमृगः कमलामुखेन्दुः।।५।।

उमापतिधरस्य।

आनन्द से सम्मोहित नयनों वाली लक्ष्मीजी को (अपनी) गोद में लिए हुए वे भगवान् नृसिंह आपको पवित्र करें, जिन्हें देखने की लालसा से, लक्ष्मी के मुख-चन्द्र ने मानों अपने कलंकचिह्न को भी छोड़ दिया है। (अभिप्राय यह कि लक्ष्मी का मुख पूर्णतया निष्कलंक है)। ५।

(- उमापतिधर)

४३. वामनः

इदं प्रायो लोके न परिचितपूर्वं नयनयो-
र्न याञ्चा यत्पुंसः सुगुणपरिमाणं लघयति।
विशद्भिर्विश्वात्मा स्ववपुषि बलिप्रार्थनकृते
त्रपालीनैरङ्गैर्यदयमभवद्वामनतनुः।।१।।

दङ्कस्य।

४३. वामन[1] (अवतार)

संसार में, आँखें प्रायः इस (तथ्य) से पहले परिचित नहीं थी कि याचना करने से किसी पुरुष के सद्गुणों की मात्रा कम नहीं होती (- अर्थात् वामनावतार से पूर्व प्रायः यही देखा जाता था कि माँगने से किसी व्यक्ति के गुण-गौरव में न्यूनता आ जाती है।) सम्भवतः इसी कारण परमात्मा ने स्वयं ही (याचनाजन्य) लज्जावश अपने शरीर में ही (अपने) अंगों को समाविष्ट करते हुए (दैत्यराज) बलि से प्रार्थना करने के लिए वामनरूप स्वीकार किया। १।

(- दङ्क)

अपसर पृथिवि समुद्राः संवृणुताम्बूनि भूभृतो नमत।
वामनहरिलघुतुन्दे जगतीकलहः स वः पातु।।२।।

भवानन्दस्य।

---

१. विष्णु का यह पञ्चम अवतार है। इसका प्रयोजन दैत्यराज बलि को विनत करना था। गीतगोविन्द में इसका वर्णन यों है- 'छलयति विक्रमणे बलिमद्भुत वामन, पदनखनीरजनितजनपावन, केशवधृत वामनरूप, जय जगदीश हरे !'

अरी वसुन्धरे ! पीछे हटो; समुद्रों ! (अपनी) जलराशि को समेट लो, पर्वतों ! नमन करो। वामनरूपधारी भगवान् विष्णु की छोटी-सी तोंद पर (सम्पन्न) जगती का विभाजन आपकी रक्षा करे। २।

(- भवानन्द)

कुतस्त्वमनु कं स्वतः स्वमिति किं न यत्कस्यचि-
त्किमिच्छसि पदत्रयं ननु भुवा किमित्यल्पया।
द्विजस्य शमिनो मम त्रिभुवनं तदित्याशयो
हरेर्जयति निह्नुतः प्रकटितश्च वक्रोक्तिभिः।।३।।

वाक्पतेः।

(वामनरूपधारी विष्णु और दैत्यराज बलि के मध्य संवाद) 'तुम कहाँ से और किसके पीछे-पीछे (चले) आये हो ?' - 'अपने आप।' 'स्वतः' में 'स्व' से क्या अभिप्राय है ?' - 'जिस किसी का नहीं।' 'क्या चाहते हो ?' - 'केवल तीन पग धरती।' 'इतनी कम भूमि से (भला तुम्हारा) क्या (भला होगा) ?' - 'अरे, मुझ जैसे सन्तोषी ब्राह्मण के लिए यही त्रिभुवन (के सदृश) है।' - इस प्रकार वक्रतायुक्त कथनों से अपने (गुप्त अभिप्राय) को छिपाने वाले भगवान् के द्वारा प्रकट किये गये अभिप्राय की जय हो ! ३।

(- वाक्पति)

पूज्यो ब्रह्मविदां त्वमेव विमलज्ञानैकपात्रं भवा-
न्मद्भाग्येन गतोऽतिथित्वमधुना किं ते त्रिभिर्भूपदैः।
त्रैलोक्यं भवतः स्वमित्युपगतो दैत्येश्वरेणादरा-
ज्ज्ञातोस्मीति सलज्जनम्रवदनः पायाज्जगद्वामनः।।४।।

वसुसेनस्य।

'आप ब्रह्मवेत्ताओं के पूज्य हैं, विमल ज्ञान के एकमात्र अधिष्ठान हैं, यह तो मेरा सौभाग्य है कि आप आज मेरे अतिथि बने हैं। तीन पग मात्र इस भूमि से आपका (भला) क्या (भला) होगा ? (क्योंकि) तीनों लोक आपकी सम्पत्ति हैं' - (इस प्रकार) दैत्यराज बलि के द्वारा आदरपूर्वक कहने पर, 'मैं पहचान लिया गया हूँ' - यह समझकर लज्जित और नतमुख भगवान् वामन संसार की रक्षा करें। ४।

(- वसुसेन)

लक्ष्मीपयोधरोत्सङ्गकुङ्कुमारुणितो हरेः।
बलिरेष स येनास्य भिक्षापात्रीकृतः करः।।५।।

गणाध्यक्षस्य।

यह दैत्यराज बलि ही थे, जिन्होंने भगवान् विष्णु के उस हाथ को भिक्षा-पात्र बना दिया, जो लक्ष्मी के (स्तन) कलशों के कुंकुम से हल्के लाल रंग का है। ५।

(- गणाध्यक्ष)

४४. त्रिविक्रमः

किं छत्रं किं नु रत्नं तिलकमथ तथा कुण्डलं कौस्तुभो वा
चक्रं वा वारिजं वेत्यमरयुवतिभिर्यद्बलिध्वंसिदेहे।
ऊर्ध्वं मौलौ ललाटे श्रवसि हृदि करे नाभिदेशे च दृष्टं
पायात्तद्वोऽर्कबिम्बं स च दनुजरिपुर्वर्द्धमानः क्रमेण।।१।।

श्रीहनूमतः।

४४. त्रिविक्रम

बलि (के गौरव को) विनष्ट करने वाले (विष्णु के) वामन-स्वरूप में, 'छत्र कौन-सा है, तथा रत्न, तिलक, कुण्डल, कौस्तुभ, चक्र और कमल कौन-कहाँ है ?' - (इसका सन्धान करती हुई) देवांगनाओं ने मस्तक के ऊपर, ललाट, कान, हृदय, हाथों और नाभि-स्थानों में जिस सूर्य के (सदृश प्रकाशमान्) बिम्ब को देखा, वे क्रमशः बढ़ते हुए दैत्यारि भगवान् विष्णु आपकी रक्षा करें। १।

(- श्रीहनुमान्)

ज्योतिश्चक्राक्षदण्डः क्षरदमरसरित्पट्टिकाकेतुदण्डः
क्षोणीनौकूपदण्डः शतधृतिभवनाम्भोरुहो नालदण्डः
ब्रह्माण्डच्छत्रदण्डस्त्रिभुवनभवनस्तम्भदण्डोऽङ्घ्रिदण्डः
श्रेयस्त्रैविक्रमस्ते वितरतु विबुधद्वेषिणां कालदण्डः।।२।।

दण्डिनः।

वामन भगवान् का वह चरणकमल दण्ड आप सभी को कल्याण प्रदान करे, जो (सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र प्रभृति) ज्योतिर्मय मण्डल का अक्षदण्ड है, स्वर्ग से प्रवाहित होती

हुई मन्दाकिनी रूपी पताका का ध्वजदण्ड है, पृथिवी रूपी नाव का कूपदण्ड है, प्रजापति के उत्पत्ति-केन्द्र कमल का नालदण्ड है, ब्रह्माण्ड रूपी छत्र का आधारदण्ड है, त्रिभुवनरूपी भवन का आधारस्तम्भभूत दण्ड है, और देवताओं के शत्रु दैत्यों का विनाशक कालदण्ड है'[1]। २।

(- दण्डी)

चञ्चत्पादनखाग्रमण्डलरुचिप्रस्यन्दिगङ्गाजलो
विस्फूर्जद्बलिराज्यनाशपिशुनोत्पाताम्बुवाहद्युतिः।
पातु त्वां चरणो हरेः क्रमविधौ यस्याधिकं द्योतते
दूरादङ्गुलिमुद्रिकामणिरिव स्फारांशुजालो रविः।।३।।

विक्रमादित्यस्य।

भगवान् विष्णु का (वामनावतार) में क्रमशः अधिक (बढ़ता और) चमकता हुआ वह चरण आपकी रक्षा करे, जिसके हिलते हुए नख के कान्तिमान् अग्रभागों से गंगाजल टपकता है, बलि के राज्य-विनाश के सूचक उड़ते हुए मेघों की बिजली कौंधती है। दूर से वह ऐसा लगता है जैसे उँगली में पहनी गई अँगूठी की मणि हो अथवा फैली हुई किरणों से युक्त सूर्य हो। ३।

(- विक्रमादित्य)

यत्काण्डं गगनद्रुमस्य यदपि क्षोणीतडागोदरे
देवस्यैव यशोऽम्बुशोभिनि महायष्टिः प्रतिष्ठाकरी।
तद्विष्णोः पदमन्तरालजलधेराधारतो भूतला-
त्पारं द्यामुपगन्तुमुद्यमवतां सेतूभवत्पातु वः।।४।।

चक्रपाणेः।

भगवान् विष्णु का वह चरण आपकी रक्षा करे, जो आकाशवृक्ष का आधारदण्ड है, भगवान् के कीर्त्ति-जल की शोभा से युक्त पृथिवीरूपी सरोवर में प्रतिष्ठाकारिणी महायष्टि (- बड़ी-सी लाठी) है और समुद्र के मध्य आधार रूप में स्थित रहकर, पृथ्वी से स्वर्ग जाने के लिए उद्योगशील व्यक्तियों के लिए पुल की तरह है। ४।

(- चक्रपाणि)

---

१. दशकुमारचरित के मंगलाचरण के रूप में भी यह पद्य प्राप्त होता है, किन्तु वहाँ इसके प्रथम तीन पादों के क्रम में भिन्नता है। वे इस क्रम में हैं –
'ब्रह्माण्डच्छत्रदण्डः शतधृतिभवनाम्भोरुहो नालदण्डः क्षोणीनौ कूपदण्डः
क्षरदमरसरित्पट्टिकाकेतुदण्डः, ज्योतिश्चक्राक्षदण्डस्त्रिभुवनविजयस्तम्भदण्डोऽङ्घ्रिदण्डः'

खर्वग्रन्थिविमुक्तसन्धिविकसद्वक्षःस्फुरत्कौस्तुभं
निर्यन्नाभिसरोजकुड्मलकुटीगम्भीरसामध्वनि।
पात्रावाप्तिसमुत्सुकेन बलिना सानन्दमालोकितं
पायाद्वः क्रमवर्धमानमहिमाश्चर्यं मुरारेर्वपुः।।५।।

वाक्पतिराजस्य।

(वामनावतार में) मुरारि भगवान् विष्णु का, क्रमशः बढ़ते हुए बड़प्पन और आश्चर्य से युक्त वह शरीर आपकी रक्षा करे, जिसकी ठिगनेपन की गाँठों के खुले जोड़ों से फैलते हुए वक्षःस्थल पर कौस्तुभमणि देदीप्यमान् हो रही (थी) और नाभि से आविर्भूत कमल-कलिका में (विराजमान ब्रह्मा जी के मुख से) गम्भीर स्वर में साम-गान की ध्वनि निकल रही थी। (दान देने के लिए समुचित) पात्र की प्राप्ति से अत्यन्त उत्कण्ठित दैत्यराज बलि उसे प्रसन्नतापूर्वक निहार रहे थे। ५।

(- वाक्पतिराज)

४५. परशुरामः

दिङ्मातङ्गघटाविभक्तचतुराघाटा मही साध्यते
सिद्धा सापि वदन्त एव हि वयं रोमाञ्चिताः पश्यत।
विप्राय प्रतिपाद्यते किमपरं रामाय तस्मै नमो
यत्रैवाविरभूत्कथाद्‌भुतमिदं तत्रैव चास्तं गतम्।।१।।

केशटस्य।

४५. परशुराम

दिग्गजों के समूहों के द्वारा विभाजित चार सीमाओं वाली भूमि, वह भी (कृषि-हेतु) तैयार भूमि, (जीत) ली गई'-यह कहते हुए, देखो, हमें रोमांच हो रहा है। वह भूमि ब्राह्मणों को दे दी जाये- (इससे बढ़कर) और क्या (समुचित कार्य हो सकता है !)' - (यह सोचकर ब्राह्मणों को समस्त जीती हुई) भूमि का दान करने वाले भगवान् परशुराम को नमस्कार है। यह आख्यान जहाँ से प्रारम्भ हुआ था, वहीं समाप्त भी हो गया ! (अर्थात् परशुराम के बाद किसी ने भी इतनी भूमि ब्राह्मणों को दान नहीं की)। १।

(- केशट)

हा तातेति न जल्पितं न रुदितं न स्वीकृतं तद्धनं
न स्नातं न च वीक्षितः परिजनः पित्रे न दत्तं जलम्।
यावन्न क्रकचाभिघातविगलद्दाम्नामरीणामसृ-
ग्गण्डूषैर्घनघोरघर्घररवाः सन्तर्पिताः फेरवः।।२।।

तस्यैव।

जब तक आरे (- फरसे) के आघात से विगलित होती हुई कतारों वाले शत्रुओं के अपार शोणित से, प्रचण्ड ध्वनि करते हुए गीदड़ों को भलीभाँति तृप्त नहीं कर दिया गया, तब तक 'हाय पिताजी ! हाय पिताजी !' कहते हुए परशुराम ने न प्रलाप किया, न विलाप किया, न पिता के धन को स्वीकार किया, न स्नान किया, न परिवार को देखा और न पिता को जलाञ्जलि ही दी। २।

(- वही)

शौर्यं शत्रुकुलक्षयावधि यशो ब्रह्माण्डखण्डावधि
त्यागः सप्तसमुद्रमुद्रितमहीनिर्व्याजदानावधिः।
वीर्यं यत्तु गिरां न तत्पथि ननु व्यक्तं हि तत्कर्मभिः
सत्यं ब्रह्मतपोनिधेर्भगवतः किं किं न लोकोत्तरम्।।३।।

भवभूतेः।

भगवान् परशुराम का, शत्रु-कुलों के समाप्त होने तक का शौर्य, समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त यश, सात समुद्रों से परिवेष्टित वसुन्धरा का अहैतुक त्याग, वाणी के स्थान पर कर्मों से प्रकट पराक्रम और सत्य तथा ब्रह्मतेज (- ये सभी तो अलौकिक हैं। उनके सन्दर्भ में) कुछ भी तो ऐसा नहीं है, जो अलौकिक न हो ! ३।

(- भवभूति)

गोत्राचारविशेषपारगतया वृद्धाभिरादिष्टया
मात्रा वस्तुषु तेषु तेषु विषदन्यस्तेषु दृष्टेः पुरः।
अन्नप्राशनवासरे सरभसं वक्षोभरोत्सर्पिणा
येनात्तं धनुरीक्षिताश्च झटिति क्षत्रावतंसा दिशः।।४।।

केशटस्य।

अन्नप्राशन के अवसर पर, (अपने) कुलाचार की परम्परा में पारंगत (परिवार की) वृद्धा स्त्रियों के द्वारा निर्दिष्ट माँ के द्वारा सामने स्पष्ट रूप से रखी गई विभिन्न वस्तुओं

में से (कुछ भी न लेकर भगवान् परशुराम ने) सीना ताने हुए वेगपूर्वक आगे बढ़कर धनुष को उठा लिया और तत्काल (ही) क्षत्राभूषणों से मण्डित दिशाओं को (भी) देख लिया। (अभिप्राय यह कि परशुराम ने अन्नप्राशन के अवसर पर ही धनुष को उठाकर अपने भावी संघर्षमय पथ का वरण कर लिया था। ४।)

(- केशट)

त्रिःसप्तावधि बाधिता क्षितिभुजामाजन्म वैखानसः
कर्ता मातृवधैनसः स सकलश्रुत्यर्थवीथीगुरुः।
विश्वस्याश्च भुवः क्रतौ वितरिता श्यामाकमुष्टिंपचो
रामः सोऽयमुदग्रगेयमहिमा कासां गिरां गोचरः।।५।।

कस्यचित्।

जिन्होंने इक्कीस बार क्षत्रियों को पीड़ित किया, जो आजन्म ब्रह्मचारी रहे, जिन्हें मातृ-वध का पाप लगा, जो समस्त वेदों के अर्थज्ञ रहे, जिन्होंने यज्ञ में समस्त भूमि ब्राह्मणों को बाँट दी, फिर भी मुट्ठीभर साँवाँ ही जिनका आहार रहा- उन भगवान् परशुराम की उच्चतर से गेय महिमा को (पूर्णतया) कौन देख, (जान और समझ) सकता है ? ५।

(- अज्ञात कवि)

४६. श्रीरामः

शौर्योत्कर्षतृणीकृतत्रिभुवनो लङ्कापतिः सोभव-
त्कारायामुपवासयन्विजयते तं हेलया हैहयः।
लीलालूनविशालतद्भुजवनोभूज्जामदग्न्यस्तत-
स्तज्जेता जनकात्मजापरिवृढो रामः कथं वर्ण्यताम्।।१।।

४६. श्रीराम

लंकाधीश रावण ने (अपनी) वीरता के उत्कर्ष से तीनों लोकों को तिनके की तरह (क्षुद्र) बना दिया था। उस रावण को अनायास पकड़कर कार्त्तवीर्य अर्जुन ने कारागृह में भूखा रखा था। जिन जमदग्नि-नन्दन (भगवान् परशुराम) ने उस कार्त्तवीर्य अर्जुन की (हजार) भुजाओं के जंगल को खेल-खेल में ही काट डाला था, उन (परशुराम) पर भी सीतापति श्रीराम ने विजय पाई। ऐसे श्रीराम का (किन शब्दों में और) किस प्रकार वर्णन किया जाये ? १।

रामः कस्य न विस्मयाय मनसो निःशङ्कलङ्केश्वर-
त्रुट्यन्मौलिसिरासमुच्छलदसृग्धारानुबन्धेन यः।
तद्दोर्विक्रमविद्रुताःदशदिशो भोगाय भूमण्डले
सम्यग्वासयितुं प्रवालघटिता यष्टीरुदस्तम्भयत्।।२।।

दक्षस्य।

(वे) भगवान् श्रीराम किसके मन में आश्चर्य नहीं उत्पन्न करते जिन्होंने निःशंक रूप से लंकाधीश (रावण) के कटे हुए मस्तक की शिराओं से अजस्र प्रवाहित शोणितधारा के माध्यम से, रावण के भुज-पराक्रम से विचलित दसों दिशाओं को, पुनः (जीवन) - भोग-हेतु भूमण्डल पर भलीभाँति बसाने के लिए मूँगे (अथवा नवपल्लव) युक्त स्तम्भ ऊपर उठाये थे। २।

(- दक्ष)

मार्त्तण्डैककुलप्रकाण्डतिलकस्त्रैलोक्यरक्षामणि-
र्विश्वामित्रमहामुनेर्निरुपधिः शिष्यो रघुग्रामणीः।
रामस्ताडितताडकः किमपरं प्रत्यक्षनारायणः
कौशल्यानयनोत्सवो विजयते भूकश्यपस्यात्मजः।।३।।

राजशेखरस्य।

उन भगवान् श्रीराम की जय हो, जो सूर्यवंश के सर्वोन्नत तिलक हैं, तीनों लोकों की रक्षा-मणि हैं, महामुनि विश्वामित्र के निश्छल शिष्य हैं, रघुवंश के मुखिया हैं, ताडका को ताड़ित करने वाले हैं, अधिक क्या (कहा जाये ? - वे) प्रत्यक्ष नारायण हैं, माता कौशल्या के नयनों को आनन्द प्रदान करने वाले हैं और पृथ्वी के प्रजापति (महाराज दशरथ) के पुत्र हैं। ३।

(- राजशेखर)

रामो नूनमयं निशाचरचमूकालाग्निरुद्रोपमो
निःसन्देहमयं च विक्रमनिधिः सौमित्रिरस्यानुजः।
वारंवारमपाङ्गभागचलितैर्यद्दृष्टिपातैरियं
लङ्काभर्तुरनकिनी पितृपतेः पाशैरिवाबध्यते।।४।।

श्रीमित्रस्य।

भगवान् श्रीराम निशाचरों की सेना का, अग्नि और रुद्र की तरह विनाश करने वाले हैं, उनके अनुज सुमित्रानन्दन लक्ष्मण भी निःसन्देह महापराक्रमी हैं। उनके द्वारा बारम्बार नेत्र-कोण के संचालन से (समुत्पन्न) दृष्टिपातों से लंकेश रावण की सेना मानों यमराज के पाशों से बाँधी जा रही है। ४।

(- श्रीमित्र)

रामोऽसौ भुवनेषु विक्रमगुणैर्यातः प्रसिद्धिं परा-
मस्मद्भाग्यविपर्ययाद्यदि परं देवो न जानाति तम्।
वन्दीवैष यशांसि गायति मरुद्यस्यैकबाणाहति-
श्रेणीभूतविशालशालविवरोद्गीर्णैः शरैः सप्तभिः।।५।।

विशाखदत्तस्य।

भगवान् श्रीराम तीनों लोकों में अपने पराक्रमजन्य गुणों से अत्यन्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। यह हमारे भाग्य की विपरीतता है, जो श्रीमान् उनकी उस (कीर्त्ति) से अपरिचित हैं। उनके द्वारा एक ही बाण से आहत विशाल शालवृक्षों की पँक्ति ऐसी लगती थी, जैसे उसमें सात-सात बाण धँस गये हों ! पवन उनकी यशोराशि का गान चारणभाटों की तरह करता है। ५।

(- विशाखदत्त)

४७. विरहिश्रीरामः

सरसि विरसः प्रस्थे दुस्थो लतासु गतादरः
प्रतिपरिसरं भ्रान्तोद्भ्रान्तः सरित्सु निरुत्सुकः।
दददपि दृशौ कुञ्जे कुञ्जे रुदन्नुपनिर्झरं
सुचिरविरहक्षामो रामो न कैरनुरुध्यते।।१।।

वासुदेवज्योतिषः।

४७. विरहपीड़ित श्रीराम

भगवती सीता के सुदीर्घ विरह में अत्यन्त दुर्बल हो गये श्रीराम को सरोवरों में आनन्द नहीं मिलता, (उन्हें छोड़कर वे) आगे बढ़ जाते हैं। लताएँ भी (अब) उन्हें आकर्षित नहीं करतीं। हर स्थान पर भटकते-भटकते वे विक्षिप्त- से हो गये हैं, सरिताओं में (भी) उनकी उत्सुकता नहीं रह गई है। झरनों के समीप कुंजों पर दृष्टि डालते ही वे रोने लगते

हैं। (ऐसे रोते हुए) राम अपने साथ-साथ इस समय किसे नहीं रुलाते ? ।

(- वासुदेव ज्योतिष)

निष्पन्दं गिरिकन्दरेषु विपिनच्छायासु मूर्च्छालसं
सास्रं पञ्चवटीतटीषु तटिनीतीरेषु तीव्रव्यथम्।
काकुत्स्थं तदवस्थमाधिविधुरं दृष्ट्वा तडिद्व्याजतो
मन्ये मन्युभरैरभेदि हृदयं गाढं घनानामपि।।२।।

वसुरथस्य।

बढ़ी हुई विरह-व्यथा से पीड़ित श्रीराम को गिरिकन्दराओं में स्पन्दनहीन, अरण्य की छाया में बेहोशी से अलसाये, पंचवटी के तटों पर अश्रुयुक्त और नदियों के किनारे व्यथा-विह्वल देखकर (लोगों में इतना क्रोध उत्पन्न हुआ कि उन्होंने) क्रोध में भरकर मेघों के सघन हृदय को भी विदीर्ण कर दिया। (कौंधती हुई) विद्युत् (मेघों के उसी हृदय-विदारण की) अभिव्यंजिका है। २।

(- वसुरथ)

अनुदिनमनुशैलं तामनालोक्य सीतां
प्रतिदिनमतिदीनं वीक्ष्य रामं विरामम्।
गिरिरशनिमयोऽयं यस्तदा न द्विधाभूत्-
क्षितिरपि न विदीर्णा सापि सर्वंसहैव।।३।।

शोभाकरस्य।

प्रतिदिन पर्वत-पर्वत पर भटकते हुए श्रीराम सीता को न देखकर इतने दीन-हीन और निरानन्द हो गये हैं कि उन्हें देखकर भी यदि पर्वतों के टुकड़े नहीं होते, तो निश्चित ही वे वज्र से बने हैं। (और पृथिवी को क्या कहा जाये-) वह भी नहीं फटती, क्योंकि वह तो 'सर्वंसहा' (- सब कुछ सहने वाली-) है ही। ३।

(- शोभाकर)

कोहं वत्स स आर्य एव भगवानार्यः स को राघवः
के यूयं वत नाथ नाथ किमिदं भृत्योऽस्मि ते लक्ष्मणः।
कान्तारे किमिहास्महे वत वृथा देव्या गतिर्मृग्यते
का देवी जनकाधिराजतनया हा जानकि क्वासि मे।।४।।

कस्यचित्।

(विरहविदग्ध श्रीराम का लक्ष्मण से प्रश्न-) 'वत्स ! मैं कौन हूँ ?' (लक्ष्मण -) 'आप पूर्ववत् मेरे पूज्य और श्रेष्ठ पुरुष हैं।' (राम-) 'वह श्रेष्ठ पुरुष कौन हैं ?' (लक्ष्मण-) – 'रघुवंश के श्रीराम।' (राम-) 'और तुम लोग कौन हो?' (लक्ष्मण -) 'मैं आपका सेवक लक्ष्मण हूँ।' (राम -) ' इस जंगल में हम व्यर्थ क्यों भटक रहे हैं ? (लक्ष्मण -) 'देवी (सीता) की खोज कर रहे हैं।' (राम -) 'क्या (कहा) ? जनकनन्दिनी सीता की ? अरे, जानकी ! तुम कहाँ हो ?'। ४।

(– अज्ञातकवि)

कूजन् कुञ्जे किमपि करुणं कन्दरे कान्दिशीकः
सानौ शून्यप्रणिहितमनाः कानने ध्याननेत्रः।
गच्छन् मूर्च्छां कुसुमशयने वीतरागस्तडागे
जीयाज्जायाविरहविदुषां ग्रामणी रामभद्रः।।५।।

आचार्यगोपीकस्य।

कुञ्ज-कुञ्ज में करुण क्रन्दन करते हुए, कन्दराओं में दिशाहीन (भटकते हुए), पर्वत-शिखरों पर खोये-खोये, वनों में टकटकी लगाकर ताकते हुए, पुष्प-शैय्या पर बेहोश हो जाते हुए, सरोवरों में विरक्त तथा विरहतत्त्व के प्रमुख मर्मज्ञ भगवान् श्रीराम की जय हो। ५।

(– आचार्य गोपीक)

४८. हलधरः

सुरापीतो गोत्रस्खलनपरिवृद्धाधिकरुषः
प्रसादं रेवत्या जनयितुमनीशः कथमपि।
विचुम्बन् संश्लिष्यन् स्तनवसनमस्यन्नविरतं
मधून्मादाविष्टं स किल बलरामो विजयते।।१।।

लक्ष्मीधरस्य।

४८. हलधर (बलराम)

उन बलराम जी की जय हो, जिन्होंने मद्य-पान किया है। गहरे नशे के कारण नामोच्चाण में लड़खड़ा रहे हैं और इस कारण उनका रोष और भी बढ़ गया है। (अपनी) पत्नी रेवती को वे किसी भी प्रकार प्रसन्न नहीं कर पा रहे है। (कभी) उसे वे चूमते हैं

और (कभी) आलिङ्गन में बाँधते हैं, तथा कभी उसके स्तनों के वस्त्रों को हटाने लगते हैं। १।

(- लक्ष्मीधर)

आघूर्णद्वपुषः स्खलन्मृदुगिरः किञ्चिल्लसद्वाससो
रेवत्यंसनिषण्णनिःसहभुजस्याताम्रनेत्रद्युतेः।
श्वासामोदमदान्धषट्पदकुलव्यादष्टकण्ठस्रजः
पायासुः परिमन्थराणि बलिनो मत्तस्य यातानि वः।।२।।

कोकस्य।

चक्कर खाते हुए शरीर वाले, लड़खड़ाती हुई कोमल वाणी वाले, थोड़ा-थोड़ा कपड़ों को लहराते हुए, रेवती के कन्धे पर हाथ को मजबूती से रखे हुए, कुछ-कुछ लाल-लाल आँखों वाले, और उन्मादग्रस्त उन बलराम जी की मन्द-मन्द गतियाँ आपकी रक्षा करें, जिनकी श्वास की सुगन्धित से आकृष्ट होकर मतवाले भौंरे उनके गले में पड़ी मालाओं को काट रहे हैं। २।

(- कोक)

भभभ्रमति मेदिनी लललम्बते चन्द्रमाः
कृकृष्ण ववदद्रुतं हहहसन्ति किं वृष्णयः।
शिशीधु मुमुमुञ्च मे पपपपानपात्रे स्थितं
मदस्खलितमालपन् हलधरः श्रियं वः क्रियात्।।३।।

पुरुषोत्तमदेवस्य।

धरती घू-घू-धूम रही है, चन्द्रमा ल-ल-लटक रहा है, कृ-कृ-कृष्ण ! जल्दी ब - ब - बोलो। (ये) वृष्णिवंशी (मुझ पर) क्यों हँ-हँ-हँस रहे हैं ? प - प- पानपात्र में रखी म-म-मदिरा को उँड़ेल दो' - इस प्रकार नशे में लड़खड़ाते हुए बोलने वाले हलधर बलराम जी आपको शोभा और समृद्धि प्रदान करें। ३।

(- पुरुषोत्तमदेव)

रेवतीवदनोच्छिष्टपरिपूतपुटे दृशौ।
वहन् हली मदक्षीवः पानगोष्ठ्यां पुनातु वः।।४।।

माघभोजदेवयोः।

पानगोष्ठी में नशे से उन्मत्त (वे) हलधर बलरामजी आपको पवित्र करें, जिनकी आँखों की पलकें रेवती के मुख के उच्छिष्ट (जूँठन) से पवित्र हैं। ४।

(- माघ और भोजदेव)

भ्रमति धरणीचक्रं चक्रे नभस्तलयन्त्रणात्
प्रभवति न मे गात्रं किञ्चित्क्रियासु विघूर्णते।
जलधिसलिले मग्नं विश्वं विलोकय रेवति
त्रिजगदवताज्जल्पन्नेवं हली मदविह्वलः।।५।।

माधवस्य।

'गगन-तल पर नियन्त्रित होने से (यह) धरती (अपने) चक्र पर घूम रही है, मेरा शरीर नहीं सँभल रहा है। किसी (भी) काम को करते समय (शरीर) चकराने लगता है। अरी रेवती ! देखो, समुद्र के जल में संसार डूबता जा रहा है-' इस प्रकार नशे में (अनर्गल) प्रलाप करते हुए बलराम जी तीनों लोकों की रक्षा करें। ५।

(- माधव)

४६. बुद्धः

कामक्रोधौ द्वयमपि यदि प्रत्यनीकं प्रसिद्धं
हत्वानङ्गं किमिव हि रुषा साधितं त्र्यम्बकेन।
यस्तु क्षान्त्या शमयति शतं मन्मथादीनरातीन्
कल्याणं वो दिशतु स मुनिग्रामणीरर्कबन्धुः।।१।।

सङ्घश्रियः।

४६. (भगवान्) बुद्ध[1]

काम और क्रोध- ये दोनों ही (जब आज भी हमारे) विख्यात शत्रु हैं तो क्रोध में कामदेव को जलाकर त्र्यम्बकेश्वर शिव ने कौन-सा (चमत्कार) कर दिया ? कामादि सैकड़ों शत्रुओं को क्षमा से शान्त करने में जो समर्थ हैं, वे मुनि श्रेष्ठ, सूर्यवंशी (भगवान् बुद्ध) आपका कल्याण करें। १।

(- संघश्री)

---

१. भगवान् विष्णु के अब तक हुए अवतारों में यह अन्तिम है। दशावतारों में यह नवम है संकल्प में प्रतिदिन 'बौद्धावतारे' का ही उल्लेख होता है। गीतगोविन्द से ज्ञात होता है कि (यज्ञादि में) पशु-हिंसा की विपुल प्रवृत्ति का अवलोकन कर जीव, दया और करुणा से प्रेरित होकर भगवान् ने यह अवतार धारण किया- 'निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम् सदय हृदय दर्शित पशु-घातम्, केशव ! धृतबुद्धशरीर ! जय जगदीश हरे !'

पादाम्भोजसमीपसन्निपतितस्वर्णाथदेहस्फुर-
न्नेत्रस्तोमतया परिस्फुटमिलन्नीलाब्जपूजाविधिः।
वन्दारुत्रिदशौघरत्नमुकुटोत्सर्पत्प्रभापल्लव-
प्रत्युन्मीलदपूर्वचीवरपटः शाक्यो मुनिः पातु वः।।२।।

वसुकल्पस्य।

वे शाक्य मुनि (- भगवान् बुद्ध) आपकी रक्षा करें, जिनके चरण-कमलों के समीप पड़े हुए स्वर्णिम शरीरों के प्रफुल्लित नेत्र-समूहों से ऐसा प्रतीत होता है, जैसे (बुद्ध के चरणों की) पूजा पूर्ण विकसित नीलकमलों से की जा रही हो ! श्रद्धालु देववृन्द के रत्नमुकुटों के झिलमिलाते प्रकाश से निष्पन्न उनका चीवर अस्त्र भी अपूर्व ही है। २।

(- वसुकल्प)

कारुण्यामृतकन्दलीसुमनसः प्रज्ञावधूमौक्तिक-
ग्रीवालङ्करणश्रियः शमसरित्पूरोच्छलच्छीकराः।
ते मौलौ भवतां भवन्तु जगतीराज्याभिषेकोचित-
स्रग्भेदा अभयप्रदानचरणप्रेङ्कन्नखाग्रांशवः।।३।।

श्रीधरनन्दिनः।

अभय-प्रदान-हेतु, (भगवान् बुद्ध के) हिलते हुए चरण-नखों के अग्रभाग की वे किरणें आपके मस्तक पर विराजें, जो करुणारूपी अमृतकन्दली के पुष्पों से युक्त हैं, प्रज्ञारूपी स्त्री के मुक्ताजटित कण्ठहार की शोभा से सम्पन्न हैं, शान्तिरूपी नदी के जल-प्रवाह के उछलते हुए जल-कणों से समन्वित हैं और संसार-राज्य के अभिषेक-हेतु (प्रस्तुत) माला रूप हैं। ३।

(- श्रीधरनन्दी)

शीलाम्भःपरिषेकशीतलदृढध्यानालवालस्फुर-
द्धानस्कन्धमहोन्नतिः पृथुतरप्रज्ञोल्लसत्पल्लवः।
देयात्तुभ्यमवार्यवीर्यविटपः क्षान्तिप्रसूनोद्गमः
सुच्छायः षडभिज्ञकल्पविटपी सम्बोधबीजं फलम्।।४।।

तस्यैव।

आपको छह तत्त्वों के ज्ञान की शाखाओं वाला तथा अमोध शक्तिसम्पन्न वह वृक्ष सम्यग्ज्ञानरूपी फल प्रदान करे, जिसे शील के जल से सींच कर शीतल रखा जाता है, सुदृढ़

ध्यान के आलवाल में पल्लवित किया जाता है, दान के तने के सहारे जो बढ़ता है, निरन्तर विकसित हो रही प्रज्ञा के पत्ते जिसमें लहलहाते हैं तथा क्षमा के फूल खिलते हैं। ४।

(- वही)

यदाख्यानासङ्गादुषसि पुनते वाचमृषयो
यदीयः सङ्कल्पो हृदि सुकृतिनामेव रमते।
स सार्वः सर्वज्ञः पथि निरपवादे कृतपदो
जिनो जन्तूनुच्चैर्दमयतु भवावर्तपतितान्।।५।।

मङ्गलस्य।

जिनके आख्यान-सेवन (- पवित्र कथाओं के स्मरण और कथन-) से ऋषिगण (प्रतिदिन) उषः काल में अपनी वाणी को पवित्र करते हैं, जिनका शुभ संकल्प पुण्यात्माओं के हृदय में रमता है, प्रशस्त मार्ग पर चलने वाले सर्वज्ञ तीर्थङ्कर (जिन) भव (-सागर) के चक्र में पड़े हुए लोगों को सुदृढ़ रूप से नियन्त्रित करें। ५।

(- मङ्गल)

५०. कल्की

भ्रान्त्वा महीं तत इतस्तुरगाधिरूढो
वेदद्विषो विदलयन्दलिताखिलाशः।
देवो निवर्तितकलिः कृतमार्गदर्शी
कल्कं स ते हरतु कल्किकुले भविष्यन्।।१।।

कस्यचित्।

५०. कल्कि (अवतार)

भविष्य में, कल्कि-कुल में (उत्पन्न) होने वाले, (वे भगवान् विष्णु) आपके पाप का हरण करें, जो पृथ्वी पर, अश्वारोहण करके, इधर से उधर विचरण करते हुए, वेद-विरोधियों को कुचल देंगे। उनका आवागमन सभी दिशाओं में होगा। (उनके प्रयत्न से) कलि (युग के दोष) समाप्त हो जायेंगे और सत्य मार्ग दिखने लगेगा। १।

(- अज्ञात कवि)

वामनादणुतमादनु जीयास्त्वं त्रिविक्रमतनुभृतदिक्कः।
वीतहिंसनपथादथ बुद्धात्कल्किताहतसमस्त नमस्ते।।२।।

श्रीहर्षस्य।

हे त्रिविक्रम स्वरूप से (समस्त) दिशाओं को व्याप्त कर लेने वाले कल्कि ! आप सक्ष्मतम वामन शरीर (-अवतार-) के पश्चात् सर्वोत्कृष्ट हैं। हिंसामार्ग का परित्याग कर देने वाले बुद्ध से लेकर कल्कि-स्वरूप तक सभी (अवतारों) का समावेश करने वाले (हे कल्कि !) आपको नमस्कार है। २।

(- हर्ष)

कल्की कल्कं हरतु जगतः स्फूर्जदुर्जस्वितेजा
वेदोच्छेदस्फुरितदुरितध्वंसने धूमकेतुः।
येनोत्क्षिप्य क्षणमसिलतां धूमवत्कल्मषेच्छान्
म्लेच्छान् हत्वा दलितकलिनाकारि सत्यावतारः।।३।।

जयदेवस्य।

वे भगवान् कल्कि जगत् का मालिन्य-हरण करें, जो चमकते हुए ऊर्जस्वित तेज से संवलित हैं, वेदोच्छेदनजन्य पाप का विनाश करने में घूमकेतु (के सदृश) हैं; जिन्होंने क्षण में तलवार को ऊपर उठाकर धुएँ की तरह व्याप्त मलिन इच्छाओं वाले म्लेच्छों को मारकर कलियुग के दोषों का दलन करते हुए सत्य का अवतरण कराया। ३।

(- जयदेव)

आघ्राणश्रवणावलोकनरसास्वादादयश्चुम्बन-
श्रद्धा वाग्विषवर्षणं च शिरसो दोषा इमे यैर्जनः।
मूढो लङ्घितसत्पथोयमिति संक्रुद्धः शठानां हठाद्
यः शीर्षाणि कृपाणपाणिरलुनात्तस्मै नमः क्ल्किने।।४।।

कुलदेवस्य।

उन कल्कि (भगवान्) को नमस्कार है, जिन्होंने क्रोध से तलवार लेकर, आघ्राण-श्रवण-अवलोकन- रसास्वादन- चुम्बन और वाणी के द्वारा विषवर्षा प्रभृति मानसिक दोषों से ग्रस्त होकर सन्मार्ग का उल्लंघन करने वाले हठीले दुष्टों के शिरों को काट दिया। ४।

(- कुलदेव)

तीर्थानां शतमस्ति किं तु फलति श्रद्धाभरादित्यसे-
र्धारातीर्थमपूर्वमेव कलयन् कल्की शिवायास्तु वः।
यत्प्राप्याखिलवेदभेदकधियः श्रद्धातिरस्कारिणः
शक्रस्यातिथयो भवन्ति भवनेष्वेनस्विनो जन्तवः।।५।।

कस्यचित्।

तीर्थ तो सैकड़ों हैं, किन्तु (उनमें जाने का) फल तभी मिलता है, जब (मन में) श्रद्धाभाव हो- (यह सोचकर) तलवार की धारारूपी अपूर्वतीर्थ का विधान करते हुए भगवान् कल्कि आपका कल्याण करें। कल्कि को पाकर, वेदों में भेद (भाव) की बुद्धि वाले, श्रद्धा का तिरस्कार करने वाले और पापी प्राणी (भी) स्वर्ग पहुँच जाते हैं। ५।

(- अज्ञातकवि)

५१. कृष्णशैशवम्

कृष्णेनाद्य गतेन रन्तुमनसा मृद्भक्षिता स्वेच्छया
सत्यं कृष्ण क एवमाह मुसली मिथ्याम्ब पश्याननम्।
व्यादेहीति विदारिते शिशुमुखे दृष्ट्वा समस्तं जग-
न्माता यस्य जगाम विस्मयपदं पायात्स वः केशवः।।१।।

कस्यचित्।

५१. कृष्ण का शैशव

'खेलने के लिए गये कृष्ण ने अपनी इच्छा से आज मिट्टी खा ली'- (कृष्ण के विषय में यह सुनकर माता यशोदा ने कृष्ण से पूछा -) 'कृष्ण ! क्या यह (शिकायत) सच है ?' (कृष्ण ने माँ से प्रतिप्रश्न किया-)' किसने ऐसी (बात) कही ?' (यशोदा-) 'बलराम ने।' (कृष्ण-) 'माँ ! यह बात झूठी है। तुम (चाहो, तो मेरा) मुँह देख लो।' (माँ -) '- खोलो।' (माँ के इस निर्देश पर कृष्ण के द्वारा अपने शिशु-) मुख के खोलते ही उसमें स्थित समस्त संसार को देखकर माँ आश्चर्य में पड़ गई। ऐसे कृष्ण आपकी रक्षा करें। १।

(-अज्ञातकवि)

लीलोत्तानशयोऽपि गोपनिवहैरुद्गीयमानेष्वति-
प्रौढप्रौढमुरारिविक्रमकथागीतेषु दत्तश्रवाः।

कस्मिंश्चित्क्षुभितः कुतोऽपि चलितः कुत्रापि रोमाञ्चितः
क्वापि प्रस्फुरितः कुतोऽपि हसितप्राप्तो हरिः पातु वः।।२।।

महीधरस्य।

गोप-समूह (जिस समय विष्णु के) मुरदैत्य के संहारादि (पराक्रमों) की बड़ी-बड़ी कथाएँ गा-गाकर कह रहे थे, (उस समय) लीलावश हाथ उठाये और कान लगाये हुए कृष्ण किसी प्रसंग पर झुँझला उठे, किसी पर (उठकर) जाने लगे, किसी पर रोमाञ्चित हो उठे, किसी पर फड़क उठे और किसी पर हँसने लगे। ऐसे कृष्ण आपकी रक्षा करें। २।

(- महीधर)

न्यञ्चन्नुदञ्चन् बहुशः कथञ्चिदुदञ्चितो वेपथुमान् हरिर्वः।
देवोऽसि देवोऽसि सपाणितालं यशोदयोक्तः प्रहसन् पुनातु।।३।।

कस्यचित्।

मुँह के बल लेटे हुए, उत्तराभिमुख होते हुए, जैसे-तैसे ऊपर उठते हुए थरथराते हुए कृष्ण से जब यशोदा ने कहा कि 'तुम (तो) भगवान् हो, भगवान् !' - तब वे तालियाँ बजा-बजाकर हँसने लगे। ऐसे हँसते हुए कृष्ण आपको पवित्र करें। ३।

(- अज्ञात कवि)

अधरमधरे कण्ठे कण्ठं सचाटु दृशोर्दृशा-
वलिकमलिके कृत्वा गोपीजनेन ससम्भ्रमम्।
शिशुरिति रुदन् कृष्णो वक्षस्थले निहितोऽचिरा-
न्निभृतपुलकः स्मेरः पायात् स्मरालसविग्रहः।।४।।

दिवाकरदत्तस्य।

अधर में अधर, कण्ठ में कण्ठ, आखों में आँखें और माथे में माथा डालकर, मीठी-मीठी बातें करती हुई गोपियों ने हड़बड़ाकर (कहा कि यह तो) 'बच्चा है !' उस समय वक्षःस्थल पर बिठाये गये, रोते हुए कृष्ण देर तक आनन्द मग्न स्वरूप से प्रसन्न होकर मुस्कराते रहे। ऐसे मुस्कराते हुए कृष्ण (हमारी) रक्षा करें। ४।

(- दिवाकर दत्त)

ब्रूमस्त्वच्चरितं तवाधिजननिच्छद्मोपजाताकृते
त्वं यादृग्गिरिकन्दरेषु नयनानन्दः कुरङ्गीदृशाम्।
इत्युक्तोऽमृतलेहनच्छलतया न्यस्ताङ्गुलिः स्वानने
गोपीभिः पुरतः पुनातु जगतीमुत्तानसुप्तो हरिः।।५।।

वनमालिनः।

'तुम जिस प्रकार, माँ से छिपाकर, पर्वत-कन्दराओं में मृगनयनियों की आँखों को आनन्द प्रदान करते हो, वह (हम लोग) तुम्हारी माँ से कहे देती हैं..' गोपियों के द्वारा यह बात कहने पर, उनके सामने ही (बालक) कृष्ण ने अमृत चाटने के बहाने अपने मुँह पर उँगली रख ली। (उस समय) उतान होकर लेटे हुए कृष्ण संसार को पवित्र करें। ५।

(- वनमाली)

५२. कृष्णकौमारम्

वत्स स्थावरकन्दरेषु विचरंश्चारप्रचारे गवां
हिंस्रान् वीक्ष्य पुरः पुराणपुरुषं नारायणं ध्यास्यसि।
इत्युक्तस्य यशोदया मुररिपोरव्याज्जगन्ति स्फुर-
बिम्बोष्ठद्वयगाढपीडनवशादव्यक्तभावं स्मितम्।।१।।

अभिनन्दस्य।

५२. कृष्ण की कुमारावस्था

'बेटा ! गायों को चराते समय, पर्वतों की गुफाओं में घूमते हुए, सामने हिंसक जन्तुओं को देखकर तुम पुराण-पुरुष भगवान् विष्णु का ध्यान करना-' यशोदा ने (जब) कृष्ण से यह कहा तो वे मुस्कुरा उठे। उनकी मुस्कान में बिम्बाफल (के सदृश) कमनीय दोनों होठों को दबाने से (एक) अव्यक्त भाव की व्यञ्जना हो रही थी। (कृष्ण की वही) मुस्कान संसार की रक्षा करे। १।

(- अभिनन्द)

श्यामोच्चन्द्रा स्वपिषि न शिशो नैति मामम्ब निद्रा
निद्राहेतोः श्रृणु सुत कथां कामपूर्वां कुरुष्व।

रामो नाम क्षितिपतिरभून्माननीयो रघूणा-
मित्युक्तस्य स्मितमवतु वो देवकीनन्दनस्य।।२।।

शतानन्दस्य।

'बेटा ! रात (बहुत हो गई है), देखो, आकाश में चन्द्रमा कितने ऊपर चला गया है, (लेकिन) तुम अभी सोये नहीं!' - 'माँ ! मुझे नींद नहीं आ रही है।' ' तो बेटा ! नींद लाने के लिए एक कहानी सुनो।' - 'माँ ! कोई नई कहानी सुनाओ।' '(बेटा !) रघुवंशियों में राम नाम के एक अत्यन्त आदरणीय सम्राट् थे' - (यशोदा ने जब यह) कहा, तो कृष्ण मुस्कुरा उठे। देवकीनन्दन की वही मुस्कान आपकी रक्षा करे। २।

(- शतानन्द)

मा दूरं व्रज तिष्ठ तिष्ठति पुरस्ते लूनकर्णो वृकः
पोतानत्ति इति प्रपञ्चचतुरोदारा यशोदागिरः।
आकर्ण्योच्छलदच्छहासविकसद्बिम्बाभदन्तच्छद-
द्वन्द्वोदीरितदन्तमौक्तिकमणिः कृष्णः स पुष्णातु वः।।३।।

कस्यचित्।

'बेटा ! दूर मत जाओ, (यहीं पास में) रहो, देखो !, वह सामने कटे कान वाला वृक (नामक दैत्य) खड़ा है। वह बच्चों को खा लेता है।' - यशोदा की ये व्यावहारिक बातें सुनकर, कृष्ण के बिम्बाफल के सदृश कमनीय होठों पर निर्मल हँसी थिरक उठी और होठों के खुलने से मुक्तामणि के सदृश दन्तावली प्रकट हो गई। (ऐसे निर्मल हास्य से युक्त) कृष्ण आपका पोषण करें। ३।

(- अज्ञात कवि)

कालिन्दीपुलिने मया न न मया शैलोपशल्ये न न
न्यग्रोधस्य तले मया न न मया राधापितुः प्राङ्गणे।
दृष्टः कृष्ण इतीरितस्य सभयं गोपैर्यशोदापते-
र्विस्मेरस्य पुरो हसन्निजगृहान्निर्यन् हरिः पातु वः।।४।।

उमापतिधरस्य।

(कृष्ण को खोज-खोजकर खीझे, थके और डरे हुए नन्द बाबा वापस आ गये, लेकिन कृष्ण उन्हें न मिले। अपने घर के सामने खड़े होकर वे कहने लगे -) 'कृष्ण को मैंने न तो यमुना के तट पर, न (गोवर्धन) पर्वत की चोटी पर, न वटवृक्ष के नीचे और ना ही

राधा के बाप के आँगन में ही देखा' - भयभीत होकर नन्द बाबा जब यह कह रहे थे, तभी उन्हें विस्मय में डालते हुए, गोप बालकों के साथ हँसते हुए कृष्ण अपने घर से (ही) निकल पड़े। (वे ही हँसकर घर से निकलते हुए) कृष्ण आपकी रक्षा करें। ४।

(- उमापतिधर)

मन्थानमुज्झ मथितुं दधि न क्षमस्त्वं
बालोऽसि वत्स विरमेति यशोदयोक्तः।
क्षीराब्धिमन्थनविधिस्मृतिजातहासो
वाच्छास्पदं दिशतु वो वसुदेवसूनुः।।५।।

कस्यचित्।

दही मथती हुई यशोदा के हाथ से मथानी छीन कर कृष्ण स्वयं भी दही मथने की जिद करने लगे। यशोदा ने उन्हें मनाते हुए कहा -

'बेटा ! मथानी छोड़ो, तुम अभी बच्चे हो, दही नहीं मथ सकते, रुको' - यशोदा जब कृष्ण से (यह) कह रही थीं, तो कृष्ण को क्षीर सागर-मन्थन की प्रक्रिया याद आ गई और वे मुस्कुरा उठे। (वही) वसुदेवनन्दन कृष्ण आपको अभीष्ट प्रदान करें। ५।

(- अज्ञात कवि)

५३. कृष्णस्वप्नायितम्

शम्भो स्वागतमास्यतामित इतो वामेन पद्मोद्भव
क्रौञ्चारे कुशलं सुखं सुरपते वित्तेश नो दृश्यसे।
इत्थं स्वप्नगतस्य कैटभरिपोः श्रुत्वा यशोदा गिरः
किं किं बालक जल्पसीत्यनुचितं थूथूकृतं पातु वः।।१।।

मयूरस्य।

५३. कृष्ण का सपने देखना

'शिव ! (आओ, तुम्हारा) स्वागत है !, इधर बैठो। ब्रह्मा जी ! तुम इधर बाँयें (बैठो), क्रौञ्चारि कार्त्तिकेय ! (सब) कुशल-मंगल तो है न ? इन्द्र !, कुबेर ! (चलो, अच्छा हुआ), तुम भी हमें दिख गये' - इस प्रकार, (कृष्णरूप में स्थित) भगवान् विष्णु (जब) सपने में बड़बड़ा रहे थे, तो उनकी बातें सुनकर यशोदा ने (मन में) कहा- 'अरे बेटा ! तुम

कैसी-कैसी वाते कह रहे हो !, यह तो ठीक नहीं' - (यह कहकर) उन्होंने जो 'थू-थू' किया' वही थू-थूकार आपकी रक्षा करे। १।

(- मयूर)

धीरा धरित्रि भव भारमवेहि शान्तं
नन्वेष कंसहतकं विनिपातयामि।
इत्यद्भुतस्तिमितगोपवधूश्रुतानि
स्वप्नायितानि वसुदेवशिशोर्जयन्ति।।२।।

अभिनन्दस्य।

'वसुन्धरे ! (थोड़ा) धैर्य रखो, तुम जानती ही हो कि (मुझ पर) काम का (कितना) बोझ है ! (तुम देखती जाओ कि मैं) चुपचाप इस दुष्ट कंस को कैसे मारकर (तुम्हारा बोझ हल्का करता हूँ !)' - स्वप्न में वसुदेवनन्दन के इन विचित्र अलापों की, जिन्हें मुस्कुराती हुई यशोदा ने सुना, जय हो ! २।

(- अभिनन्द)

एते लक्ष्मण जानकीविरहिणं मां खेदयन्त्म्बुदा
मर्माणीव च खण्डयन्त्यलममी क्रूराः कदम्बानिलाः।
इत्थं व्याहृतपूर्व्वजन्मविरहो यो राधया वीक्षितः
सेर्ष्यं शङ्कितया स वः सुखयतु स्वप्नायमानो हरिः।।३।।

शुभाङ्कस्य।

'अरे लक्ष्मण ! जानकी के वियोग में पहले से ही (व्याकुल) मुझे ये जलद बहुत कष्ट दे रहे हैं। (ऊपर से) ये कादम्बी पवन (के झोंके) तो मानों मेरे हृदय को चीरे ही डाल रहे हैं' - स्वप्न में, इस प्रकार (कृष्ण को) पूर्वजन्म के विरह का स्मरण करते हुए देखकर राधिका जी ईर्ष्या और आशंका से भर उठीं। स्वप्न देखते हुए (यही) कृष्ण आपको सुखी करें। ३।

(- शुभाङ्क)

---

१. बच्चों के अमंगल की संभावना को शान्त करने के लिए भारतीय परिवारों में माताएँ बच्चों के हाथ पर 'थू-थू' करती हैं।- अनु.,

कालिन्दीपुलिनान्तवञ्जुललताकुञ्जे कुतश्चित्क्रमा-
त्सुप्तस्यैव मिथः कथाजुषि शनैः संवाहिकामण्डले।
वैदेहीं दशकन्धरोऽपहरतीत्याकर्ण्य कंसद्विषो-
हुं हुं वत्स धनुर्धनुर्धनुरिति व्यग्रा गिरः पान्तु वः।।४।।

विरिञ्चेः।

यमुना के तट पर, बेंत के लता-कुञ्ज में, कभी (कहानियाँ सुनाते-सुनाते और पैर दबवाते-दबवाते ही) कृष्ण सो गये। पैर दबाने वाली (गोपियाँ) भी धीरे-धीरे (आपस में) बातें करने लगीं। इसी बीच कृष्ण (स्वप्न में) 'रावण सीता का अपहरण करा रहा है'- यह सुनते ही व्याकुल होकर बोल उठे - 'हुँ हुँ, बेटा (लक्ष्मण) ! धनुष (लाओ), धनुष !' - स्वप्न में, व्याकुलता पूर्वक कहे गये, कृष्ण के ये वचन आपकी रक्षा करें। ४।

निर्मग्नेन मयाम्भसि स्मरभयादाली समालिङ्गिता
केनालीकमिदं तवाद्य कथितं राधे मुधा ताम्यसि।
इत्थं स्वप्नपरम्परासु शयने श्रुत्वा गिरं शार्ङ्गिणः
सव्याजं शिथिलीकृतः कमलया कण्ठग्रहः पातु वः।।५।।

कस्यचित्।

''पानी में डूबते हुए मैंने कामदेव के भय से (तुम्हारी) सखी का आलिङ्गन कर लिया' - राधे ! तुम से यह झूठी बात आज किसने कह दी, जो तुम व्यर्थ में ही तमतमा रही हो' - स्वप्न में, इस प्रकार बड़बड़ाते हुए विष्णु के वचनों को सुनकर, लक्ष्मी जी ने (किसी) बहाने से (विष्णु के गले में डाली गई अपनी) गलबाँही को शिथिल कर दिया। (शिथिल कण्ठ ग्रहण वाले ऐसे विष्णु अथवा कृष्ण) आपकी रक्षा करें। ५।

(- अज्ञातकवि)

५४. कृष्णयौवनम्

सोत्तापं जरतीभिरस्फुटरसं बालाभिरुन्मीलित-
श्वासं वेश्मसुवासिनीभिरधिकाकूतं भुजिष्याजनैः।
प्रत्यग्रप्रकटीकृतार्ति कुलटासार्थेन दृष्टं हरे-
रव्याद्वो नवयौवनोत्सवदशानिर्व्याजमुग्धं वपुः।।१।।

भट्टपालीयपीताम्बरस्य।

५४. कृष्ण का यौवन

भगवान् कृष्ण का, नवयौवन के उल्लास से अकृत्रिम रूप से मनोहर (वह) शरीर आपकी रक्षा करे, जिसे वृद्धाओं ने सन्तापपूर्वक, बालिकाओं ने अव्यक्त आनन्दपूर्वक, सुन्दरियों ने आहें भरते हुए, दासियों ने अपनी पहुँच से परे समझते हुए और कुलटाओं की मण्डली ने प्रतिक्षण बेचैन होकर देखा। १।

(- भट्टपालीय पीताम्बर)

राधायामनुबद्धनर्मनिभृताकारं यशोदाभया-
दभ्यर्णेष्वतिनिर्जनेषु यमुनारोधोलतावेश्मसु।
मन्दाक्षश्लथवल्लवानुकरणक्रीडस्य कंसद्विषो
लब्धं यौवनमात्रया विजयते गम्भीरशोभं वपुः।।२।।

अभिनन्दस्य।

भगवान् कृष्ण के, (बिना साज-सज्जा के) यौवन मात्र से गम्भीर शोभा को प्राप्त (उस) स्वरूप की जय हो, जो राधा के प्रेम में एकनिष्ठ भाव से निबद्ध होकर, यशोदा के भय से, यमुनातटवर्ती लता-कुँजों में और तत्समीपस्थ (अन्य) निर्जन स्थानों में, मन्ददृष्टि और शिथिल गोपों के अनुकरण की क्रीड़ा (अर्थात् लुका-छिपी के खेल) में संलग्न है। २।

(- अभिनन्द)

वत्स त्वं नवयौवनोऽसि चपलाः प्रायेण गोपस्त्रियः
कंसो भूपतिरब्जनालभिदुरग्रीवा वयं गोदुहः।
सैषानर्थपरम्परेति भगवत्याशङ्कितातिक्रमे
कृष्णे तद्विनयाय नन्दगृहिणीशिक्षोक्तयः पान्तु वः।।३।।

वर्द्धमानस्य।

'बेटा ! तुम नौजवान हो, (ये) गोपाङ्गनाएँ प्रायः चंचल होती हैं, कंस राजा है, और हम गोप-कुल के लोगों की गर्दन तो बस कमलनाल-जैसी होती है (- जिसे जब जो चाहे, मरोड़ दे)। (कहीं कुछ ऊँच-नीच की बात हो गई, तब तो फिर) अनर्थ की परम्परा (ही शुरू हो जायेगी) ...' इस प्रकार, कृष्ण कहीं मर्यादा का उल्लंघन न कर बैठें, यह आशंका करती हुई यशोदा कृष्ण को सन्मार्ग पर लाने के लिए जो शिक्षाप्रद वचन बोल रही हैं, वे आपकी रक्षा करें। ३।

(- वर्द्धमान)

आरूढान्तरयौवनस्य परितो गोपीरनुभ्राम्यत-
स्तत्तत्तासु मनोगतं सुनिभृतं संव्याचिकीर्षोर्हरेः।
वेगादुच्छलितास्फुटाक्षरदशागर्भास्त्रपागौरवा-
त्प्रत्यञ्चो बलिता भवन्तु भवतां कृत्याय वागूर्मयः।।४।।

चक्रपाणेः।

चढ़ती हुई जवानी वाले, गोपियों के चारों ओर मँडराते हुए और उन गोपियों में से जिसके मन में जो कुछ है, उसका विवेचन करते हुए कृष्ण की वे वाक्-तरंगें, आपके कार्य हेतु गतिशील हो उठें, जो लज्जाभारवश, (अचानक) वेगपूर्वक उछलती हुई अकथनीय अवस्था वाली हैं। ४।

(- चक्रपाणि)

आहूताद्य मयोत्सवे निशि गृहं शून्यं विमुच्यागता
क्षीवः प्रैष्यजनः कथं कुलवधूरेकाकिनी यास्यति।
वत्स त्वं तदिमां नयालयमिति श्रुत्वा यशोदागिरो
राधामाधवयोर्जयन्ति मधुरस्मेरालसा दृष्टयः।।५।।

श्रीमत्केशवसेनस्य।

'बेटा ! आज मैंने उत्सव में इसे (-राधा) को बुलाया था, यह (अपने) घर को खाली छोड़कर आई है (-अतः सुरक्षा हेतु इसका घर लौटना भी आवश्यक है), सारे नौकर-चाकर (इस समय) नशे में धुत हैं, यह कुलवधू बेचारी अकेली कैसे जायेगी ? इसलिए तुम्हीं इसे घर भेज आओ'- यशोदाजी के इन वचनों को सुनकर राधा और माधव ने (एक दूसरे को जिन) मधुर मुस्कानभरी चितवनों से देखा, उनकी जय हो ! ५।

(- श्रीमत्केशवसेन)

५५. हरिक्रीडा

इह निचुलनिकुञ्जे मध्यमध्येऽस्य रन्तु-
र्विजनमजनि शय्या कस्य बालप्रबालैः।
इति कथयति वृन्दे योषितां पान्तु युष्मा-
न्स्मितशबलितराधामाधवालोकितानि।।१।।

रूपदेवस्य।

५५. हरिक्रीड़ा

'इस नरकुल-कुंज के मध्य में, एकान्त में, रमण करने के लिए, ताजी कोंपलों से बनी यह किसकी शय्या है ?'- युवती स्त्रियों ने जैसे ही यह पूछा, उस समय राधा-कृष्ण की रंग बदलती हुई मुस्कानभरी (पारस्परिक) चितवनें तुम लोगों की रक्षा करें। १।

(- रूपदेव)

कृष्ण त्वद्वनमालया सहकृतं केनापि कुञ्जान्तरे
गोपीकुन्तलबर्हदाम तदिदं प्राप्तं मया गृह्यताम्।
इत्थं दुग्धमुखेन गोपशिशुनाऽऽख्याते त्रपानम्रयो-
राधामाधवयोर्जयन्ति बलितस्मेरालसा दृष्टयः।।२।।

श्रीमल्लक्ष्मणसेनदत्तस्य।

'कृष्ण ! कुंज के भीतर किसी ने तुम्हारी वनमाला को गोपी के केशकलापगत मयूर-पंखों की माला से जोड़ दिया है। वह मुझे मिल गई है, तुम इसे ले लो' - इस प्रकार किसी दुधमुँहे गोपबालक ने जब कहा तो, राधा और कृष्ण दोनों के शिर लज्जा से झुक गये। उस समय तिरछी मुस्कान से अलसाई (उन दोनों की पारस्परिक) चितवनों की जय हो ! २।

(- श्रीमल्लक्ष्मणसेनदत्त)

भ्रूवल्लीचलनैः कयापि नयनोन्मेषैः कयापि स्मित-
ज्योत्स्नाविच्छुरितैः कयापि निभृतं सम्भावितस्याध्वनि।
गर्वोद्भेदकृतावहेलविनयश्रीभाजि राधानने
सातङ्कानुनयं जयन्ति पतिताः कंसद्विषो दृष्टयः।३।।

उमापतिधरस्य।

मार्ग में, किसी गोपी ने (कृष्ण के) भौंह-संचालन-प्रकार से, किसी ने आँख खोलने के प्रकार से, और किसी ने फैली हुई स्मित चन्द्रिका से (कृष्ण के) प्रच्छन्न (रहस्य) का अनुमान कर लिया। गर्व के टूटने से विनम्रता की शोभा वाले राधा के मुख पर पूर्वोक्त कृष्ण की भय और अनुनयपूर्वक पड़ती हुई दृष्टियों की जय हो। ३।

(- उमापतिधर)

व्यालाः सन्ति तमालवल्लिषु वृतं वृन्दावनं वानरै-
रुन्नक्रं यमुनाम्बु घोरवदनव्याघ्रा गिरेः सन्धयः।
इत्थं गोपकुमारकेषु वदतः कृष्णस्य तृष्णोत्तर-
स्मेराभीरवधूनिषेधि न नयनस्याकुञ्चनं पातु वः।४।।

तस्यैव।

'तमाल-लताओं में विषधर सर्प हैं, बन्दरों ने (तो पूरे) वृन्दावन को ही घेर लिया है और यमुना के प्रवाह में घड़ियाल तो ऊपर ही बने रहते हैं। पर्वतों की कन्दराओं में भयंकर मुखवाले बाघ भी रहते ही हैं' - इस प्रकार, कृष्ण जब गोपकुमारों से कह रहे थे, उस समय उन्होंने आँख मारकर गोपवधुओं को मना कर दिया (कि यह सूचना तुम्हारे लिए नहीं है। तुम तो पूर्ववत् बेखटके तमाल-लताओं, वृन्दावन और कालिन्दी के पुलिनों और गिरि-कन्दराओं में विहार करो)। कृष्ण की आँख का वही आकुञ्चन आपकी रक्षा करे। ४।

सङ्केतीकृतकोकिलादिनिनदं कंसद्विषः कुर्वतो-
द्वारोन्मोचनलोलशङ्खवलयश्रेणिस्वनं शृण्वतः।
केयं केयमिति प्रगल्भजरतीनादेन दूनात्मनो
राधाप्राङ्गणकोणकेलिविटपिक्रोडे गता शर्वरी।५।।

आचार्य्यगोपीकस्य।

(जिस समय कृष्ण) पहले से संकेतित कोयल की कूक प्रभूति (नकली) ध्वनि करते हुए, द्वार खोलने के लिए उतावली शंख के कंगन पहने महिला की झङ्कार सुन रहे थे, (उस समय किसी) बूढ़ी महिला के यह कह देने पर कि 'यह कौन स्त्री है, यह कौन स्त्री है', वे अत्यन्त खिन्न हो गये और उनकी पूरी रात राधा के बड़े आँगन के एक कोने में लगे केलिवृक्ष के ऊपर ही बीत गई। ५।

(- आचार्य गोपीक)

५६. प्रश्नोत्तरम्

देवि त्वं कुपिता त्वमेव कुपिता कोऽन्यः पृथिव्या गुरु-
र्माता त्वं जगतां त्वमेव जगतां माता न वित्तोपरः।
देवि त्वं परिहासकेलिकलहेऽनन्ता त्वमेवेत्यथ
ज्ञातानन्दपदो नमञ्जलधिजां शौरिश्चिरं पातु वः।१।।

वाक्पतेः।

५६. प्रश्नोत्तर

(विष्णु) 'देवि ! तुम कुपिता (नाराज) हो ?' (लक्ष्मी)- '(मैं नहीं)' तुम्हीं कुपिता (पृथिवी के पिता) हो। पृथ्वी का दूसरा पिता हो भी कौन सकता है ?' (विष्णु) - 'देवि ! तुम जगत् की माता (जननी) हो।' (लक्ष्मी-) -'मैं नहीं, तुम्हीं जगत् की माता (समृद्धि) हो। (विष्णु से बढ़कर दूसरा धन हो भी क्या सकता है ?' (विष्णु-) 'देवि! हास्य-क्रीड़ा की कलह में अनन्ता हो (अर्थात् तुमसे कोई पार नहीं पा सकता)।' (लक्ष्मी-) ' वह भी तुम्हीं हो' - इस प्रकार (हास-परिहास के) आनन्द का अनुभव करने वाले, लक्ष्मी के सामने प्रणति-मुद्रा में स्थित भगवान् विष्णु आपकी रक्षा करें[१]। १।

(-वाक्पति)

कोयं द्वारि हरिः प्रयाह्युपवनं शाखामृगेणात्र किं
कृष्णोऽहं दयिते बिभेमि सुतरां कृष्णः कथं वानरः।
मुग्धेऽहं मधुसूदनो व्रज लतां तामेव पुष्पान्विता-
मित्थं निर्वचनीकृतो दयितया ह्रीणो हरिः पातु वः।२।।

शुभाङ्कस्य।

(लक्ष्मी-) ' द्वार पर यह कौन है ?' (विष्णु-) -'हरि।' (लक्ष्मी-) 'तब फिर उद्यान में जाओ, बन्दर का यहाँ क्या काम है ?' (विष्णु-) 'प्रिये ! मैं कृष्ण हूँ।' (लक्ष्मी-) ' (तब तो मैं तुमसे) और अधिक डरने लगी हूँ (- इसलिए कि तुम मिथ्या-भाषण कर रहे हो, क्योंकि) बन्दर भी कहीं कृष्ण (-काला) होता है ?' (विष्णु- 'अरी भोली ! मैं मधुसूदन हूँ।' (लक्ष्मी-) (तब फिर) उस फूली लता पर जाओ (यहां तुम्हारा क्या काम ?)' - इस प्रकार अपने प्रिय नामों की प्रिया के द्वारा की गई व्युत्पत्ति से लज्जित भगवान् विष्णु आपकी रक्षा करें[२]। २।

(-शुभाङ्क)

कस्त्वं भो निशि केशवः शिरसिजैः किं नाम गर्वायसे
भद्रे शौरिरहं गुणैः पितृगतैः पुत्रस्य किं स्यादिह।
चक्री चन्द्रमुखि प्रयच्छसि न मे कुण्डीं घटीं दोहिनी-
मित्थं गोपवधूजितोत्तरतया दुःस्थो हरिः पातु वः।३।।

कस्यचित्।

---

१. विशेष स्पष्टीकरण - १. इस पद्य में 'कुपिता' (नाराज, पृथ्वी का पिता), 'माता' (जननी, समृद्धि) 'अनन्ता' (अन्तहीन, शेषनाग से युक्त) पद श्लिष्ट हैं। २. इस पद्य में निम्नलिखित श्लिष्ट पद द्व्यर्थक है - हरि = विष्णु, बन्दर। कृष्ण = वसुदेवनन्दन, काला मधुसूदन = विष्णु, भौंरा।

गोपाङ्गना 'रात में (आये हुए) तुम कौन हो?' (कृष्ण-) - '(मैं) केशव हूं।' (गोपाङ्गना) 'अपने केशों पर (इतना) गर्व क्यों कर रहे हो?' (कृष्ण) 'कल्याणि ! मैं शौरि हूँ। (गोपाङ्गना-) -'पिता के गुणों से पुत्र का यहाँ क्या होना है?' (कृष्ण-) 'अरी चन्द्रमुखि ! मैं चक्री हूँ, तुम मुझे कुण्डी क्यों नहीं देती हो ?' (गोपाङ्गना-) ' तुम्हें क्या चाहिए ?- कुण्डी अर्थात् दूध दुहने वाली कलशी ?' - इस प्रकार गोपाङ्गना (राधा) के द्वारा उत्तर देने में पराजित हो जाने से दुरवस्थित कृष्ण आपकी रक्षा करें'। ३।।

(-अज्ञात कवि)

वासः सम्प्रति केशव क्व भवतो मुग्धेक्षणे नन्विदं
वासं ब्रूहि शठ प्रकामसुभगे त्वद्गात्रसंश्लेषतः।
यामिन्यामुषितः क्व धूर्त्त वितनुर्मुष्णाति किं यामिनी
शौरिर्गोपवधूं छलैः परिहसन्नेवंविधैः पातु वः।४।।

कस्यचित्।

(गोपवधू)- 'केशव! इस समय आपका वास कहां है ?' (कृष्ण-) 'अरे, वह तो मुग्ध दृष्टि में है।' (गोपवधू-) - 'अरे धूर्त ! वास के विषय में बतलाओ।' (कृष्ण-) ' तुम्हारे अंगों के आलिंगन से विपुल सुन्दर (वस्त्र के विषय) में ?' (गोपवधू-) ' अरे धूर्त! तुम तो विशिष्ट शरीर वाले हो, रात में कहां रहे ?' (कृष्ण -) ' अरे! रात भी (कहीं) कुछ चुराती है!'-इस प्रकार छलपूर्वक राधाजी से हास-परिहास करते हुए भगवान् कृष्ण आपकी रक्षा करें। ४।[२]

कुशलं राधे सुखितोऽसि कंस कंसःक्व सा राधा।
इति पालीप्रतिवचनैर्विलक्षहासो हरिर्जयति।५।।

कस्यचित्।

(कृष्ण-) 'अरी राधे ! कुशल तो है न?' (राधा-) -'कंस को मार करके तो तुम सुखी हो ही गये हो।' (कृष्ण-) '(क्या कहा?) 'कंस (-जलपात्र) के विषय में (पूछ रही हो?

---

१. विशेष स्पष्टीकरण - ३. इस द्वयर्थी संवाद में निम्नलिखित पद श्लिष्ट हैं - केशव = बहुत सुन्दर केशों वाला, विष्णु। शौरि = इस शब्द के अनेक अर्थ हैं- विष्णु, बलराम और शनिग्रह, किन्तु प्रकृत प्रसंग में यहां 'शौरि' का अर्थ 'शूरसेन से सम्बन्धित है। चक्री = सदुर्शन चक्रधारी कृष्ण, मन्थनदण्डधारी। कुण्डी = दरवाजे की अर्गला, कूँड़ी (कलशी)।

२. इस पद्य में निम्नलिखित पद श्लिष्ट होने से द्वयर्थी संवाद की सृष्टि कर रहे हैं - वास = निवास,वस्त्र। मुग्धेक्षण = भोली भाली चितवन, सम्मोहित क्षण। यामिन्यामुषितः = इसके दो विग्रह हो सकते हैं - यामिन्याम् उषितः=रात में रहा हुआ, यामिन्या मुषितः = रात के द्वारा चुराया गया।

वह तो राधा (ही) है।'- इस प्रकार (राधा से) बारी-बारी से प्राप्त प्रत्युत्तरों से विलक्षण हास्य वाले भगवान् कृष्ण की जय हो! ५।[1]

(- अज्ञात कवि)

५७. वेणुनादः

कृष्णः पातु स यस्य संसदि गवां वेणुप्रणादोर्मयो
गोपीनामनुवासरं नवनवा घूर्णन्ति कर्णोदरे।
तद्वक्त्रासववासिता इव तदाकूतप्रपञ्चा इव
भ्राम्यत्तत्करपल्लवाङ्गुलिगलल्लावण्यलिप्ता इव।१।।

लक्ष्मीधरस्य।

५७. वेणुनाद

वे भगवान् कृष्ण (आपकी) रक्षा करें, जिनकी बांसुरी की तान की नई-नई लहरियाँ गोशाला में गोपियों के कर्ण-कुहरों में प्रतिदिन मँडराती रहती हैं। (वेणुनाद की वे लहरें) कृष्ण के मुख के मद्य से मानों सुवासित-सी (कृष्ण के) प्रयोजन से रची गईं-सी, और उनके घूमते हुए हाथ की किसलयों-सी उँगलियों से झरते हुए लावण्य में लिपी-पुती सी (प्रतीत होती हैं)। १।

(-लक्ष्मीधर)

तिर्य्यक्कन्धरमंसदेशमिलितश्रोत्रावतंसं स्फुर-
द्बर्होत्तंसितकेशपाशमनृजुभ्रूवल्लरीविभ्रमम्।
गुञ्जद्वेणुनिवेशिताधरपुटं साकूतराधानन-
न्यस्तामीलितदृष्टि गोपवपुषो विष्णोर्मुखं पातु वः।२।।

श्रीमल्लक्ष्मणसेनस्य।

गोपस्वरूप में स्थित भगवान् विष्णु का वह मुख आपकी रक्षा करें, जिसमें कर्ण-कुण्डल तिरछे होकर ग्रीवा और कन्धे से संलग्न हो गये हैं, केश-पाश में मयूरपंख लगा है, टेढ़ी-टेढ़ी भौंहों में लताओं-से हाव-भाव हैं, अधरद्वय पर बजती हुई बाँसुरी रखी है, और राधा के मुख पर जमीं आँखें साभिप्राय बन्द हैं। २।

(-श्रीमल्ललक्ष्मणसेन)

---

१. विशेष-कंस अथवा कंसक' = जल पीने का पात्र काँसा तथा मथुरा का विख्यात दुष्ट राजा, जिसे कृष्ण ने मारा था।

सायं व्यावर्त्तमानाखिलसुरभिकुलाह्वानसङ्केतनामा-
न्याभीरीवृन्दचेतोहठहरणकलासिद्धमन्त्राक्षराणि।
सौभाग्यं वः समन्ताद्दधतु मधुभिदः केलिगोपालमूर्त्तेः
सानन्दाकृष्टवृन्दावनरसिकमृगश्रेणयो वेणुनादाः।३।।

उमापतिधरस्य।

लीलावश गोपालस्वरूप में विद्यमान भगवान् विष्णु के वे वेणुनाद आपको सौभाग्य-सम्पन्न करें, जो सायंकाल (चारणभूमि से) लौटती हुई गायों को बुलाने के लिए सांकेतिक शब्द हैं, गोपाङ्गनाओं के हृदयों को बरबस आकृष्ट करने की कला के सिद्ध मन्त्र के अक्षर हैं, और वृन्दावन के प्रणयी हरिणों के झुण्डों को प्रसन्नतापूर्वक (अपनी ओर) आकृष्ट कर लेने वाले हैं। ३।

(-उमापतिधर)

वक्त्रक्वाणितवेणुरह्नि शिथिले व्यावर्त्तयन् गोकुलं
बर्हापीडकमुत्तमाङ्गरचितं गोधूलिधूम्रं दधत्।
म्लायन्त्या वनमालया परिगतः श्रान्तोऽपि रम्याकृति-
र्गोपस्त्रीनयनोत्सवो वितरतु श्रेयांसि वः केशवः।४।।

कस्यचित्।

दिन ढल जाने पर, मुख से बांसुरी बजाकर, गायों को लौटाते हुए, शिर पर मोरमुकुट को लगाये हुए, गोधूलि वेला में (उठते हुए) धुँए से कुँभलाई वनमाला को धारण किये हुए वे भगवान् कृष्ण, जो थके होने पर भी मनोहर आकृति वाले और गोपाङ्गनाओं की आंखों के लिए अतीव आनन्दप्रद हैं, आपको कल्याणराशि प्रदान करें। ४।

(- अज्ञातकवि)

अंसासक्तकपोलवंशवदनव्यासक्तबिम्बाधर-
द्वन्द्वोदीरितमन्दमन्दपवनप्रारब्धमुग्धध्वनिः।
ईषद्वक्रिमलोलहारनिकरः प्रत्येकरोकानन-
न्यञ्चन्चञ्चदुञ्चदङ्गुलिचयस्त्वां पातु राधाधवः।५।।

केशरकोलीयनाथोकस्य।

राधा के (वे) प्रियतम कृष्ण आपकी रक्षा करें, जिनके कन्धें से सटे कपालों वाले मुख के बिम्बाधरयुग्म से मन्द-मन्द पवन के प्रवाहित होने की सम्मोहक ध्वनि निकल रही है,

कुछ-कुछ टेढ़े हो गये और हिलते हुए हारों (को जिन्होंने पहन रखा है), और (बाँसुरी के) प्रत्येक छिद्र के मुख पर जिनकी उँगलियाँ (कभी) नीचे गिर रही हैं और (कभी यों ही) हिल रही हैं। ५।

(- केशरकोलीयनाथोक)

५८. गीतम्

सञ्जाते विरहे कयापि हृदये सन्दानिते चिन्तया
कालिन्दीतटवेतसीवनघनच्छायानिषण्णात्मनः।
पायासुः कलकण्ठकूजितकला गोपस्य कंसद्विषो
जिह्वावर्जिततालुमूर्च्छितमरुद्विस्फारिता गीतयः।१।।

कस्यचित्।

५८. (कृष्ण के) गीत

किसी (गोपी) के द्वारा, चिन्ता से हृदय चीर देने पर उत्पन्न वियोग में, यमुनातट पर, बेंत के वन की सघन छाया में बैठे हुए गोपाल कृष्ण के वे गीत आपकी रक्षा करें, जो मधुर कण्ठ से गाये गये हैं तथा जिह्वा मोड़ने से तालु में विद्यमान वायु के उन्मुक्त प्रसार से युक्त हैं। १।

(- अज्ञात कवि)

कालिन्दीजलकुञ्जवञ्जुलवनच्छायानिषण्णात्मनो
राधाबद्धनवानुरागरसिकस्योत्कण्ठितं गायतः।
तत्पायादपरिस्खलज्जलरुहापीडं कलस्पृङ्नत-
ग्रीवोत्तानितकर्णतर्णककुलैराकर्ण्यमानं हरेः।२।।

उद्भटस्य।

राधा के नये-नये प्रेम के आनन्द में निमग्न, यमुना के जल-प्रवाह (के किनारे पर स्थित) कुंज में, नरकुल वृक्षों की छाया में बैठे हुए भगवान् कृष्ण के द्वारा गाये हुए वे उत्कण्ठा भरे गीत (आपकी) रक्षा करें, जिन्हें (गीत) माधुर्य से आकृष्ट बछड़े (भी) गर्दन उठाये हुए सुन रहे हैं और जिनमें (मानों) न कुंभलाने वाले कमलों को भी निचोड़ (देने की सामर्थ्य) है। २।

(- उद्भट)

देवस्त्वामेकजङ्घावलयितलगुडो मूर्धि विन्यस्तबाहु-
र्गायन् गोयुद्धगीतीरुपरचितशिरःशेखरः प्रग्रहेण।
दर्पस्फूर्जन्महोक्षद्वयसमररसाबद्धदीर्घानुबन्धः
क्रीडागोपालमूर्तिर्मुररिपुरवतादात्तगोरक्षलीलः।३।।

योगेश्वरस्य।

गोरक्षा के कार्य में संलग्न तथा क्रीड़ा-गोपाल-स्वरूप में स्थित वे भगवान् विष्णु आपकी रक्षा करें, जो झुककर एक पैर पर खड़े तथा लाठी लिये हुए हैं, हाथ को शिर के ऊपर रखे हैं, गायों के (आपस में) लड़ने (के भाव पर आधृत) गीत गा रहे हैं, (दूसरे हाथ से) चाबुक को माथे तक उठाये हुए हैं, दर्प से फड़कते हुए दो बैलों (-सांड़ों-) के युद्ध में देर से संलग्नतापूर्वक आनन्द ले रहे हैं। ३।

(-योगेश्वर)

याते द्वारवतीं पुरीं मधुरिपौ तद्वस्त्रसंव्यानया
कालिन्दीतटकुञ्जवञ्जुललतामालब्य सोत्कण्ठया।
उद्गीतं गुरुवाष्पगद्गदगलत्तारस्वरं राधया
येनान्तर्जलचारिभिर्जलचरैरुत्कण्ठमाकूजितम्।४।।

कस्यचित्।

कृष्ण के द्वारकापुरी चले जाने पर, उनके (पीताम्बर) वस्त्र को ओढ़कर राधा ने, (प्रेम की) व्याकुल विह्वलता में, यमुना तटवर्ती कुंज में, वेत्र-लता का आश्रय लेकर (अपने) भारी और रुँधे गले से तारस्वर में जो गीत गाया, उससे यमुना के जल में रहने वाले जलचर पंछी भी उत्कण्ठित होकर (राधा के स्वर में स्वर मिलाते हुए) कूजन (अथवा कलरव) करने लगे। ४।

(- अज्ञात कवि)

यानि त्वच्चरितामृतानि रसनालेह्यानि धन्यात्मनां
ये वा शैशवचापलव्यतिकरा राधानुबन्धोन्मुखाः।
या वा भावितवेणुगीतगतयो लोला मुखाम्भोरुहे
धारावाहितया वहन्तु हृदये तान्येव तान्येव मे।५।।

कस्यचित्।

(हे कृष्ण !) पुण्यात्माओं के द्वारा जिह्वा से चाटने योग्य तुम्हारे चरितों का अमृत, राधा के प्रति प्रणयभाव में सम्मिश्रित बचपन की चपलताएँ तथा मुख-कमल पर बाँसुरी बजाते और गीत गाते समय आती-जाती विविध भाव-भङ्गिमाएँ, मेरे हृदय में धारावाहिक रूप से क्रमशः सन्निविष्ट होती रहें। ५।

(अज्ञात कवि)

५९. कृष्णभुजः

भ्राम्यद्भास्वरमन्दराद्रिशिखरव्याघट्टनाद्विस्फुरत्-
केयूराः पुरुहूतकुञ्जरकरप्राग्भारसंवर्द्धिनः।
दैत्येन्द्रप्रमदाकपोलविलसत्पत्राङ्कुरच्छेदिनो
दोर्दण्डाः कलिकालकल्मषमुषः कंसद्विषः पान्तु वः।१।।

कस्यचित्।

५९. कृष्ण की भुजाएँ

कलियुग के कालुष्य का अपनयन करने वाली, कृष्ण की वे भुजाएँ आपकी रक्षा करें, जिनमें घूम-घूमकर चमकते हुए मन्दराचल की चोटी से टकराकर देदीप्यमान बाजूबन्द (पहने गये) हैं, जो इन्द्र के हाथी (ऐरावत) की सूड़ के अग्रभागगतभार का संवर्धन करने वाली हैं, और असुर-सुन्दरियों के कपोलों पर सुशोभित पत्र-रचनागत अंकुरों को उखाड़ देने वाली हैं। १।

(- अज्ञात कवि)

लक्ष्म्याः केशप्रसररजसां विन्दुभिः सान्द्रपातै-
रुद्वर्णश्रीर्घननिधुवनक्लान्तिनिद्रान्तरेषु।
दोर्दण्डोऽसौ जयति जयिनः शार्ङ्गिणो मन्दराद्रि-
ग्रावश्रेणीनिकषमसृणक्षुण्णकेयूरपत्रः।२।।

भगीरथस्य।

शार्ङ्गधनुर्धारी तथा विजयी भगवान् कृष्ण की उस भुजा की जय हो, जिसकी शोभा निधुवन (रतिक्रीडा में) थककर ली गई नींद के मध्य में, लक्ष्मी के खुले जूड़े से गिरे मोटे-मोटे परागकणों से और भी बढ़ गई है, तथा मन्दराचल से टकराने के कारण जिसमें पहना गया बाजूबन्द हल्का-सा घिस गया है। २।

(- भगीरथ)

ये गोवर्द्धनमूलकर्दमरसव्यादष्टबर्हच्छदा-
ये वृन्दावनकुक्षिषु व्रजवधूलीलोपधानानि च।
ये चाभ्यङ्गसुगन्धयः कुवलयापीडस्य दानाम्भसा
ते वो मङ्गलमादिशन्तु सततं कंसद्विषो बाहवः।।३।।

शुभाङ्कस्य।

भगवान् कृष्ण की वे भुजाएँ आपका कल्याण करें, जिनमें लगे मयूरपंख गोवर्धन पर्वत की नींव के कीचड़ में लथपथ हो गये हैं, वृन्दावन के कुंजों में व्रजवनिताएँ जिन्हें खेल-खेल में तकिया बना लेती हैं, और कुवलयापीड नामक हाथी के मद-जल से सिक्त होने के कारण जिनमें तैल-मर्दन की सुगन्धि सन्निहित है। ३।

(- शुभाङ्क)

जयश्रीविन्यस्तैर्महित इव मन्दारकुसुमैः
स्वयं सिन्दूरेण द्विपरणमुदा मुद्रित इव।
भुजामर्दक्रीडाहतकुवलयापीडकरिणः-
प्रकीर्णासृग्विन्दुर्जयति भुजदण्डो मुरजितः।४।।

जयदेवस्य।

भगवान् कृष्ण के उस भुजदण्ड की जय हो, जिसमें कुवलयापीड हाथी को खींच-खींच कर मारने के कारण (इतस्ततः) रक्तविन्दु लग गये हैं, और इसके कारण प्रतीत होता है, जैसे उसमें मन्दारपुष्पों से विजयश्री के महिमामय चिह्न अङ्कित कर दिये गये हों! अथवा हाथी के साथ युद्ध करने से प्रसन्न होकर स्वयं सिन्दूर ने (अपने हाथों से) थापियाँ लगा दी हों! ४।

(- जयदेव)

पान्तु वो जलदश्यामाः शाङ्र्गज्याघातकर्कशाः।
त्रैलोक्यनगरस्तम्भाश्चत्वारो हरिबाहवः।।५।।

श्रीव्यासपादानाम्।

भगवान् विष्णु की वे भुजाएँ आपकी रक्षा करें, जो मेघों के सदृश नीलवर्ण की हैं, धनुष की प्रत्यञ्चा के आघात से कठोर हो गई हैं तथा त्रिभुवनरूपी नगर के चार खम्भों के सदृश हैं। ५।

(- श्रीव्यासपाद)

६०. गोवर्धनोद्धारः

सत्रासार्ति यशोदया प्रियगुणप्रीतेक्षणं राधया
नग्नैर्वल्लवसूनुभिः सरभसं सम्भावितात्मोर्जितैः।
भीतानन्दितविस्मितेन विषमं नन्देन चालोकितः
पायाद्वः करपद्मसुस्थितमहाशैलः सलीलो हरिः।।१।

सोल्लोकस्य।

६०. गोवर्धन का उद्धार

(अपने) करकमलों में लीलापूर्वक (अनायास किन्तु) सुव्यवस्थित ढंग से महापर्वत गोवर्धन को उठाये हुए वे भगवान् कृष्ण आपकी रक्षा करें, जिन्हें यशोदा ने भय-विह्वल होकर, राधा ने प्रियतम के गुणों से प्रसन्न नयनों से, नंगे-नंगे गोप-बालकों ने बरबस अपनी (ही) बढ़ी हुई शक्ति से युक्त होकर, तथा नन्द बाबा ने एक साथ डरते, प्रसन्न होते और विस्मित होते हुए देखा। १।

एकेनेव चिराय कृष्ण भवता गोवर्द्धनोऽयं धृतः
श्रान्तोऽसि क्षणमास्व साम्प्रतममी सर्वे वयं दध्महे।
इत्युल्लासितदोष्णि गोपनिवहे किञ्चिद्भुजाकुञ्चन-
न्यञ्चच्छैलभरार्दिते विरमति स्मेरो हरिः पातु वः।।२।।

'अरे कृष्ण ! आप बहुत देर से, अकेले ही गोवर्धन पर्वत को उठाये हुए हैं, (अतः) थक गये होंगे, कुछ देर ठहर कर (विश्राम कर लीजिए), तब तक हम सभी लोग इसे उठाये रहेंगे-' (यह कहते हुए) गोप-समूह ने जैसे ही हर्षविभोर होकर अपनी भुजाएँ ऊपर उठाईं और कृष्ण अपने हाथ को कुछ सिकोड़ कर (हटाने) लगे, (उसी समय) पर्वत (भी) नीचे गिरने लगा। इस पर कृष्ण पुनः अपने हाथ को हटाना बन्द कर मुस्कुराने लगे। मुस्कुराते हुए यही कृष्ण आपकी रक्षा करें। २।

(- अज्ञात कवि)

स्नेहादंसतटेऽवलम्ब्य चरणावारोप्य तत्पादयो-
र्दूरोदस्तमहीधरस्य तनुतामाशङ्क्य दोष्णो हरेः।
शैलोद्धारसहायतां जिगमिषोरप्राप्तगोवर्धना
राधायाः सुचिरं जयन्ति गगने बन्ध्याः करभ्रान्तयः।।३।।

शतानन्दस्य।

ऊपर दूर तक उठे गोवर्धन पर्वत को देखकर और यह सोचकर कि कृष्ण की भुजाएँ कहीं कमजोर न पड़ जायें (प्यार से) राधा (कृष्ण के) के कन्धे का सहारा लेकर, उनके पैरों पर अपने पैरों को रखती हुई और पर्वत उठाने में कृष्ण की सहायता करने के लिए आगे बढ़ती हुई (राधा) ने भी अपने हाथ ऊपर उठाये (लेकिन बहुत प्रयत्न करने पर भी वे) गोवर्धन को न छू सकीं। राधा के देर तक आकाश में निष्फल रूप से उठे हाथों के भ्रमों (- कि वे भी गोवर्धन उठाने में समर्थ हैं -) की जय हो! ३।

(- शतानन्द)

दूरं दृष्टिपथात्तिरोभव हरेर्गोवर्धनं बिभ्रत-
स्त्वय्यासक्तदृशः कृशोदरि करः स्रस्तोऽस्य माभूदिति।
गोपीनामिति जल्पितं कलयतो राधानिरोधाश्रयं
श्वासाः शैलभरश्रमभ्रमकराः कृष्णस्य पुष्णन्तु वः।।४।।

कस्यचित्।

(-गोपियाँ-) 'अरी कृशोदरि राधे ! गोवर्धन उठाये हुए कृष्ण की दृष्टि से तुम जरा दूर ही रहना, कहीं ऐसा न हो कि उनकी आँखें तुम्हीं पर गड़ी रह जायें और हाथों से गोवर्धन खिसक जाये'- इस प्रकार जब गोपियाँ कह रही थीं, तो कृष्ण राधा के द्वारा (गोवर्धन को) रोकने के लिए लगाये गये सहारे का आकलन करने लगे - इससे उनकी साँस तेज चलने लगी, यद्यपि लोगों को भ्रान्ति यही हुई कि पर्वत का भार उठाने से उनकी साँस तेज चलने लगी है - कृष्ण की ऐसी साँसें आपको पुष्ट करें। ४।

(- अज्ञात कवि)

मुग्धे नाथ किमात्थ तन्वि शिखरिप्राग्भारभुग्नो भुजः
साहाय्यं प्रिय किं भजामि सुभगे दोर्वल्लिमायासय।
इत्युल्लासितबाहुमूलविचलच्चेलाञ्चलव्यक्तयो
राधायाः कुचयोर्जयन्ति चलिताः कंसद्विषो दृष्टयः।।५।।

जयदेवस्य।

(- राधा से कृष्ण का कथन-) 'अरी मुग्धे !' (राधा-) -'हाँ, स्वामी ! क्या आज्ञा है ?' (-कृष्ण-) 'पर्वत के भार से मेरी भुजा झुकी जा रही है।' (-राधा-) 'इसमें मैं तुम्हारी क्या सहायता करूँ?' (कृष्ण-) 'सुन्दरि ! अपनी बाहुलता को तुम थोड़ा कष्ट दो न !' - (कृष्ण के इस आग्रह पर राधा ने) प्रसन्न होकर अपने दोनों हाथ ऊपर उठा दिये। इससे उनके बाहु-मूल के पास से वक्षः स्थल का वस्त्र भी ऊपर उठ गया और उनके स्तन बाहर दिखने लगे। कृष्ण की, राधा के इन स्तनों पर (बार-बार) फिसलने वाली चितवनों की जय हो। ५।

६१. उत्कण्ठा

रत्नच्छायाच्छुरितजलधौ मन्दिरे द्वारकायां
रुक्मिण्यापि प्रततपुलकोद्भेदमालिङ्गितस्य।
विश्वं पायान्मसृणयमुनातीरवानीरकुञ्जे-
ष्वाभीरस्त्रीनिभृतचरितध्यानमूर्च्छा मुरारेः।।१।।

उमापतिधरस्य।

६१. उत्कण्ठा

द्वारका के, रत्नराशि से झिलमिलाते समुद्र में स्थित अपने प्रासाद में, रुक्मिणी जी ने प्रसन्नता के आवेग में जब कृष्ण का आलिङ्गन किया (तो उस समय कृष्ण) यमुनातटवर्ती सुकोमल वेतस-कुंजों में गोपवालाओं के संग में की गई एकान्तलीलाओं के ध्यान में निमग्न थे। कृष्ण की वही निमग्नता संसार की रक्षा करें। १।

(- उमापतिधर)

कालिन्दीमनुकूलकोमलरयामिन्दीवरश्यामलाः
शैलोपान्तभुवः कदम्बकुसुमैरामोदिनः कन्दरान्।
राधां च प्रथमाभिसारमधुरां जातानुतापः स्मर
न्नस्तु द्वारवतीपतिस्त्रिभुवनामोदाय दामोदरः।।२।।

शरणस्य।

कोमलता और सरसता पूर्वक प्रवाहित होने वाली कालिन्दी का, गोवर्धन के पास की नीले पुष्पों से श्यामल भूमि का, कदम्ब कुसुमों से सुगन्धित कन्दराओं का, और प्रथम अभिसार की रसमयता से युक्त राधा जी का उत्कण्ठापूर्वक स्मरण करते हुए द्वारकानाथ भगवान् कृष्ण तीनों लोकों को आनन्दित करें। २।

(- शरण)

कामं कामयते न केलिनलिनीं नामोदते कौमुदी-
निस्यन्दैर्न समीहते मृगदृशामालापलीलामपि।
सीदन्नेव निशासु दुःसहतनुर्भोगाभिलाषालसै-
रङ्गैस्ताम्यति चेतसि व्रजवधूमाधाय मुग्धो हरिः।।३।।

तस्यैव।

व्रज-बालाओं के ध्यान में विमुग्ध कृष्ण न तो क्रीड़ा-कमलिनी की इच्छा करते हैं और न उन्हें (अब) कौमुदी से निस्सृत सुगन्धि (ही) भाती है। (अन्तःपुरस्थ) मृगनयनियों के संलाप भी उन्हें अब अच्छे नहीं लगते। रात-रात भर विषाद में डूबे हुए कृष्ण भोग की अभिलाषा से अलसाये अंगों से अपने मन में बस सन्ताप (ही) किया करते हैं। ३।

(- वही)

प्रत्यग्रोज्झितगोकुलस्य शयनादुत्स्वप्नमूढस्य मां
मा गोत्रस्खलितादपैतु च दिवा राधेति भीरोरिति।
राधां संस्मरतः श्रियं रमयतः खेदो हरेः पातु वः।।४।।

कस्यचित्।

भगवान् कृष्ण की वह खिन्नता आपकी रक्षा करे, जिसके कारण वे रात-रात भर सो नहीं पाते हैं। ताजा-ताजा गोकुल छोड़े हुए कृष्ण बिस्तर पर नींद उचटने से उठ-उठ बैठते हैं। नाम लेने में त्रुटि हो जाने से राधा (कहीं छोड़कर चली न जाये-) इसलिए डरते रहते हैं। (अब उनकी स्थिति यह है कि) वे एकान्त में, और दिन में 'लक्ष्मी-लक्ष्मी' जपते रहते हैं, (मन में) राधा की याद करते हैं और रमण लक्ष्मी से करते हैं। ४।

(-अज्ञात कवि)

तल्पीकृतस्य भुजगाधिपतेः फणायां
रत्नेषु संवलितबिम्बतया रमायाः।
कृष्णावतारकृतगोपवधूसहस्र-
सङ्गस्मृतिर्जयति सोत्कलिकस्य विष्णोः।।५।।

कस्यचित्।

नागराज के फन की शय्या पर लेटे हुए विष्णु के रत्नों पर जब लक्ष्मीजी की परछाईं पड़ती है, तो उन्हें कृष्णावतार में सहस्रों गोपाङ्गनाओं के साहचर्य की याद आ जाती है। उत्कण्ठित विष्णु की इस स्मृति की जय हो। ५।

(- अज्ञात कवि)

६२. गोपीसन्देशः

भो गोवर्धनकन्दराः स यमुनाकच्छः सचेष्टारसो
भाण्डीरः स वनस्पतिः सहचरास्ते तच्च गोष्ठाङ्गणम्।

किं ते द्वारवतीभुजङ्ग हृदयं नायान्ति दोषैरपी-
त्यव्याद्वो हृदि दुःसहं व्रजवधूसन्देशशल्यं हरेः।।१।।

६२. गोपी-सन्देश

'हे द्वारका के लम्पट कृष्ण ! तुम्हें क्या, गोवर्धन की कन्दराओं, यमुना के उस तट, के केलिरस से सराबोर उस बरगद के वृक्ष, उन संगी-साथियों और गोशाला के उस आंगन में से किसी की भी (अब) मन में याद नहीं आती ? (तुम हमारी अच्छाइयों को न सही), दोषों की ही कभी-कभी याद कर लिया करो !'- व्रजवनिताओं के इस सन्देश का वह शल्य (काँटा), जो भगवान् कृष्ण के हृदय में सदैव असह्य रूप से चुभता रहता है, आपकी रक्षा करे। १।

पान्थ द्वारवतीं प्रयासि यदि हे तद्देवकीनन्दनो
वक्तव्यः स्मरमोहमन्त्रविवशा गोप्योऽपि नामोज्झिताः।
एताः केतकगर्भधूलिपटलैरालोक्य शून्या दिशः
कालिन्दीतटभूमयोऽपि तरवो नायान्ति चिन्तास्पदम्।।२।।

कस्यचित्।

'ओ राही ! यदि तुम द्वारका जा रहे हो, तो देवकी के उस बेटे' से कहना कि 'अरे! तुमने उन गोपियों का त्याग कर दिया, जो बेचारी मदन-मन्त्र की महिमा से पूरी तरह तुम्हारे अधीन हो गई थीं ! केवड़े के पराग से व्याप्त इन सूनी-सूनी दिशाओं को देखकर क्या तुम्हें यमुनातटवर्ती भूमि और वहाँ के वृक्षों की भी याद नहीं आती ? २।

(- अज्ञात कवि)

उपनय मसिं पत्रं चेदं लिखामि किमत्र वा
त्वमिति विनयभ्रंशो यूयं त्विति प्रणयक्षतिः।
सुहृदिति मृषा नाथेत्यूनं नृपेति तटस्थता
कथमिव ततः सन्देष्टव्यो मया यदुनन्दनः।।३।।

पुंसोकस्य।

१. 'देवकीनन्दन' पद में उपालम्भ भाव की विशेष व्यञ्जना है। अभिप्राय यह कि अब कृष्ण 'यशोदा के बेटे' नहीं रह गये हैं, 'देवकी के पुत्र' हो गये हैं।- अनु.

(राधा की उक्ति -) 'अरे, स्याही लाओ, चिट्‌ठी लिखनी है, लेकिन पत्र में मैं यदुनन्दन को सम्बोधित कैसे करूँ ?' यदि 'तुम' लिखती हूँ, तो शिष्टाचार का उल्लङ्घन होता है। बहुवचन में 'तुम सब' लिखती हूँ, तो प्रेम का अनादर होता है। 'सुहृद्' लिखती हूँ, तो यह झूठ लगता है (क्योंकि कृष्ण तो हमारा हृदय ही तोड़कर चले गये)। 'नाथ' लिखती हूँ, तो यह हमारे (सम्बन्धों के) बड़प्पन के अनुरूप नहीं है। 'महाराज' सम्बोधन में तटस्थता झलकती है। समझ में नहीं आता कि (कान्हा को) किस सम्बोधन से सन्देश भेजना चाहिए ? ३।

(- पुंसोक)

कालिन्द्याः पुलिनं प्रदोषमरुतो रम्याः शशाङ्कांशवः
सन्तापं न हरन्तु नाम नितरां कुर्वन्ति कस्मात्पुनः।
सन्दिष्टं व्रजयोषितामिति हरेः संश्रृण्वतोऽन्तःपुरे
निःश्वासाः प्रसृता जयन्ति रमणीसौभाग्यगर्वच्छिदः।।४।।

पञ्चतन्त्रकृतः।

'कालिन्दी का तट, सान्ध्यपवन, रमणीय चन्द्र-किरणें- ये चीजें सन्ताप को दूर भले ही न करें, किन्तु सन्ताप दे क्यों रही हैं ?' - अन्तःपुर में व्रजवनिताओं के सन्देश को सुनते हुए कृष्ण की, रमणियों के गर्व को खण्डित करने वाली साँसों की जय हो ! ४।

(- पञ्चतन्त्रकार)

मथुरापथिक मुरारेरुद्गेयं द्वारि वल्लवीवचनम्।
पुनरपि यमुनासलिले कालियगरलानलो ज्वलति।।५।।

वीरसरस्वत्याः।

मथुरा की ओर जाने वाले ओ पथिक ! कृष्ण के दरवाजे पर गोपियों का यह सन्देश सुना देना कि यमुना के जल में कालियनाग की विषाग्नि पुनः प्रज्वलित हो उठी है। ५।

(- वीरसरस्वती)

६३. सामान्यहरिः

सेयं द्यौस्तदिदं शशाङ्कदिनकृच्चिह्नं नभः सा क्षिति-
स्तत्पातालतलं त एव गिरयस्तेम्भोधरास्ता दिशः।
इत्थं नाभिविनिर्गतेन सशिरःकम्पाद्भुतं वेधसा
यस्यान्तश्च बहिश्च दृष्टमखिलं त्रैलोक्यमव्यात्स वः।।१।।

वाक्पतिराजस्य।

६३. सामान्य हरि

'वही आकाश है, वही पूर्णिमा का गगन है, वही वसुन्धरा है, वही पाताल-तल है, वे ही पर्वत हैं, वे ही मेघ हैं, वही दिशाएँ हैं-' इस प्रकार, (विष्णु के) नाभि- (कमल) से निकलकर ब्रह्मा जी ने, शिर हिलाते हुए, जिनके भीतर-बाहर का सर्वस्व देख लिया, वे भगवान् विष्णु आपकी रक्षा करें। १।

(- वाक्पतिराज)

लक्ष्मीं यत्परिचारिकेति नयनं यस्येति भासापतिं
यत्पादार्घभवेति नाकसरितं येनोद्धृतेति श्रुतिम्।
ईशं यत्तनुभागभागिति जनः शुश्रूषते सादरं
भूयाद्विश्वनमस्यमानमहिमा भूत्यै स वः केशवः।।२।।

समन्तभद्रस्य।

लक्ष्मी जिनकी परिचारिका हैं, सूर्य-चन्द्रमा नेत्र हैं, मन्दाकिनी (जिनके) पादार्घ्य-जल से उद्भूत हैं, वेदों का जिन्होंने उद्धार किया है, - इस प्रकार जिनके विभिन्न अंगों की लोग सेवा करने के लिए इच्छुक हैं, वे सबके द्वारा प्रणम्य महिमा वाले भगवान् विष्णु आपको वैभव प्रदान करें। २।

(- समन्तभद्र)

संसारार्तिपरिश्रमाध्वविटपी क्षीरोदवापीपयः-
क्रीडानाटकनायको विजयते सत्कर्म्मबीजाङ्कुरः।
दैत्यस्त्रीस्तनपालिपाणिजपदव्यालोपशिल्पोत्तरो
देवः श्रीवदनेन्दुबिम्बलडहज्योत्स्नाचकोरो हरिः।।३।।

भानोः।

उन भगवान् विष्णु की जय हो, जो संसार के पीड़ा भरे मार्ग पर चलने के कारण थके (पथिकों के लिए) मार्ग में स्थित (छायादार) वृक्ष हैं, क्षीरसागर रूपी बावली के (मधुर) जल हैं, लीलानाटक के नायक हैं, शुभकर्मों के बीज से समुत्पन्न अंकुर हैं, दैत्याङ्गनाओं के स्तनों पर विद्यमान नखचिह्नों को विलुप्त कर देने वाले महाशिल्पी हैं, (अर्थात् विष्णु के द्वारा मारे गये दैत्यों की स्त्रियों के स्तनमर्दन के सुख से वंचित हो जाते हैं-) तथा लक्ष्मी के रमणीय मुखचन्द्र-बिम्ब की चाँदनी में (अनुरक्त) चकोर हैं। ३।

(- भानु)

बीजं ब्रह्मैव देवो मधु जलनिधयः कर्णिका स्वर्णशैलः
कन्दो नागाधिराजो वियदपि विपुलः पत्रकोशावकाशः।
द्वीपाः पत्राणि मेघा मधुपकुलममूस्तारका गर्भधूलि-
र्यस्यैतन्नाभिपद्मं भुवनमिति स वः शर्म्म देवो दधातु।।४।।

हलायुधस्य।

वे भगवान् विष्णु आपका कल्याण करें, जिनकी (नाभि में स्थित कमल का) बीज (स्वयं) ब्रह्म है, समुद्र मधु हैं, सुमेरुपर्वत कर्णिका (-कनी-) है, नागराज कन्द (-जड़) हैं, विशाल आकाश पत्तों के मध्य में विद्यमान रिक्त स्थान है, द्वीप पत्ते हैं, मेघ भ्रमरवृन्द हैं, भुवन, नाभिगत इसी कमल में स्थित है। ४।

(- हलायुध)

यं लक्ष्मीरुपजीवति स्म भजते यं भारती संभ्रमा-
देतस्मै किमु दीयतां कथमसावस्मादृशैः स्तूयताम्।
सेव्यो वा कथमेष यस्य शिरसा धत्ते पदार्घ्यं शिव-
स्तस्मात्कृत्यमजानतो मम मनोवृत्तेः प्रमाणं हरिः।।५।।

तिलचन्द्रस्य।

लक्ष्मी जिनके समीप बनी रहती हैं, सरस्वती साश्चर्य जिनकी भक्ति में निरत रहती हैं - उन प्रभु को हम कौन-सी वस्तु समर्पित करें ? हमारे सदृश लोग किस प्रकार उनकी स्तुति करें ? उनकी सेवा हम कैसे करें, जिनके पदार्घ्य-जल को स्वयं शिव भी अपने मस्तक पर धारण करते हैं। इस प्रकार पूजन-विधि से अपरिचित मेरे हृदय में भगवान् के प्रति कैसी भावना है, इसके प्रमाण स्वयं भगवान् ही हैं। ५।

(- तिलचन्द्र)

६४. हरिभक्तिः

बद्धेनाञ्जलिना नतेन शिरसा गात्रैः सरोमोद्गमैः
कण्ठेन स्वरगद्गदेन नयनेनोदीर्णवाष्पाम्बुना।
नित्यं त्वच्चरणारविन्दयुगलध्यानामृतास्वादिना-
मस्माकं सरसीरुहाक्ष सततं सम्पद्यतां जीवितम्।।१।।

श्रीकुलशेखरस्य।

६४. हरि-भक्ति

हे कमलनयन ! हाथ जोड़े, शिर झुकाये, रोमाञ्चित अंगों, गद्गद कण्ठ-स्वर और छलछलाये नेत्रों से सदैव आपके चरणकमलद्वय के ध्यान का अमृत चखते हुए (ही) हम लोगों का जीवन बीते। १।

(- श्रीकुलशेखर)

नास्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे
यद्यद्भव्यं भवतु भगवन् पूर्व्वकर्म्मानुरूपम्।
एतत्प्रार्थ्यं मम बहुमतं जन्मजन्मान्तरेपि
त्वत्पादाम्भोरुहयुगलके निश्चला भक्तिरस्तु।।२।।

तस्यैव।

भगवन्! मेरी न तो धर्म में आस्था है और न धन-संग्रह में, और न ही इच्छाओं के (यथेच्छ) उपभोग में। पूर्वजन्म के कर्मों के अनुरूप जो होना है, वह भी हो (-उसमें हस्तक्षेप के लिए मैं आपसे नहीं कहता।) मुझे तो (केवल) यही प्रार्थना (आपसे) करनी है कि जन्म-जन्मान्तर में भी आपके चरणकमलयुग्म में मेरी अविचल भक्ति-भावना अवश्य बनी रहे। २।

मज्जन्मनः फलमिदं मधुकैटभारे
मत्प्रार्थनैव मदनुग्रह एष एव।
त्वद्भृत्यभृत्यपरिचारकभृत्यभृत्य-
भृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ।।३।।

तस्यैव।

हे मधु-कैटभ के संहारक भगवन् ! मेरे जन्म का यही फल है, यही मेरी प्रार्थना है और यही मुझ पर (आपका) अनुग्रह (होगा) कि हे लोकनाथ ! आप मेरा स्मरण अपनी लम्बी दास-परम्परा के बिल्कुल अन्तिम दास के रूप में करते रहें। ३।

(- वही)

नाहं वन्दे तव चरणयोर्द्वन्द्वमद्वन्द्वहेतोः
कुम्भीपाकं गुरुमपि हरे नारकं नापनेतुम्।
रम्या रामा मृदृतनुलता नन्दने नाभिरन्तुं
भावे भावे हृदयभवने भावयेयं भवन्तम्।।४।।

तस्यैव।

हे हरे ! मैं आपके चरणयुग्म की वन्दना अद्वैतभाव की (उपलब्धि) के लिए नहीं करता। प्रबल कुम्भीपाक नरक (में मुझे न जाना पड़े, अतः उस) को हटाने के लिए भी (मैं आपसे प्रार्थना) नहीं करता। स्वर्ग के नन्दनवन में कोमल शरीर वाली मनोहर रमणियों से रमण करना भी (मेरा इष्ट) नहीं है। (मैं तो केवल यही चाहता हूँ कि) प्रत्येक जन्म में, हृदय-मन्दिर में, मैं (केवल) आपका स्मरण-चिन्तन भर करता रहूँ। ४।

(- वही)

मुकुन्द मूर्धा प्रणिपत्य याचे
भवन्तमेकान्तमियन्तमर्थम्।
अविस्मृतिस्त्वच्चरणारविन्दे
भवे भवे मेस्तु तव प्रसादात्।।५।।

कस्यचित्।

हे मुकुन्द ! मस्तक झुकाकर आपसे मैं केवल यही प्रार्थना करता हूँ कि प्रत्येक जन्म में, आपकी कृपा से मुझे चरण-कमलों का (कभी) विस्मरण न हो (-मैं सदैव आपका स्मरण करता रहूँ)। ५।

(- अज्ञात कवि)

६५. समुद्रमथने हरिः

श्रेयोस्याश्चिरमस्तु मन्दरगिरेर्माघानि पार्श्वैरियं
मावाष्टम्भि महोर्मिभिः फणिपतेर्मालेपि लालाविषैः।
इत्याकूतजुषः श्रियं जलनिधेरर्धोत्थितां पश्यतो
वाचोन्तः स्फुरिता बहिर्विकृतिभिर्व्यक्ता हरेः पान्तु वः।।१।।

वाक्पतिराजस्य।

६५. समुद्र-मन्थन के समय हरि

(समुद्र-मन्थन के समय) लक्ष्मी जी जब समुद्र से आधी ही ऊपर उठी थीं, तो उन्हें सप्रयोजन देखते हुए भगवान् विष्णु ने मन में (सोचा, कि) ' इस (लक्ष्मी) का सदैव कल्याण हो, पापभावना (कभी इसका स्पर्श तक) न करे, मन्दराचल के पास में उठी समुद्री लहरों की चपेट में यह न आये तथा नागराज के भयंकर विष का भी इस पर प्रभाव न हो-' भगवान् के ये वचन उठे तो उनके अन्तःकरण में ही, लेकिन उनकी चेष्टाओं से वे बाहर भी व्यक्त हो गये। हरि के वे ही वचन आपकी रक्षा करें। १।

(-वाक्पतिराज)

पाण्डुलक्ष्मीकुचाभोगे नर्तिता हरिणा दृशः।
औत्सुक्यादिव तेनादौ निहिता वरणस्रजः।।२।।

श्रीमत्केशवसेनदेवस्य।

(स्वयंवर के समय) भगवान् के नेत्र लक्ष्मी के गौरवर्णीय स्तनों के परिक्षेत्र में ही घूमते रहे। (इसी) उत्सुकता के कारण उन्होंने (लक्ष्मी से) पहले ही लक्ष्मी के कण्ठ में वरण-हेतु जयमालाएँ डाल दीं। २।

(- श्रीमत्केशवसेनदेव)

पातु त्रिलोकीं हरिरम्बुराशौ
प्रमथ्यमाने कमलां विलोक्य।
अज्ञातहस्तच्युतभोगिनेत्रः
कुर्व्वन् वृथा बाहुगतागतानि।।३।।

त्रिभुवनसरस्वत्याः।

समुद्र-मन्थन के समय, लक्ष्मी जी को देखकर विष्णु (उनमें इतने तल्लीन हो गये कि) उनके हाथ से (मन्थन-रज्जु के रूप में गृहीत) नागराज अनजाने ही छूट गये, अपनी आँखों पर उनका वश नहीं रहा और अपने हाथों को वे (इधर-उधर) व्यर्थ ही लाते और ले जाते रहे। (लक्ष्मी के अवलोकन में तल्लीन) ऐसे विष्णु तीनों लोकों की रक्षा करें। ३।

(- त्रिभुवन सरस्वती)

ग्रावृणा नासि गिरेः क्षता न पयसाप्यार्तासि न म्लापिता
निश्वासैः फणिनोऽसि न त्वदनुगा नायासिता कापि न।
स्वं वेश्म प्रतिगच्छतोरिति मुहुः श्रीशार्ङ्गिणोः सस्पृहं
सा प्रश्नोत्तरयुग्मपङ्क्तिरुभयोरत्यायता पातु वः।।४।।

कस्यचित्।

(समुद्र-मन्थन के अनन्तर लक्ष्मी को साथ लेकर) अपने घर जा रहे विष्णु, बार-बार बड़ी लालसा से (लक्ष्मीजी से) पूछ रहे थे- '(समुद्र से ऊपर उठते समय) मन्दराचल के पत्थरों से तुम्हें चोट तो नहीं लगी ? (समुद्र के खारी) पानी से तुम्हें (खुजली का) कष्ट तो नहीं हुआ ? नागराज वासुकि की लम्बी-लम्बी (विषमयी) साँसों से तो तुम नहीं कुंभलाई? तुम्हारे संगी-साथियों में से तो किसी को कोई कष्ट नहीं हुआ न?' - लक्ष्मी और विष्णु के मध्य हुए प्रश्नोत्तर की यह सुदीर्घ श्रृंखला आपकी रक्षा करे। ४।

(-अज्ञात कवि)

पाथोधेः परिमथ्यमानसलिलादर्धोत्थितायाः श्रियः
मानन्दोल्लसितभ्रुवः कुटिलया दृष्ट्यैव पीताननः।
अज्ञातस्वकरद्वयीविगलितव्यालोलमन्थोरगः
शून्ये बाहुगतागतानि रचयन्नाराणः पातु वः।।५।।

सागरस्य।

समुद्र-मन्थन के समय, जल से आधी ही ऊपर उठी लक्ष्मी ने, भौंहों को आनन्द से ऊपर उठाकर, जिस कुटिल दृष्टि से विष्णु को देखा, उसके कारण उनके हाथों से अनजाने ही मन्थन-रज्जु के रूप में व्यवहृत नागराज छूट गये और वे स्वयं शून्य में हाथों को (इधर-उधर) झिटकने लगे। ऐसे नारायण आपकी रक्षा करें। ५।

(-सागर)

६६. समुद्रोत्थितलक्ष्मीः

सम्पूर्णः पुनरभ्युदेति किरणैरिन्दुस्ततो दन्तिनः
कुम्भद्वन्द्वमिदं पुनः सुरतरोरग्रोल्लसन्मञ्जरी।
इत्थं तद्वदनस्तनद्वयवलद्रोमावलीषु भ्रमः
क्षीराब्धेर्मथनेऽभवद्विविषदां लक्ष्मीरसावस्तु वः।।१।।

६६. समुद्र से ऊपर उठी लक्ष्मी

'पहले किरणों से युक्त पूर्णचन्द्र निकला, तत्पश्चात् हाथी के दो कुम्भस्थल और तदनन्तर कल्पवृक्ष की आगे से झूमती हुई मंजरी प्रकट हुई' – समुद्र-मन्थन के समय (जिन लक्ष्मीजी के प्रकट होने पर) देवताओं को उनके मुख, स्तनयुग्म और त्रिवलिगत रोमावली के विषय में उपर्युक्त (चन्द्रादिरूप में) भ्रम हुए, वे आपके लिए (सुख, समृद्धि और सौभाग्य की संवाहिका सिद्ध) हों। १।

(- अज्ञात कवि)

सानन्दं त्रिदशैः सविस्मयमविश्वस्तैः सुरद्वेषिभिः
साश्चर्यं सुरसुन्दरीपरिजनैः सेर्ष्यं च रम्भादिभिः।
साकूतं च सकौतुकं च समनोह्लादं च कंसद्विषा
दृष्टा दुग्धमहोदधिप्रमथने लक्ष्मीः शिवायान्तु वः।।२।।

शङ्करदेवस्य।

वे लक्ष्मी जी आपका कल्याण करें, जिन्हें क्षीरसमुद्र के मन्थन के समय देवताओं ने आनन्द से, अविश्वासी दैत्यों ने विस्मय से, देवाङ्गनाओं के सेवकों ने आश्चर्य से, रम्भादि अप्सराओं ने ईर्ष्या से और भगवान् विष्णु ने साभिप्राय, कौतुहल सहित और आन्तरिक उल्लासपूर्वक देखा। २।

(- शङ्करदेव)

जयति महोदधिमथने मुररिपुपरिरम्भसम्भृता लक्ष्मीः।
सत्वरसत्रपसरभससपुलकसोत्कम्पसस्वेदा।।३।।

कस्यचित्

समुद्र-मन्थन के समय (उससे निकली) लक्ष्मी का विष्णु ने जब आलिङ्गन किया तो वे तत्काल लज्जा, रोष, आनन्द और उत्कण्ठा (प्रभृति भावों के एक साथ उत्पन्न होने) के कारण पसीने-पसीने हो उठीं। ऐसी लक्ष्मीजी की जय हो ! ३।

(- अज्ञात कवि)

मन्थानोल्लासलीलाचलचिकुरमिलत्कुण्डलां कर्णपालिं
मिथ्यैवोन्मोचयन्त्याः कृतकपटपरावृत्तयस्ते कटाक्षाः।
लक्ष्म्याः पायासुरन्तः स्मरभरविकसत्स्मेरगंडस्थलाया
लज्जालोलं बलन्तो मधुरिपुवदनाम्भोजभृङ्गाश्चिरं वः।।४।।

भोजदेवस्य

(समुद्र-) मन्थन के आनन्द की क्रीड़ा से हिलती हुई केशराशि से जुड़े कुण्डल वाले कान के किनारे को झूठे ही खोलती (-सहलाती-) हुई तथा कामभावना के विकास से मुस्कराते हुए कपोलों वाली लक्ष्मीजी के वे कटाक्ष चिरकाल तक आपकी रक्षा करें, जो लज्जा तथा चंचलता से (इधर-उधर) घूमते हुए (कभी-कभी) बनावटी छल से वापस (भी) मुड़ जाते हैं (लेकिन अन्ततः) विष्णु के मुख-कमल पर (पुनः) भौंरों की तरह मँडराने लगते हैं। ४।

(- भोजदेव)

श्रियः क्षीराम्भेधेर्निजविनयनम्रेण वपुषा
शनैरुत्तिष्ठन्त्याः पवनचलितेन्दीवरदृशः।
कटाक्षो मन्दाक्षस्तिमितलुलितभ्रूर्हरिमनु
प्रकीर्णः कालिन्दीलघुलहरिवृत्तिर्विजयते।। ५।।

कस्यचित्।

क्षीरसमुद्र से, शनैः शनैः, अपने विनीत व्यक्तित्व के साथ, ऊपर उठती हुई लक्ष्मी के, वायु के झकोरे से प्रफुल्लित पंखुरियों वाले नीलकमल के सदृश नयन के उस कटाक्ष की जय हो, जो विष्णु के पीछे-पीछे मँडराते हुए (कभी) शिथिल हो जाता है, (कभी) मुँद जाता है, (और कभी) भौंहों को हिलाता है तथा (इस प्रकार) जो यमुना की छोटी-छोटी लहरियों के स्वाभाविक व्यवहार (की प्रतीति कराता) है। ५।

(- अज्ञात कवि)

६७. लक्ष्मीस्वयम्वरः

सोद्वेगं करिकृत्तिवाससि भवद्व्रीडान्वितं ब्रह्मणि
त्रैलोक्यैकगुरावनादरबलत्तारं शचीभर्तरि।
त्रासामीलितपक्ष्म भास्वति लसत्प्रेमप्रसन्नं हरौ
क्षीरोदोत्थितया श्रिया विनिहितं चक्षुः शिवायास्तु वः।।१।।

भारवेः।

६७. लक्ष्मी-स्वयंवर

क्षीरसागर से ऊपर उठती हुई लक्ष्मीजी ने गज चर्मधारी शिव पर उद्वेग से, तीनों लोकों के गुरु ब्रह्मा पर लज्जा से, शचीपति इन्द्र पर अत्यन्त तिरस्कार से तथा कान्तिमय भगवान् विष्णु पर प्रेम, प्रसन्नता तथा सुन्दरतापूर्वक, किन्तु भय से मुँदी पलकों वाली दृष्टि डाली। भगवती महालक्ष्मी की वही दृष्टि आपका कल्याण करे। १।

(- भारवि)

समुद्रमथनव्यग्रसुरसन्दोहनिस्पृहाः।
लग्नाः कृष्णस्य वक्त्रेन्दौ पान्तु वो दृष्टयः श्रियः।।२।।

उमापतिधरस्य।

लक्ष्मीजी की वे चितवनें आपकी रक्षा करें, जो समुद्र-मन्थन से बेचैन (अन्य) देवों के प्रति तो उदासीन हैं, किन्तु कृष्ण के मुख-चन्द्र पर (एक टक रूप से) केन्द्रित हैं। २।

(-उमापतिधर)

सोत्साहं दधति स्वयंवरमहारङ्गे मिथः स्पर्धया
नेपथ्यप्रतिपन्नचित्रकलनाश्चर्यं सुराणां गणे।

उद्यान्त्या मकरालयात्कमलया सम्भावितः केनचिद्-
दृक्पातेन विरूढगूढहसितानन्दो हरिः पातु वः।।३।।

महादेवस्य।

स्वयंवर के विशाल रंगमंच पर एक दूसरे से होड़ करते हुए देवगण बड़े उत्साह से जब नेपथ्य में विचित्र-विचित्र हिसाव लगा रहे थे (कि किसके कण्ठ में लक्ष्मी अपनी जयमाला डालेंगी), उस समय भगवान् विष्णु बड़े निगूढ़ अभिप्राय से हँस पड़े। समुद्र से ऊपर उठती हुई लक्ष्मी जी ने (भी) उनके उस निगूढ़ अभिप्राय को (विष्णु के मात्र दृष्टिपात) से ही समझ लिया। ऐसे (निगूढ अभिप्राय से) हँसते हुए आनन्दित भगवान् विष्णु आपकी रक्षा करें। ३।

(- महादेव)

आख्याते हसितं पितामह इति त्रस्तं कपालीति च
व्यावृत्तं गुरुरित्यथो दहन इत्याविष्कृता भीरुता
पौलोमीपतिरित्यसूयितमथ व्रीडावनम्रं श्रिया
पायाद्वः पुरुषोत्तमोयमिति च न्यस्तः स पुष्पाञ्जलिः।।४।।

क्षेमेश्वरस्य।

(स्वयम्बर के समय जयमाला हाथ में लेकर घूमती हुई लक्ष्मी से परिचय कराते हुए जब किसी ने) कहा (कि) 'यह पितामह (ब्रह्माजी) हैं, तो वे (यह सोचकर) हँस पड़ीं (कि बुढ़ापे में इन्हें ब्याह का शौक चर्राया है !), जब मुण्डमाला पहने शिव (का परिचय कराया गया तो मुण्डमाला की भयानकता से वे) डर गईं। देवगुरु (बृहस्पति के कण्ठ में माला डालने से उन्होंने यह कहकर) मना कर दिया कि यह तो गुरुजन हैं (और गुरु से शिष्या का विवाह करना शास्त्रों में अनुचित माना गया है); (उनके सामने जब) अग्नि आये, तो भय से (वे पीछे) हट गईं। शचीपति इन्द्र का तिरस्कार उन्होंने (यह कहकर) किया (कि इनके पास तो पहले से ही एक पत्नी है)। (अन्त में) उन्होंने लज्जा और विनम्रता से, (भगवान् विष्णु के कण्ठ में), 'यही सर्वश्रेष्ठ पुरुष हैं' (कहकर) पुष्पाञ्जलि डाल दी। वही पुष्पाञ्जलि आपकी रक्षा करे। ४।

(- क्षेमेश्वर)

मुग्धे मुञ्च विषादमत्र बलभित्कम्पो गुरुस्त्यज्यतां
सद्भावं भज पुण्डरीकनयने मान्यानिमान्मानय।

लक्ष्मीं शिक्षयतः स्वयंवरविधौ धन्वन्तरेर्वाक्छला-
दित्यन्यप्रतिषेधमात्मनि विधिं श्रृण्वन् हरिः पातु वः।।५।।

पुण्डरीकस्य।

अरी भोली लक्ष्मी ! (अब) विषाद मत करो। यहाँ (-स्वयम्वर की इस सभा में -) बलनामक दैत्य के संहारक (भगवान् विष्णु) स्वयं उपस्थित हैं। (तुम्हें) डरने-काँपने की कोई आवश्यकता नहीं है। कमलनयन (विष्णु) के प्रति सद्भावना रखो, ये (तुम्हारे) मान्य हैं, इनका सम्मान करो'-इस प्रकार, स्वयम्वर की प्रक्रिया में (वैद्यराज) धन्वन्तरि जब वाक्छल से लक्ष्मी को, अन्यों को छोड़ने और विष्णु का वरण करने की शिक्षा दे रहे थे, तो उसे सुनते हुए विष्णु आपकी रक्षा करें। ५।

(- पुण्डरीक)

६८. लक्ष्मीश्रृङ्गारः

शान्तं शेते न शेषः स्थगयति तिमिरं कौस्तुभीर्नापि भासः
साम ब्रह्मापि गीत्वा मुकुलितनयनो निद्रया ध्यायतीव।
लक्ष्म्याः कर्णे गदित्वा मृदुकमिति हरेर्व्रीडया हारिहास्यं
हस्तो हस्तेन नीवीवसनविघटनाद्वारितो वः पुनातु।।१।।

कस्यचित्।

६८. लक्ष्मी का श्रृङ्गार

(रति-क्रीड़ा से पूर्व, एकान्त के अभाव से आशंकित लक्ष्मीजी को समझाते हुए विष्णु का कथन है -)

'शेषनाग शान्ति से सो रहा है। कौस्तुभ मणि के प्रकाश से अँधेरा समाप्त नहीं हुआ है। सामगान करके ब्रह्मा भी नींद या ध्यान में आँखें बन्द किये हुए हैं। (अतः तुम्हें यहाँ एकान्त ही समझना चाहिए)' - इस प्रकार, धीरे से, लक्ष्मी को कान में, कोमल शब्दों में समझाकर, एक हाथ से लाजभरी लक्ष्मी के हाथ को रोकते हुए और दूसरे हाथ से नीवी-बन्धन को खोलते हुए विष्णु की मनोहर मुस्कान आपको पवित्र करे। १।

(- अज्ञात कवि)

तिर्यक्कृत्वादबुधः फणी मणिरुचोप्यस्योपधानीकृते-
र्मन्दारैः स्थगितांशवः स्तनघनस्वेदास्पदं कौस्तुभः।

नाभीपद्मरजोन्ध एव सततं वेधा मुधा लज्जसे
लक्ष्मीमित्यवबोधयन्निधुवनारम्भे हरिः पातु वः।।२।।

गणपतेः।

निधुवन (-रतिक्रीड़ा-) से पहले, लक्ष्मी को समझाते हुए (विष्णु कह रहे हैं-) 'पशु होने के कारण शेषनाग नादान है; इसकी मणि, जिसे हमने तकिया बना रखा है, से निकलने वाली किरणों को मन्दार पुष्पों की माला आच्छादित किये हैं; (मेरी) कौस्तुभमणि पर तुम्हारे स्तनरूपी मेघों ने अँधेरा और कोहरा छा दिया है, और ब्रह्मा जी की (आँख में) कमल के परागकण गिर गये हैं, इसलिए उन्हें भी दिखाई नहीं दे रहा है, अतः तुम व्यर्थ में ही लज्जा कर रही हो।' - लक्ष्मी को इस प्रकार (सहवास-हेतु) समझाते (और तैयार करते हुए) विष्णु आपकी रक्षा करें। २।

(- गणपति)

मिथ्याकण्डूतिसाचीकृतगलसरणिर्येषु जातो गरुत्मा-
न्धे निद्रां नाटयद्भिः शयनफणिफणैर्लक्षिता न श्रुताश्च।
ये च ध्यानानुबन्धच्छलमुकुलदृशा वेधसा नैव दृष्टा-
स्ते लक्ष्मीं नर्मयन्तो निधुवनविधयः पान्तु वो माधवस्य।।३।।

राजशेखरस्य।

लक्ष्मी को रति-क्रीड़ा के लिए तैयार करते हुए विष्णु की वे प्राक्-क्रीड़ा विधियाँ आपकी रक्षा करें, जिनमें गरुड़जी ने झूठी खुजली (के बहाने) अपनी गर्दन को पीछे घुमा लिया है (अर्थात् वे प्राक्-क्रीड़ा को न देखने का अभिनय कर रहे थे); शय्यारूप में विद्यमान शेषनाग के फन भी निद्रित होने का नाटक कर रहे थे, अतः उन्होंने भी उस प्राक्-क्रीड़ा को न तो देखा और न सुना ही। और ब्रह्माजी भी ध्यान में आँखें बन्द किये हुए थे, अतः उन्होंने भी उन विधियों को नहीं देखा। ३।

(-राजशेखर)

उत्तिष्ठन्त्या रतान्ते भरमुरगपतौ पाणिनैकेन कृत्वा
धृत्वा चान्येन वासो विगलितकवरीभारमंसे वहन्त्याः।
भूयस्तत्कालकान्तिद्विगुणितसुरतप्रीतिना शौरिणा वः
शय्यामालिङ्ग्य नीतं वपुरलसलसद्बाहु लक्ष्म्याः पुनातु।।४।।

वररुचेः।

रति-क्रीड़ा के समाप्त होने पर, शेषनाग का सहारा लेकर उठती हुई लक्ष्मी अपने एक हाथ से खुले हुए जूड़े को कन्धे पर संभाल रहीं थीं और दूसरे से अपने वस्त्र ठीक कर रहीं थीं। उस समय उनकी सुन्दरता को देखकर विष्णु पुनः रतिक्रीड़ा के लिए, दूने अनुराग से भर उठे और वे उन्हें आलिङ्गन में बाँधकर शय्या पर ले गये। (इस प्रकार) पौनः पुन्येन की गई (रति-क्रीड़ा से) अलसाई भुजाओं से सुशोभित लक्ष्मीजी का (कान्तिमय) स्वरूप आपको पवित्र करे। ४।

(- वररुचि)

कचचिबुककुचाग्रे पाणिषु व्यापृतेषु
प्रथमजलधिपुत्रीसङ्गमे रङ्गधाम्नि।
ग्रथितनिबिडनीवीग्रन्थिनिर्मोचनेच्छो-
श्चतुरधिकभुजाशा शार्ङ्गिणो वः पुनातु।।५।।

दाक्षिणात्यस्य।

शयनकक्ष में, लक्ष्मी के साथ प्रथम समागम की वेला में, (लक्ष्मी के द्वारा) केशराशि, चिबुक और स्तनों के ऊपर हाथ रख लेने पर, (लक्ष्मी की) मजबूती से बँधी नीवी की गांठ को खोलने के इच्छुक विष्णु (ने मन में) विचार किया कि इस समय यदि उनके चार से अधिक भुजाएँ होतीं तो कितना अच्छा होता! ऐसे चार से अधिक भुजाओं की आकांक्षा वाले भगवान् विष्णु आपको पवित्र करें। ५।

(- दाक्षिणात्य)

६९. लक्ष्मीः

प्रवीरहठभोग्यापि जयति श्रीर्महासती।
कृत्स्नत्रैलोकक्यवासापि कृष्णोरस्थलशायिनी।।१।।

राजशेखरस्य।

६९. लक्ष्मी

उन लक्ष्मी जी की जय हो ! जो श्रेष्ठ वीरों के द्वारा बलपूर्वक भोगी जाने पर भी महासती हैं तथा तीनों लोकों में निवास करने पर भी, केवल भगवान् कृष्ण के वक्षः स्थल पर ही सोती हैं। १।

(- राजशेखर)

विद्वानक्षरनष्टधीरिति शुचिर्धर्मध्वजीति स्थिर-
स्तब्धः क्रुद्ध इति ग्रहीति सुदृढ क्षन्ता लघीयानिति।
मायावीति च नीतिशास्त्रकुशलो यामन्तरेणेश्वरै-
र्गण्यन्ते गुणिनोऽपि दूषणपदं तस्यै नमस्ते श्रिये।।२।।

सोलूकस्य।

उन लक्ष्मी जी को नमस्कार ! जिनके अभाव में गुणवानों के गुण भी दोष गिने जाते हैं। (धन-समृद्धि से रहित) विद्वान् को (पढ़ते-पढ़ते) अक्षरों में नष्ट बुद्धि वाला, स्थिर बुद्धि व्यक्ति को जड़, सुदृढ़ व्यक्ति को हठी और क्रोधी, तथा क्षमाशील व्यक्ति को छोटा (-क्षुद्र तथा कमजोर-) एवं नीति-शास्त्र में निष्णात व्यक्ति को मायावी समझा जाता है। २।

(- सोलूक)

विष्णुवक्षस्थले लक्ष्मीरस्ति कौस्तुभदीपिते
पुनातु निवसन्ती वो दृढदोस्तम्भतोरणे।।३।।

राजशेखरस्य।

विष्णु के कौस्तुभमणि से प्रकाशित वक्षःस्थल पर, (उनके) सुदृढ़ भुजाओं रूपी स्तम्भ-तोरण में निवास करती हुई लक्ष्मी जी आपको पवित्र करें। ३।

(- राजशेखर)

जयति श्रीमुखं कान्तकौस्तुभप्रतिबिम्बितम्।
चन्द्रमा मनसो जात इति यद्गायति श्रुतिः।।४।।

वेद 'चन्द्रमा मनसो जातः' रूप में, जिनकी स्तुति करते हैं, उन्हीं पति (- भगवान् विष्णु-) के वक्षः स्थल पर विद्यमान कौस्तुभमणि में प्रतिविम्बित लक्ष्मी जी के सुन्दर मुख की जय हो।

१. ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में पठित पूरा मन्त्र इस प्रकार है -
'चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽजायत।
श्रोत्राद्वायुस्तथा प्राणः मुखादग्निरजायत।।

वृत्ते साङ्गविवाहमङ्गलविधौ लब्धापि दैत्यद्रुहः
सौहार्दं विमनाः पुनातु भवती लक्ष्मीः स्मरन्ती पितुः।
यामाश्वासयतीव सोदरतया प्रत्यग्रबिम्बग्रह-
व्याजादङ्कगतामनङ्कुशनिजस्नेहो मुहुः कौस्तुभः।।५।।

शरणदेवस्य।

दैत्यारि भगवान् विष्णु के साथ सर्वाङ्गपूर्ण पद्धति से विवाह के सम्पन्न हो जाने पर और पति का (समस्त) प्रेम प्राप्त होने पर भी, पिता की याद में खोई हुई लक्ष्मी उदास थीं। उस समय सगा भाई होने के कारण मणिरत्न कौस्तुभ बार-बार अपने में पड़ती परछाईं के बहाने मानों उन्हें गोद में बैठाकर, असीम प्रेम दिखलाते हुए, आश्वासन-सा दे रहा था। ऐसी लक्ष्मी जी आपको पवित्र करें। ५।

विशेष-कौस्तुभमणि और लक्ष्मी दोनों का ही आविर्भाव समुद्र-मन्थन से हुआ था। इसी आधार पर उपर्युक्त पद्य में कवि ने दोनों के मध्य सहोदर-सम्बन्ध आरोपित किया है।

(- शरणदेव)

७०. लक्ष्म्युपालम्भः

कोपस्तेज इति ग्रहः स्थितिरिति क्रीडेति दुश्चेष्टता
माया च व्यवहारकौशलमिति स्वच्छत्वमित्यज्ञता।
दौर्जन्यं स्फुटवादितेति धनिनामग्रे बुधैर्यद्वशा-
द्दोषोऽपि व्यपदिश्यते गुणतया तस्यै नमोऽस्तु श्रिये।।१।।

शालूकस्य।

७०. लक्ष्मी को (दिये गये) उपालम्भ

उन लक्ष्मीजी को नमस्कार! जिनके कारण धनियों के दोषों को भी विद्वज्जन उनके सामने गुण (ही) बतलाते हैं। (धनवान्) व्यक्ति के क्रोध को तेज, हठ को दृढ़ता, दुश्चेष्टा को खिलवाड़, छल-कपट को व्यवहार-कौशल, अज्ञानता को स्वच्छता तथा दुर्जनता को स्पष्टवादिता (कहा जाता है)। १।

(- शालूक)

रत्नाकरस्तव पिता स्थितिरम्बुजेषु
भ्राता तुषारकिरणः पतिरादिदेवः।
केनापरेण कमले वत शिक्षितासि
सारङ्गश‍ृङ्गकुटिलानि विचेष्टितानि।।२।।

कस्यचित्।

हे लक्ष्मीजी ! रत्नों की खान समुद्र तुम्हारा पिता है, निवास तुम कमलों पर करती हो, चन्द्रमा तुम्हारा भाई है, पति हैं पुरुष पुरातन विष्णु। फिर (यह बतलाओ कि) तुमने हरिण की सींग के समान ये टेढ़ी (आदतें और) चेष्टाएँ कहाँ से सीखी हैं ? (अभिप्राय यह कि लक्ष्मी के परिवार में सभी तो गम्भीर और सरल हैं, फिर भी उनके व्यवहार में वक्रता क्यों दिखलाई देती है ?)। २।

(- अज्ञात कवि)

कस्मै चित्कपटाय कैटभरिपूरःपीठदीर्घालयां
देवि त्वामभिवाद्य कुप्यसि न चेत्तत्किं चिदाचक्ष्महे।
यत्ते मन्दिरमम्बुजन्म किमिदं विद्यागृहं यच्च ते
नीचान्नीचतरोपसर्पणमपामेतत्किमाचार्यकम्।।३।।

मुरारेः

हे देवि लक्ष्मी ! यदि तुम मुझ पर क्रोध न करो, तो तुम्हें प्रणाम कर मैं कुछ कहूँ? कैटभारि विष्णु के वक्षः स्थल पर तुम्हारा इतना बड़ा निवास-स्थान है, फिर भी (उसे छोड़कर) तुम पता नहीं किस छल-कपट के कारण कमल पर रहती हो ! फिर तुमने यह किस विद्यालय में तथा किस आचार्य के पास सीखा है, जो तुम पानी की धार की तरह निरन्तर नीच से नीचतर व्यक्ति के पास सरक कर चली जाती हो ! ३।

(- मुरारि)

अस्मान्मा भज कालकूटभगिनि स्वप्नेपि पद्मालये
व्याधीभूय कदर्थयन्ति बहुशो मातर्विकारा इमे।
यच्चक्षुर्न निरीक्षतेच्छविषयं नैवं श्रृणोति श्रुतिः
प्राणा एव वरं प्रयान्ति न पुनर्निर्यान्ति वाचो बहिः।।४।।

भवग्रामीणवाथोकस्य।

हे कालकूट (विष) की बहन लक्ष्मी ! कमलालये ! हमारा सेवन तो तुम (कभी) स्वप्न में भी न करना। (अभिप्राय यह कि हमारे पास मत आना, क्योंकि) हे माँ ! (धन-समृद्धि के आधिक्य से उत्पन्न) बहुसंख्यक विकार (हमें) रोग बनकर धिक्कारते हैं। (वे विकार ये हैं -) आँख अपने इच्छित विषय को देख नहीं पाती, कान सुन नहीं पाते और मुख से बोल भी नहीं निकल पाते- चाहे प्राण भले ही निकल जायें ! ४।

(- भवग्रामीणवाथोक)

लक्ष्मीर्नीचानुरक्तासि पुनरब्धिविलं विश
क्व मन्दरः क्व ते देवाः कस्त्वामुत्तोलयिष्यति।।५।।

कस्यचित्।

अरी लक्ष्मी ! तुम्हारा नीच (व्यक्तियों) से प्रेम है, इसलिए तुम पुनः समुद्र के गर्भ में ही चली जाओ। (अव) कहाँ है मन्दराचल और कहाँ हैं देवता, जो तुम्हें फिर ऊपर उठायेंगे ? ५।

(- अज्ञातकवि)

७१. सरस्वती

वीणाक्वाणलयोल्लासिलोलदङ्गुलिपल्लवः।
भारत्याः पातु भूतानि पाणिर्लसितकङ्कणः।।१।।

कङ्कणस्य।

७१. सरस्वती

देवी सरस्वती का कंगन से सुशोभित वह हाथ प्राणियों की रक्षा करे, जिसके अंगुलि-किसलय वीणा-नाद की लय से उल्लसित होकर (निरन्तर) थिरकते रहते हैं। १।

(- कङ्कण)

आदित्यादपि नित्यदीप्तममृतप्रस्यन्दि चन्द्रादपि
त्रैलोक्याभरणं मणेरपि तमःकाषं हुताशादपि।
विश्वालोकि विलोचनादपि परब्रह्मस्वरूपादपि
स्वान्तानन्दनमस्तु धाम जगतस्तोषाय सारस्वतम्।।२।।

बलदेवस्य।

(भगवती) सरस्वती का वह तेज संसार को सन्तोष प्रदान करे, जो सदैव सूर्य से अधिक दीप्तिमय, चन्द्रमा से अधिक अमृतवर्षी, तीनों लोकों को मणिरत्नों से अधिक विभूषित करने वाला, अग्नि से भी अधिक तिमिरनिवारक, नेत्र से अधिक विश्व-दर्शन कराने वाला तथा परब्रह्मस्वरूप से भी अधिक स्वान्तः सुख प्रदान करने वाला है। २।

निगूढं कुत्रापि क्वचिदपि बहिर्व्यक्तमधुरं
सरस्वत्याः स्रोतः परिमलगभीरं विजयते।
अतिस्वादुन्यन्तःपिहितरसरम्ये यदुपरि
प्लवन्ते भूयांसः कतिचिदपि मज्जन्ति निपुणाः।।३।।

गदाधरस्य।

सरस्वती का (ज्ञान और नदी रूप में) महाप्रवाह कहीं पर अन्तर्निहित रहता है और कहीं पर उसका माधुर्य प्रकट हो जाता है। सुगन्धि से सराबोर उस सारस्वत स्रोत की जय हो, जिसके अत्यन्त स्वादिष्ट तथा अन्तर्निहित रस से सुरम्य प्रवाह में कुछ निपुण लोग तो स्नान करके (निकल आते हैं) और बहुसंख्यक डूब जाते हैं। ३।

(-गदाधर)

क्वचिदिव रविर्जाड्यच्छेदि क्वचित्प्रचुराचिर-
द्युतिरिवि चमत्कारि क्वापि क्षपाकरवन्मृदु।
शिखिवदनृजु क्वापि क्वापि प्रदीपवदुज्ज्वलं
विजयि किमपि ज्योतिः सारस्वतं तदुपास्महे।।४।।

अपिदेवस्य।

उस अनिर्वचनीय सारस्वत ज्योति की जय हो ! जो कहीं पर सूर्य के सदृश जड़तानाशिनी है, कहीं जुगनू की तरह प्रचुरता से चमक बिखेरने वाली है, कहीं चन्द्रमा की तरह सुकोमल है, कहीं अग्नि की लपटों की तरह वक्र है और कहीं दीपक की तरह प्रकाशमयी है। हम उस दिव्य ज्योति की उपासना करते हैं। ४।

(- अपिदेव)

यस्य प्रसादपरमाणुरसायनेन
कल्पान्तरे सुकविकीर्तिशरीरमस्ति।
या कामधेनुरिव कामशतानि देवी
दुग्ध्वा प्रयच्छति नमामि सरस्वतीं ताम्।।५।।

पुरुषोत्तमदेवस्य।

मैं उन सरस्वती देवी को नमन करता हूँ, जिनकी प्रसन्नता के परमाणुओं से निर्मित रसायन से, श्रेष्ठ कवि का यशः शरीर कल्प-कल्पान्तरों में (भी सुरक्षित) रहता है तथा कामधेनु की तरह जो सैकड़ों कामनाओं की पूर्त्ति दोहनपूर्वक करती रहती हैं। ५।

(- पुरुषोत्तमदेव)

७२. प्रशस्तचन्द्रः

शृङ्गारे सूत्रधारः कुसुमशरमुनेराश्रमब्रह्मचारी
नारीणामादिदेवस्त्रिभुवनमहितो रागयज्ञे पुरोधाः।
ज्योत्स्नासत्रं दधानः पुरमथनजटाजूटकोटीशयालु-
र्देवः क्षीरोदजन्मा जयति कुमुदिनीनायकः श्वेतभानुः।।१।।

वसुकल्पस्य।

७२. प्रशस्त चन्द्रमा

क्षीरसागर में उत्पन्न हुए, कुमुदिनीपति महाराज चन्द्रदेव की जय हो ! (वे) मुनिवर कामदेव के आश्रम (-निवासी) ब्रह्मचारी, श्रृङ्गारनाटक के सूत्रधार, स्त्रियों के प्रथम आराध्यदेव और प्रेमयज्ञ के त्रिभुवन प्रसिद्ध पुरोहित (-ऋत्विक्) हैं। चन्द्रिका (के प्रसाररूपी) सत्रयाग[1] का अनुष्ठान करते हुए वे त्रिपुरारि भगवान् के जटाजूट के एक किनारे लेटे रहते हैं। १।

कामायुष्टोमयज्वा पुरमथनजटाचक्रकौमारभक्तिः
प्राणायामोपदेष्टा सरसिरुहवने शर्वरीसार्वभौमः।
देवो जागर्ति भानोर्भुवनभरभृतः स्कन्धविश्रामबन्धुः
शृङ्गाराद्वैतवादी शमितकुमुदिनी मौनमुद्रो मृगाङ्कः।।२।

मुरारेः।

कामदेव के आयुष्टोम यज्ञ के अनुष्ठाता, त्रिपुरारि शिव की जटाओं की कुमारावस्था के प्रेमी, कुमुदिनी-वन में प्राणायाम-साधना के उपदेशक, रात्रिरूपी नायिका के सार्वभौम (प्रेमी), त्रिभुवन का भार वहन करने वाले सूर्य के कन्धे पर विश्रान्तिकाल के सहचर, श्रृंगारजन्य अद्वैतवाद (के प्रतिपादक आचार्य) तथा कुमुदिनी की मौनमुद्रा को (उसे प्रफुल्लित कर) समाप्त करने वाले चन्द्रदेव, (देखो), जग रहे हैं। २।

(- मुरारि)

---

१. सोमयाग त्रिविध माने गये हैं-एकाह, अहीन तथा सत्रयाग। इनमें से वर्षभर (३६० दिन) चलने वाले यज्ञ सत्रयाग कहलाते हैं- अनु.

कन्दर्पस्य जगत्त्रयीविजयिनः साम्राज्यदीक्षागुरुः
कान्तामानशिलोच्छवृत्तिरखिलध्वान्ताभिचारे कृती।
देवस्त्र्यम्बकमौलिमण्डनसरित्तीरस्थलीतापसः
श्रृङ्गाराध्वरदीक्षितो विजयते राजा द्विजानामयम्।।३।।

विश्वेश्वरस्य।

द्विजों के राजा चन्द्रमा की विजय हो! वे तीनों लोकों के विजयी कामदेव की साम्राज्य-दीक्षा के गुरु हैं। (वे कुछ और न खा-पीकर, केवल पति की) चहेती स्त्रियों के मानरूपी शिलोञ्छ से अपनी जीविका चलाते हैं। अन्धकार-निवारण-हेतु समस्त तांत्रिक अनुष्ठानों के अनुष्ठान में वे सिद्धहस्त हैं। त्र्यम्वकेश्वर शिव के मस्तक पर स्थित गंगाजी के किनारे वे (सुदीर्घ काल से) तपस्या कर रहे हैं और श्रृंगार-यज्ञ के (अनुष्ठान-हेतु) उन्होंने दीक्षा भी प्राप्त कर ली है। ३।

(- विश्वेश्वर)

व्योमाम्भोनिधिपुण्डरीकममृतप्राधारधारागृहं
श्रृङ्गारद्रुमपुष्पमीश्वरशिखालङ्कारमुक्तामणिः।
कालाकारतमोऽभिभूतकुमुदग्रामापमृत्युञ्जयो
जीयान्मन्मथराष्ट्रपौष्टिकमहाशान्तिद्विजश्चन्द्रमाः।।४।।

उमापतिधरस्य।

कामदेव के राज्य में शन्ति-पौष्टिक कर्मों (के अनुष्ठान हेतु नियुक्त) ब्राह्मण चन्द्रदेव की जय हो। वे आकाश-सरोवर में प्रफुल्लित श्वेत कमल, अमृत की धारासार वर्षा के केन्द्र, श्रृङ्गारतरु के (प्रफुल्लित) पुष्प, शिव के जटाजूट को अलंकृत करने वाली मुक्तामाला, तथा अन्धकार रूपी मारकेश से ग्रस्त कुमुदकुसुमसमूह को अकाल मृत्यु से (उसी प्रकार) बचाने वाले हैं (जैसे मृत्युञ्जय मन्त्र का अनुष्ठान मारकेश से पीड़ित व्यक्ति के प्राणों का रक्षक है)। ४।

लीलासद्मप्रदीपस्त्रिपुरविजयिनः स्वर्णदीकेलिहंसः
कन्दर्पोल्लासबीजं रतिरसकलहक्लेशविच्छेदचक्रम्।
कह्वाराद्वैतबन्धुस्तिमिरजलनिधेरुच्छिखो वाडवाग्नि-
र्लक्ष्म्याः क्रीडारविन्दं जयति भुजभुवां वंशकन्दः सुधांशुः।।५।।

श्रीमत्केशवसेनस्य।

(रति-) क्रीड़ा-गृह के दीपक, त्रिपुरारि शिव के (मस्तक पर स्थित) स्वर्गङ्गा में क्रीड़ा करने वाले राजहंस, कामोल्लास के मूल कारण, संभोगजन्य आनन्द के (मध्य होने वाले) कलह-कष्ट को काटने वाले चक्र, कुमुदिनी कुसुमों के एकमात्र बन्धु, अन्धकार रूपी समुद्र को जलाती हुई वाडवाग्नि और लक्ष्मी (के हाथों में स्थित) लीलाकमल (के सदृश) तथा भुजप्रसूतों के वंशाङ्कुर, अमृतरश्मि (चन्द्रमा) की जय हो ! ५।

(- श्रीमत्केशवसेन)

७३. चन्द्रकला

श्यामायाः करजक्षतं रतिपतेर्जैत्रं धनुर्बन्धकी-
हृत्कम्बुक्रकचश्चकोरखुरलीसौहृद्यबीजाङ्कुरः।
चोरग्रामगजाङ्कुशः परिलसन्मन्दाकिनीरोहितो
ध्वान्ताम्भस्तिमिरैकनौर्विजयते बालः सुधादीधितिः।।१।।

उमापतेः।

७३. चन्द्रकला

चन्द्रमा की उस बालरश्मि की जय हो, जो रात्रि (रूपी नायिका के अंगों में) नखक्षत, कामदेव के जयशाली धनुष, वेश्याओं के हृदय-शंख को काटने वाली आरी, चकोरों के अभ्यास-सौहार्द के बीजाङ्कुर, चोरों के लिए हाथी के अंकुश और आकाशगंगा में सुशोभित (- तैरती हुई -) रोहू मछली और अन्धकार-जलधि (में विद्यमान) एकमात्र नौका (के सदृश प्रतीत होती है)। १।

(- उमापति)

लेखामनङ्गपुरतोरणकान्तिभाज-
मिन्दोर्विलोकय तनूदरि नूतनस्य।
देशान्तरप्रणयिनोरपि यत्र यूनो-
र्नूनं मिथः सखि मिलन्ति विलोकितानि।।२।।

वसुकल्पस्य।

हे कृशोदरि ! नये-नये (उदित) चन्द्रमा की उस कला को देखो, जो कामदेव के नगर-तोरण की कान्ति से युक्त (प्रतीत होती) है। अरी सखी ! दूसरे देश में प्रेम करने वाले तरुण-तरुणियों की चितवनें भी उसमें आपस में निश्चय ही मिल जाती हैं। २।

(- वसुकल्प)

विषाढदोषं तिमिरं निरस्यता
क्रमेण विद्धाग्रकलाशलाकया।
चिकित्सकेनेव विलोकनक्षमं
पुनर्नभश्चक्षुरिवेन्दुना कृतम्।।३।।

गणपतेः।

चन्द्रमा (रूपी कुशल) वैद्य ने अपनी प्रथम कला रूपी शलाका से आकाश (रूपी) आँख में वेध (-आपरेशन -) करके रात्रि के कारण बढ़ते हुए अन्धकाररूपी दोष को निकालते हुए उसे पुनः देखने के योग्य बना दिया है।

(- गणपति)

प्रसरत्तिमिरसरित्तरिरसतीहृद्दारुणारुणक्रकचः।
स्मरगृहकवाटविघटनराजतकुञ्जी कला शशिनः।।४।।

सेह्लोकस्य।

चन्द्रमा की कला फैलते हुए अन्धकार (की) नदी में नौका, पुंश्चली (-वेश्या-) स्त्री के हृदय को चीरने वाली लाल-लाल आरी, और कामदेव के भवन के किवाड़ों को खोलने वाली चाँदी की कुंजी (प्रतीत होती) है। ४।

(- सेह्लोक)

चैतन्यं नभसश्चकोररमणीकर्पूरपाली सुधा-
निर्यासद्रवदोहदस्य कुमुदस्तोमस्य सन्धुक्षणम्।
ध्वान्तोत्तुङ्गमतङ्गवारणसृणिः श्रृङ्गारबीजाङ्कुरः
पश्योदञ्चति सस्पृहं प्रणयिनि प्रालेयभानोः कला।।५।।

इन्द्रज्योतिषः।

हिमांशु (-चन्द्रमा) की कला आकाश का चैतन्य, चकोर-सुन्दरियों की कर्पूर-धारा, कुन्द समूहों की अमृतधारा के दोहद (-गर्भावस्था की इच्छा-) को और भी बढ़ाने वाली, अन्धकाररूपी ऊँचे और मतवाले हाथी को वश में करने वाली (अंकुश की पैनी) नोंक, और श्रृंगार बीज की अङ्कुर है। देखो ! वह (कला) प्रेमियों पर, कितनी अभिलाषापूर्वक उदित होकर, ऊपर से गिर रही है। ५।

(-इन्द्रज्योतिष)

७४. चन्द्रबिम्बः

अनलसजवापुष्पोत्पीडच्छवि प्रथमं ततः
समदयवनीगण्डच्छायं पुनर्मधुपिङ्गलम्।
तदनु च नवस्वर्णाम्भोजप्रभं शशिनस्तत-
स्तरुणि तु गवाकारं बिम्बं विभाति नभस्तले।।१।।

कस्यचित्।

७४. चन्द्रबिम्ब

तरुणि ! चन्द्रमा का बिम्ब, पहले, आकाश में, प्रफुल्लित और मसले हुए जवाकुसुम की छवि से युक्त (दिखाई देता है)। तत्पश्चात् वह (नशा पीने से) मस्त यवन-रमणी के कपोलों की प्रभा-सदृश और मधु (-शहद-) के तुल्य पीला-पीला दिखता है। इसके अनन्तर वह नये-नये (खिले) स्वर्णिम कमलों की कान्ति से युक्त (हो उठता) है, और (अन्त में) वह धरा की तरह (धुँधले-धुँधले) आकार का दिखता है। १।

(- अज्ञात कवि)

उद्दर्पहूणरमणीरमणोपमर्द-
भुग्नोन्नतस्तननिवेशनिभं हिमांशोः।
बिम्बं कठोरविसकाण्डकडारगौरै-
र्विष्णोः पदं प्रथममग्रकरैर्व्यनक्ति।।२।।

अपराजितरक्षितस्य।

अभिमान से उद्धृत हूणसुन्दरी के, संभोग में मसले गये टेढ़े-टेढ़े और उठे-उठे स्तनों से युक्त वक्षः स्थल के सदृश चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब कठोर कमल-नाल की गाँठ के सदृश भूरी-भूरी और गोरी-गोरी प्रथम किरणों से विष्णु के चरणों- जैसी प्रतीति कराता है। २।

(- अपराजितरक्षित)

स्फुटकोकनदारुणं पुरस्ता-
दथ जाम्बूनदपत्रपिञ्जराभम्।
क्रमलङ्घितमुग्धभावमिन्दोः
स्फटिकच्छेदनिभं विभाति बिम्बम्।।३।।

भगीरस्थस्य।

चन्द्रमा का विम्ब, पहले, प्रफुल्लित लाल कमलों के सदृश अरुणवर्णी, तत्पश्चात् स्वर्ण-पत्र के सदृश पीताभ, उसके अनन्तर क्रमशः अपने मुग्ध स्वरूप को (शनैः शनैः) छोड़ता हुआ, स्फटिक-खण्डों के सदृश प्रतीत होता है। ३।

(-भगीरथ)

विशेष - 'चन्द्रबिम्व' के प्रथम दो पद्यों में दो ऐतिहासिक सन्दर्भ हैं। प्रथम पद्य में 'समदयवनीगण्डच्छायम्' से सम्भवतः उन यूनानी स्त्रियों की ओर संकेत है, जो सिकन्दर अथवा सिल्यूकस इत्यादि यूनानी आक्रमणकारियों के साथ आई होंगी। दूसरे पद्य में 'अभिमान से उद्धत हूणसुन्दरी' का उल्लेख है। ये हूण-रमणियाँ हूणों के आक्रमण के समय भारत में आई होंगी। 'उद्दर्पहूपरमणी' कहकर कवि ने आक्रमणकारी हूणों के प्रति अपनी घृणा की भावना को ही अंशतः व्यक्त किया है। - अनु.

करमूलबद्धपन्नगविषाग्निधूमाहतं मध्ये।
ऐशानमिव कपालं स्फुटलक्ष्म स्फुरति शशिबिम्बम्।।४।।

कस्यचित्।

चन्द्रमा का सुस्पष्ट कलङ्क से युक्त बिम्ब भगवान् शिव के उस कपाल के सदृश प्रतीत होता है, जो हाथ के मूल में बँधे विषधरों की विषाग्नि के धुएँ से बीच में कुछ धूमिल-सा हो गया है। ४।

(- अज्ञातकवि)

मध्ये यामिनि पार्वणामृतरुचेर्बिम्बं स्फुरच्चन्द्रिका
तत्प्रान्तं परितो विसारिकिरणश्रेणीशलाकावलि।
ताराग्रन्थिविसंष्ठुलं स्थलमिव ज्योत्स्नास्फुरद्वाससा
संवीतं सुखमध्यशेत जगती सुव्यक्तमालोक्यते।।५।।

अंशुधरस्य।

रात्रि के मध्यभाग में, पूर्णिमा को-अमृत किरणों से युक्त चन्द्रमा की चाँदनी (जब) प्रस्फुटित हो रही है, उसके चारों ओर फैली हुई किरणों की शलाकाएँ जब किनारे-किनारे (बिछी) हों, ज्योत्स्ना रूपी वस्त्र से परिवेष्टित स्थल नक्षत्र-ग्रन्थियों से अस्थिर प्रतीत हो रहा हो, (उस समय) सुख से सोई हुई पृथिवी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। ५।

(- अंशुधर)

७५. प्रौढचन्द्रः

एतत्तर्कय कैरवक्लमहरे श्रृङ्गारदीक्षागुरौ
दिक्कान्तामुकुरे चकोरसुहृदि प्रौढे तुषारत्विषि।
कर्पूरैः किमपूरि किं मलयजैरालेपि किं पारदै-
रक्षालि स्फटिकोपलैः किमघटि द्यावापृथिव्योर्वपुः।।१।।

वसुकल्पस्य।

७५. प्रौढ़ चन्द्रमा

(जिस समय) तुषार किरणों से युक्त, श्रृङ्गार-दीक्षा का गुरु तथा दिशारूपी नायिकाओं का दर्पण (स्वरूप) प्रौढ़ चन्द्रमा श्वेत कुमुदों की थकान दूर करने में लगा हो, (उस समय उसने) आकाश और धरती के शरीर में कपूर से क्या-क्या भरा, चन्दन और पाटे से क्या लेपन किया, और अक्षमाला में जटित स्फटिक मणियों से क्या-क्या जड़ दिया- इसका अनुमान लगाओ। १।

(- वसुकल्प)

विशेष- अभिप्राय यह कि प्रौढ़ चन्द्र की किरणें जब धरती और आकाश के मध्य व्याप्त होती हैं, उस समय कपूर, चन्दन और पारद के लेपन तथा स्फटिक मणियों के सर्वत्र जड़े होने की विलक्षण प्रतीति होती है। १।

पञ्चेषोरिषुकोटिशातनशिलाचक्रं चकोराङ्गना-
चक्षुष्यश्चतुरब्धिताण्डवगुरुश्चौरः कृशाङ्गीरुषाम्।
सोयं सान्द्रतमिस्रसिन्धुरघटाकण्ठीरवः कैरव-
श्रीजीवातुरमर्त्यमण्डलसुधासत्री दिवि द्योतते।।२।।

गङ्गाधरस्य।

पाँच-पाँच बाण (एक साथ चलाने वाले) कामदेव के बाणों की नोंकों को पैनाने के लिए प्रस्तरचक्र, चकोरियों के नेत्रों का लक्ष्य, चारों समुद्रों का नृत्यगुरु, तन्वङ्गियों के रोष का अपहर्त्ता, सघन अन्धकाररूपी गज-समूह के मध्य सिंह, श्वेत कुमुद कुसुमों के सौन्दर्य का प्राणतत्त्व और देव-मण्डल के अमृत-यज्ञ का अनुष्ठाता (प्रौढ़ चन्द्रमा इस समय) आकाश में देदीप्यमान है। २।

(- गंगाधर)

चन्द्रे सान्द्रमरीचिसंचयजुषि प्राचीप्रियाप्रेयसि
प्राप्ते प्रौढतमिस्रभावतिमिरध्वंसप्रशंसाविधौ।
कालिन्दी सुरनिम्नगीयति तथा विन्ध्यो हिमाद्रीयति
क्षोणी राजतभाजनीयति तथा चक्रोपि हंसीयति।।३।।

कस्यचित्।

(जिस समय आकाश में) सघन किरणों से समन्वित पूर्व दिशारूपी प्रेमिका का प्रेमी चन्द्रमा प्रौढ़ अन्धकार को ध्वस्त करने की प्रशंसनीय प्रक्रिया में संलग्न होता है (उस समय) यमुना नदी गंगा प्रतीत होती है, विन्ध्याचल हिमालय लगने लगता है, पृथिवी रजतपात्र प्रतीत होती है और चकवा भी हंस-सा दिखने लगता है। ३।

(- अज्ञात कवि)

जनानन्दश्चन्द्रो भवतु न कथं नाम सुकृती
प्रयातोऽवस्थाभिस्तिसृभिरपि यः कोटिमियतीम्।
भ्रुवोर्लीलां बालः श्रियमलिकपट्टस्य तरुणो
मुखेन्दोः सर्वस्वं हरति हरिणाक्ष्याः परिणतः।।४।।

मुरारेः।

पुण्यकर्मा चन्द्रमा लोगों के लिए क्यों न आनन्दकर प्रतीत हो, जब वह अपनी तीन अवस्थाओं से इस स्वरूप में पहुँचा है। (अपने) बालस्वरूप में चन्द्रमा मृगनयनी (युवतियों) की भौंहों की लीला का, तरुणरूप में मस्तक की शोभा का, और प्रौढ़ रूप में तो मुखचन्द्र के सर्वस्व का ही हरण कर लेता है। ४।

(- मुरारि)

निर्यासैः करपत्रपीडनवशान्निर्यद्भिरिन्दूपला-
न्मानग्रन्थिभिरश्रमेण कठिनैस्त्रुट्यद्भिरेणीदृशाम्।
देवोऽयं परिपिष्टचक्रहृदयादुत्सर्पिभिः पावकै-
र्व्यक्ता हंकृतिरभ्युदेति तमसां माराङ्कमल्लः शशी।।५।।

शान्त्याकरस्य।

चन्द्रकान्त मणियों को किरणरूपी आटे से दबाने के कारण निकलते हुए रस से, मृगनयनी (युवतियों) की अनायास टूटती हुई मान-ग्रन्थियों से, और चकवा के परिपिष्ट हृदय से छिटकती हुई चिनगारियों से अन्धकार को समाप्त कर, प्रेमचिह्न अंकित करने

वाले मल्लराज (-पहलवान-) चन्द्रमा महाराज हुँकार करते हुए उदित हो रहे हैं। ५।

(- शान्त्याकार)

७६. सकिरणचन्द्रः

अद्यापि स्तनशैलदुर्गविषमे वामेक्षणानां हृदि
स्थातुं वाञ्छति मान एष धिगिति क्रोधादिवालोहितः
उद्यन्दूरतरप्रसारितकरः कर्षत्यसौ तत्क्षणं
स्फायत्कैरवकोषनिःसरदलिश्रेणीकृपाणं शशी ।।१।।

वसुकल्पस्य।

७६. किरणों से युक्त चन्द्रमा

'आज भी वामनयनी (युवतियों) के स्तनरूपी पाषाणों से निर्मित ऊबड़-खावड़ हृदयरूपी दुर्ग में मान (-अभिमान-) ठहरना चाहता है, यह तो मेरे लिए धिक्कार (की बात) है' - मानों (इसी) क्रोध से कुछ लाल-लाल (होकर) चन्द्रमा उदित होने के अनन्तर, दूर तक अपनी किरणों को फैलाकर विकसित कुमुदकुसुमों के कोष से प्रकट हुई भ्रमरावली रूपी कृपाण को उसी क्षण निकाल रहा है। १।

(- वसुकल्प)

सद्यः कुङ्कुमपङ्कपिच्छिलमिव व्योमाङ्गणं कल्पयन्
पश्यैरावतकान्तदन्तमुसलच्छेदोपमेयाकृतिः।
उद्गच्छत्ययमच्छमौक्तिकमणिप्रालम्बलम्बैः करै-
र्मुग्धानां स्मरलेखवाचनकलाकेलिप्रदीपः शशी ।२।।

राजशेखरस्य।

देखो, आकाशरूपी आँगन को केसर-पंक से लीपता हुआ और (इन्द्र के हाथी) ऐरावत के कमनीय दाँतरूपी मुसल-खण्ड से तुलनीय स्वरूप वाला यह चन्द्रमा उदित हो रहा है। स्वच्छ मौक्तिक मणियों के स्तम्भ-सदृश अपनी सुदीर्घ किरणों से यह मुग्धा-नायिकाओं के लिए प्रेम-पत्र बाँचने-हेतु क्रीड़ा-गृह का दीपक-सा प्रतीत होता है। २।

(- राजशेखर)

सलीलं लिम्पद्भिर्धवलधवलैरम्बरतलं
करौघैः कह्लारप्रसवनवकर्म्मस्थपतिभिः।
चकोरस्तोमानाममृतघृतकुल्यामुपनय-
न्नयं देवः प्राचीमवतरति तारापरिवृढः।३।।

हरेः।

गगनतल को अनायास लीपती हुई, कुमुदकुसुमों के अभिनव प्रसव-हेतु शिल्पी का कार्य करती हुई (अपनी) अतिशुभ्र किरणों से चकोर-समूहों को अमृत घृत की वीथियों में ले जाता हुआ, नक्षत्र-परिवेष्टित चन्द्रमा पूर्व दिशा में अवतरित हो रहा है। ३।

(- हरि)

गोरोचनारुचकभङ्गपिशङ्गिताङ्ग-
स्तारापतिर्मसृणमाक्रमते क्रमेण
गोभिर्नवीनविसतन्तुवितानगौरै-
राढ्यम्भविष्णुरयमम्बरमावृणोति।४।।

कस्यचित्।

गोरोचन के कान्तियुक्त टुकड़ों से पीले-पीले अंगों वाला ताराधिप चन्दमा कोमलतापूर्वक क्रमशः आगे बढ़ रहा है। नई-नई कमलनाल के तन्तुओं के सदृश गोरी-गोरी किरणों से आकाश को यह वैसे ही व्याप्त कर रहा है, जैसे कोई धनवान् होने का इच्छुक व्यक्ति गो-समृद्धि का विस्तार करता है। ४।

(- अज्ञात कवि)

रसातलस्थानविसारिणीं हरन्
प्रभां मृणालीमिव धौतकर्दमाम्
समुत्पपातार्द्रतनूरुहः शनै-
रुदन्वतो हंस इव क्षपाकरः। ५।।

भृङ्गस्वामिनः।

निशाकर चन्द्रमा भूमि पर फैलती हुई, निर्मल कमलनाल के सदृश उज्ज्वल किरणों से युक्त प्रभा को वहन करते हुए शनैः शनैः आकाश में उस हंस की तरह ऊपर उठ गया है, जो सरोवर में गहराई से जमीं और पंक रहित होने के कारण जगमगाती हुई कमलनाल खेलने को उखाड़ते हुए गीले रोमों से, धीरे-धीरे सरोवर से ऊपर उठ जाता है। ५।

(- भृङ्गस्वामी)

७७. चन्द्ररश्मिः

ये पूर्व्वं यवशूकसूचिसुहृदो ये केतकाग्रच्छद-
च्छायाधामभृतो मृणाललतिकालावण्यभाजश्च ये।
ये धाराम्बुविडम्बिनः क्षणमथो ये तारहारश्रिय-
स्तेमी स्फाटिकदण्डडम्बररुचो जाताः सुधांशोः कराः।१।।

राजशेखरस्य।

७७. चन्द्र-किरणें

चन्द्रमा की जो किरणें पहले सज्जी (अथवा क्षारीय नमक) के अग्रभाग (-नोंक) की तरह थीं, जो केतकी के अग्रभाग की परछाईं में पड़ी धूप की तरह थीं, और जो मृणाललता के लावण्य की भाजन थीं, जो वर्षा-जल के सदृश थीं, नक्षत्रमाला की शोभा की शोभा से सम्पन्न थीं, वे ही (चन्द्र-किरणें) सम्प्रति स्फटिकनिर्मित दण्ड के सदृश कान्तिवाली हो गई हैं। १।

विशेष - यवशूक = जौ की भूसी को जलाकर उसकी राख से तैयार किया गया नमक अथवा सज्जी। १।

(- राजशेखर)

कपाले मार्जारः पय इति कराँल्लेढि शशिन-
स्तरुच्छिद्रप्रोतान्वितमिति करी संकलयति।
रतान्ते तल्पस्थान्हरति वनिताप्यंशुकमिति
प्रभामत्तश्चन्द्रो जगदिदमहो विप्लवयति।२।।

तस्यैव।

वृक्षों के मध्यवर्ती छिद्रों से छनकर (धरती पर पड़ रही) चन्द्र किरणों को बिलाव अथवा बिलौटा पात्र में स्थित दूध समझकर चाट रहा है, हाथी उन्हें कमलनाल समझकर समेटने (का प्रयत्न) कर रहा है, संभोग के पश्चात्, शय्या पर पड़ रही चन्द्र-रश्मियों को, वनिता चादर समझकर खींच रही है। अरे ! प्रकाश से मतवाला चन्द्रमा तो (इस प्रकार) समस्त संसार में उथल-पुथल मचा रहा है। २।

(- वही)

निद्रानन्दकरीर्नितान्तधवला आमोदिनीरम्यमूः
पीयूषं मधु वर्षतीरपि तमोभृङ्गान्निराकुर्व्वतीः।
आकाशद्रुममञ्जरीरिव विधोर्भासः ककुप्कामिनी-
लीलोत्तंसरुचः करोति नियतं बाणान् प्रसूनायुधः।३।।

सुरभेः।

निद्रा से (लोगों को) आनन्दित करने वाली, अत्यन्त समुज्ज्वल, सौरभमयी, अमृत-मधु-वर्षिणी, अन्धकाररूपी भ्रमरावली को हटाती हुई, गगनतरु की मञ्जरी और दिशारूपी सुन्दरियों के कर्णाभूषण-सी चन्द्रकिरणों को पुष्पायुध कामदेव अपने बाण (बनाकर लक्ष्यभेद) कर रहा है। ३।

(-सुरभि)

एतैर्जह्नुसुताजलैरयमुनाभिन्नैरलग्नाञ्जनै-
र्नारीणां नयनैरकर्दमलवालिप्तैर्मृणालाङ्कुरैः।
हारैरस्फुरदिन्द्रनीलतरलैः कुन्दैरलीनालिभि-
र्वेल्लद्भिर्भुवने विभूषितमिदं शीतद्युतेरंशुभिः।४।।

तस्यैव।

(सम्प्रति) यह जगत् चन्द्रमा की उन किरणों से सुशोभित हो रहा है, जो यमुना-जल से अमिश्रित गंगा-जल, नारियों के काजलरहित नेत्रों, पूर्णतया पंकरहित मृणाल-अँकुरों, चमकती हुई इन्द्रनीलमणियों से तरल हारों और भ्रमरहित कुन्दकुसुमों के सदृश थिरक रही हैं। ४।

हारश्रीसुहृदो रथाङ्गरमणीसन्न्यासपुण्यापगा
वन्दीभूतमधुव्रताब्जकलिकाकाराकवाटार्गलाः।
उन्मीलन्ति चकोरदैवतसुधापूर्णाहुतीनां स्रुवो
व्योमान्तः परिमाणसूत्रसरलास्तारा हिमांशोः कराः।।५।।

अभिनन्दस्य।

चन्द्रमा की वे किरणें (सम्प्रति) स्रुवा बनकर चकोर रूपी देवता के लिए अमृत की आहुतियाँ डाल रही हैं, जो हारों की सुन्दरता की सहचरियाँ, चकई के संन्यास-हेतु पवित्र नदियाँ, कमलकलिका में बन्दी भ्रमरों के लिए कारागृहस्थ कपाटों की अर्गलाएँ, आकाश को भीतर से (नापने के लिए प्रयुक्त) परिमाण-सूत्र के सदृश तथा नक्षत्र (खचित) और सरल हैं। ५।

(- अभिनन्द)

७८. ज्योत्स्ना

शीतांशुः शशिकान्तनिर्म्मलशिला तस्यां प्रसुप्तः सुखं
जग्ध्वा ध्वान्ततृणाङ्कुरान्मृगशिशुः खण्डेन्द्रनीलत्विषः।
निद्रामुद्रितलोचनालसतया रोमन्थफेनच्छटां
रोदःकन्दरपूरणाय तनुते ज्योत्स्नाच्छलेनामुना ।१।।

कापालिकस्य।

७८. ज्योत्स्ना

चन्द्रकान्तमणि-निर्मित उज्ज्वल शिला पर आराम से लेटा हुआ चन्द्रमारूपी मृग-शावक (-चन्द्रस्थ मृगलाञ्छन-) इन्द्रनीलमणि के सदृश चमकते हुए अन्धकाररूपी तृण के अंकुरों को खाने के बाद, नींद में मुँदी आँखों से अलसाया हुआ, आकाश और पृथिवी के मध्यवर्ती अन्तर को भरने के लिए जुगाली करता हुआ, चाँदनी के रूप में, फेन की छटा (बिखेर रहा) है। १।

(- कापालिक)

संप्रत्याक्रमते पुरन्दरपुरीकासारकह्लारिणी-
कोषोद्घाटनकुञ्जिकाः प्रकटयन्नारम्भतः कौमुदीः।
पौरस्त्याद्रितटीकुटुम्बिमृगयुव्यापारितास्त्रव्यध-
व्यङ्गक्रोडकुरङ्गसङ्गलदसृक्संसर्गशोणः शशी ।२।।

अपिदेवस्य।

पूर्वदिशा में स्थित उदयाचल के किनारे, सपरिवार बसे आखेटक के द्वारा चलाये गये बाण से घायल और विकलाङ्ग मृग (-कलङ्करूप) के बहे हुए रक्त से लाल-लाल चन्द्रमा सम्प्रति इन्द्रपुरी के सरोवरों में विद्यमान कमलिनियों (अथवा कुमुदिनियों) के कोष के उद्घाटन हेतु चन्द्रिकारूपी कुँजी को प्रकट करते हुए आक्रमण कर रहा है। २।

(-अपिदेव)

कर्पूरद्रवसीकरोत्करमहानीहारमग्नामिव
प्रत्यग्रामृतफेनपङ्कपटलीलेपोपदिग्धामिव।

स्वच्छैकस्फटिकाश्मवेश्मजठरक्षिप्तामिव क्ष्मामिमां
कुर्वन् पार्वणशर्वरीपतिरसावुद्दाम विद्योतते ।३।।

पञ्चमेश्वरस्य ।

पूर्णिमा की रात का स्वामी चन्द्रमा इस पृथ्वी को मानो कपूर के पिघले हुए रस की बूदों में निमग्न करते हुए, ताजे-ताजे अमृत-फेन के पंक से लीपते हुए और निर्मल स्फटिकों से निर्मित शिला-गृह के भीतर फेंकते हुए उद्दाम रूप से चमक रहा है। ३।

(-पञ्चमेश्वर)

सद्यः पाटितकेतकोदरदलश्रेणिश्रियं बिभ्रती
येयं मौक्तिकदामगुम्फनविधौ योग्यच्छविः प्रागभूत्।
उन्मेया कलशीभिरञ्जलिपुटैर्ग्राह्या मृणालाङ्कुरैः
पातव्या च शशिन्यमुग्धविभवे सा वर्तते चन्द्रिका ।४।।

राजशेखरस्य ।

चन्द्रमा के प्रौढ़ वैभव के समय, तत्काल फाड़े गये केवड़े के मध्यवर्ती दलों की शोभा को धारण करती हुई तथा मौक्तिक माला को गूँथने की प्रविधि के अनुरूप जो छवि पूर्व (दशा) में प्रकट हुई, वही चाँदनी के रूप में विद्यमान है। वह कलशियों से नापने योग्य है, अँजुरी भर-भर कर ग्रहण करने योग्य है तथा मृणालाङ्कुरों के द्वारा पीने के योग्य है। ४।

(- राजशेखर)

क्षीरोदाम्भसि मज्जतीव दिवसव्यापारखिन्नं जग-
त्तत्क्षोभाज्जलबुद्बुदा इव भवन्त्यालोहितास्तारकाः।
चन्द्रः क्षीरमिव क्षरत्यविरतं धारासहस्रोत्करै-
रुद्ग्रीवैस्तृषितैरिवाद्य कुमुदैर्ज्योत्स्नापयः पीयते ।५।।

विक्रमादित्यचण्डालविद्याकालिदासानाम् ।

दिन भर के कार्य-कलाप से खिन्न संसार जब क्षीरोदसागर में स्नान-सा करने लगता है (अथवा डूब-सा जाता है), तब उसके क्षोभ से जलबुद्बुद के समान तारकवृन्द कुछ लाल-लाल हो जाते हैं। (उस समय) चन्द्रमा सहस्रधाराओं से मानों दुग्ध-सा प्रवाहित करने लगता है। तुषातुर कुमुदकुसुम गर्दनें ऊपर उठा-उठाकर उस ज्योत्स्नामय दुग्ध को इस समय पी रहे हैं। ५।

(-विक्रमादित्य, चण्डाल, विद्या और कालिदास)

७६. कलङ्कः।

महानीलश्यामं नरकरिपुवक्षो वियदिदं
ततांशुश्रेणीकस्तुहिनकिरणः कौस्तुभमणिः।
कलङ्कोप्येतस्य प्रमुखनिवसत्तोयधिसुता-
स्तनासङ्गस्फूर्जन्मदलिखितपत्रप्रतिकृतिः।।१।।

सुरभेः।

७६. कलङ्क

यह नीलगगन नरकान्तक[1] विष्णु का विशाल वक्षः स्थल है। फैली हुई किरणों वाला चन्द्रमा (उस पर रखी) कौस्तुभमणि (के सदृश) है। चन्द्रमा में स्थित कलङ्क वहाँ (-विष्णु के वक्ष पर -) लेटी हुई लक्ष्मी के स्तनों के सम्पर्क से चमकती कस्तूरी से अंकित पत्र-रचना के सदृश है। १।

(- सुरभि)

किरद्धारां धारा इव किरणधाराः प्रतिदिशं
तुषारांशोर्बिम्बं मणिघटितधारागृहमिव।
इहायं कस्तूरीहरिणमदपङ्काङ्किततनुः
कलङ्कव्याजेन प्रतिवसति कन्दर्पनृपतिः।।२।।

अभिनन्दस्य।

प्रत्येक दिशा में जलधारा के समान किरणधारा को बिखेरते हुए शीतांशु चन्द्रमा का विम्ब मणिनिर्मित फौव्वारा (-धारागृह-) प्रतीत होता है। इसमें, कलङ्क के रूप में कस्तूरीहरिण के मद-पंक का शरीर में लेप लगाये हुए महाराज कामदेव निवास कर रहे हैं। २।

(- अभिनन्द)

---

१. नरकासुर - यह राक्षस प्राग्ज्योतिषपुर (आधुनिक असम प्रदेश) का राजा था। हाथी का रूप धारण करके यह विश्वकर्मा की पुत्री को उठा ले गया था और उससे इसने बलात्कार किया था। इसके अतिरिक्त इसने गन्धर्वों, देवों और मनुष्यों की प्रायः १६ हजार से अधिक युवतियों का अपहरण कर उन्हें अपने अन्तःपुर में रख लिया था। कृष्ण ने नरकासुर को मारकर उन अपहृताओं का उद्धार किया था। भूमि से उत्पन्न होने के कारण यह राक्षस भौम भी कहा गया है।- अनु)।

शेषस्याहेर्व्रजति तुलनां मण्डलीभूतमूर्त्ते-
रिन्दुः कुन्दस्तवकविशदः पार्व्वणोऽयं यथैव।
व्योमाम्भोधौ सजलजलदश्यामरोचिस्तथोच्चै-
रङ्कः शङ्कामयमपि हरेस्तत्र सुप्तस्य धत्ते।

राजशेखरस्य।

पूर्णिमा का, कुन्दकुसुमों के गुच्छे-सा उज्ज्वल और निर्मल चन्द्रमा आकाश-सागर में कुण्डली मारकर लेटे हुए शेषनाग के समान (प्रतीत होता) है और उसमें स्थित सजल मेघ के सदृश कान्ति वाला कलङ्क (चन्द्रायित शेषनाग पर) सोये हुए भगवान् विष्णु के सदृश प्रतीत होता है। ३।

(- राजशेखर)

स्फटिकालवाललक्ष्मीं प्रवहति शशिबिम्बमम्बरोद्याने।
किरणजलसिक्तलाञ्छनबालतमालैकविटपस्य।।४।।

तस्यैव।

चन्द्रमा का बिम्ब आकाशरूपी उपवन में स्फटिक निर्मित आलवाल (-थाल्हा-) की शोभा को धारण करता है, और उसमें स्थित कलङ्क तमाल के उस वृक्ष की प्रतीति कराता है, जिसे किरणों के जल से सींचा गया हो ! ४।

यथायं भात्यंशून्दिशि दिशि किरन्कुन्दविशदा-
न्शशाङ्कः काश्मीरीकुचकलशलावण्यघटितः।
तथायं कस्तूरीमसिलिखितमुद्रावलितुलां
नवाम्भोदच्छेदच्छविरपि समारोहति मृगः।।५।।

शर्वस्य।

प्रत्येक दिशा में कुन्दकुसुमों के सदृश किरणों को विखेरता हुआ चन्द्रमा जिस प्रकार कश्मीर प्रदेश की (कामिनियों के) स्तन-कलशों के लावण्य से निर्मित प्रतीत होता है, उसी प्रकार उसमें स्थित नये-नये उमड़े मेघों की छविवाला कलङ्क भी (स्तनों पर) कस्तूरी की स्याही से अंकित मुद्राओं के तुल्य लगता है। ५।

(- शर्व)

८०. सतमश्चन्द्रः

प्रथममरुणच्छायस्तावत्ततः कनकप्रभ-
स्तदनुविरहोत्ताम्यत्तन्वीकपोलतलद्युतिः।
प्रभवति ततो ध्वान्तध्वंसक्षमः क्षणदामुखे
सरसविसिनीकन्दच्छेदच्छविर्मृगलाञ्छनः।।१।।

राजशेखरस्य।

८०. अन्धकारसहित चन्द्रमा

रात्रि के आरम्भ अर्थात् सन्ध्या के समय, सरस कमलिनी के मृणालखण्ड की शोभावाला चन्द्रमां पहले अरुणवर्णी कान्ति से युक्त (दिखता है), फिर वह स्वर्ण-प्रभा से सम्पन्न हो जाता है, तदनन्तर वह वियोग में सुलगती तन्वङ्गी (युवती) के कपोलों की-सी कान्ति से युक्त होता है - इसके बाद, (शनैः-शनैः) वह अन्धकार के विध्वंस में समर्थ हो जाता है। १।

(- राजशेखर)

निःससार करघातविदीर्ण-ध्वान्तदन्तिरुधिरारुणमूर्तिः
केशरीव कटकादुदयाद्रेरङ्कलीनहरिणो हरिणाङ्कः।।२।।

भवभूतेः।

उदयाचल की तलहटी से, पंजे के आघात से विदीर्ण अन्धकाररूपी हाथी के रक्त से लाल-लाल स्वरूप वाला, अंक में हरिण (-कलंक हिरन-) को पकड़े हुए सिंह के समान मृगाङ्क (चन्द्रमा) उदित हो चुका है। २।

(- भवभूति)

प्रत्यग्रप्रसरे तमिस्रपटले बिम्बैकमात्रोदया-
रम्भे शीतरुचावकीर्णकिरणे रम्योऽयमेकः क्षणः।
यस्मिन्नीलनिचोलकेन पिहितं कृत्वा तदेकान्ततः
सिन्दूरारुणचक्रमुद्रितमिव त्रैलोक्यमालोक्यते।।३।।

कस्यचित्।

ताजा-ताजा फैले अन्धकार-समूह में, किरणों का प्रसार करते हुए शीतांशु चन्द्रमा

का जब पहला-पहला बिम्बमात्र उदित होता है, तो वह एक क्षण (विशेष) रमणीय लगता है। उस (बिम्ब) में त्रैलोक्य पूरी तरह नीला-नीला चोगा (-कुर्ता-) पहनने के बाद सिन्दूर के लाल चक्र से चिह्नित-सा प्रतीत होता है। ३।

(- अज्ञात कवि)

अथ जगदवगाढं वासरान्तापचारा-
त्तिमिरपटलवृद्धावप्रतीकारसत्वम्।
शशिभिषगनुपूर्वं शीतहस्तो भिषज्य-
न्नधिकविशदवक्त्रस्वैरभावं चकार।।४।।

कस्यचित्।

दिन बीतने पर, और अन्धकार-समूह के बढ़ने पर, अपथ्य-सेवन से जगत् जब डूबने लगता है, और उसका कोई प्रतिकार नहीं हो पाता, (उस समय) चन्द्रमारूपी वैद्य, हाथ में कपूर लेकर (जगत् की) चिकित्सा करते हुए पूर्ववत् उसके मुख को अधिक स्पष्ट और स्वच्छन्द गतिवाला बना देता है। ४।

(- अज्ञात कवि)

य एष प्रत्यूषे रविशबरमालोक्य पुरतो
नभः पारावारं न्यविशत भयादिन्दुशफरः।
स सायं निःशङ्कं चटुलतरतारार्भकशतै-
श्चरन्मन्दं मन्दं तिमिरजलनीलीमुदयते।।५।।

वैद्यश्रीजीवदासस्य।

प्रातःकाल चन्द्रमारूपी जो मछली (अपने) सामने सूर्यरूपी शवर (-व्याध-) को देखकर भयवश आकाश-समुद्र में गोता लगा गई थी, वह (अब) सायंकाल (पुनः) निःशंक होकर अपने सैकड़ों तारे रूपी चंचल बच्चों के साथ धीरे-धीरे तैरती हुई अन्धकाररूपी जल से नीली (-नील के पौधों वाली नदी-) पर प्रकट हो गई है। ५।

(- वैद्यश्रीजीवदास)

८१. सतारश्चन्द्रः

मृगेन्द्रस्येव चन्द्रस्य मयूखैर्नखरैरिव।
पाटितध्वान्तमातङ्ग-मुक्ताभा भान्ति तारकाः।।१।।

अभिनन्दस्य।

८१. नक्षत्रसहित चन्द्रमा

चन्द्रमारूपी सिंह के द्वारा किरणरूपी नाखूनों से फाड़े गये अन्धकाररूपी हाथी के (मस्तक से) छिटके तारकवृन्दरूपी गजमुक्ता (आकाश में) सुशोभित हो रहे हैं। १।

(- अभिनन्द)

तारा: स्तोकतमिस्रधूमपटलीव्यापारसन्ध्यानन-
ज्वालालीढनभः कपालविचलल्लाजश्रियं बिभ्रति।
किं चायं रजनीपतिः परिणतप्राग्भारतालद्रवो-
न्मिश्रं चिक्कणपिण्डमण्डकलसल्लावण्यमारोहति।।२।।

कस्यचित्।

तारे तो सन्ध्यारूपी उस आग पर चढ़े, जिसमें से अन्धकार रूपी धुआँ निकल रहा है, आकाश रूपी कड़ाहे से छिटकी हुई खीलों की शोभा से सम्पन्न हैं, और चन्द्रमा ताड़वृक्ष के रक्ष, चिकने पेंड़े (-पिण्ड-) और माँड़ के लावण्य से युक्त है। २।

(- अज्ञात कवि)

उदयगिरिसौधशिखरे ताराचयचित्रिताम्बरविताने।
सिंहासनमिव निहितं चन्द्रः कन्दर्पभूपस्य।।३।।

कस्यचित्।

उदयाचल पर बने सौधशिखर पर, आकाश के नक्षत्र-समूहाङ्कित शामियाने में, चन्द्रमारूपी सिंहासन रखा है (जिस पर) महाराज कामदेव (विराजमान) हैं। ३।

(- अज्ञात कवि)

ताराकोरकराजिभाजि गगनोद्याने तमोमक्षिकाः
सन्ध्यापल्लवपातिनीः कवलयन्नेकान्ततस्तर्कय।
एतस्मिन्नुदयान्तपर्वततरुद्वन्द्वान्तराले ततै-
रेतैर्भाति गभस्तितन्तुपटलैः श्वेतोर्णनाभः शशी।।४।।

हरेः।

देखो, तारकरूपी कलियों की राशि से युक्त, आकाशरूपी उद्यान में, सन्ध्यारूपी किसलयों पर गिरती हुई अन्धकाररूपी मधुमक्खियों का पूर्णतया भक्षण करता हुआ चन्द्रमारूपी सफेद मकड़ा, उदयगिरि ओर अस्ताचलरूपी वृक्षों के मध्य किरणरूपी जाले को फैलाये हुए सुशोभित हो रहा है। ४।

(- हरि)

अयमुदयमहीध्रधातुरागैररुणकरारुणिताम्बराभिरामः।
वितरसि न दृशौ कृशाङ्गि तारामिव दिवि वन्दितुमिन्दुरभ्युदेति।।५।।

हरिदत्तस्य।

हे कृशाङ्गि ! (देखो), यह उदयाचल पर उत्पन्न धातुओं (-गेरू इत्यादि) की लालिमा से लाल-लाल किरणरूपी वस्त्रों से रमणीय चन्द्रमा, स्वर्ग में, आँख की पुतली (अथवा मोती) की तरह वन्दना करने के लिए उदित हो रहा है। (आश्चर्य है ?) तुम इस पर दृष्टिपात नहीं कर रही हो ! ५।

(-हरिदत्त)

८२. क्षरदमृतचन्द्रः

शशिनमसूत प्राची नृत्यति मदनो हसन्ति ककुभोऽपि।
कुमुदरजः पटवासं विकिरति गगनाङ्गणे पवनः।।१।।

धर्मकीर्तेः।

८२. अमृत टपकाता हुआ चन्द्रमा

प्राचीरूपी (जननी) ने चन्द्रमारूपी (पुत्र) को जन्म दिया है। (इसकी प्रसन्नता में) कामदेव नृत्य कर रहा है और दिशाएँ हँस रही हैं। आकाशरूपी आँगन में पवन कुमुदकुसुमों के पराग के रूप में सुगन्धित अबीर-गुलाल बिखेर रहा है। १।

तथा पौरस्त्यायां दिशि कुमुदकेदारकलिका-
कपाटघ्नीमिन्दुः किरणलहरीमुल्ललयति।
समन्तादुन्मीलद्बहुलजलबिन्दुव्यतिकरै-
र्यथा पुञ्जायन्ते प्रतिगुणक्रमेणाङ्कमणयः।।२।।

मुरारेः।

पूर्व दिशा में, चन्द्रमा कुमुदों की क्यारी की कलिकाओं के आवरण को तोड़ने वाली किरण-लहरी को उसी प्रकार बिखेर रहा है, जैसे क्यारी में चारों ओर उठने वाले बहुसंख्यक जलबिन्दुओं के परस्पर मिश्रण से प्रत्येक बिन्दु में पृथक्-पृथक् चन्द्रकान्त मणियाँ इकट्ठी हो रही हों। २।

(-मुरारि)

स श्रीकण्ठकिरीटकुट्टिमपरिष्कारप्रदीपाङ्कुरो-
देवः कैरवबन्धुरन्धतमसप्राग्भारकुक्षिम्भरिः।
संस्कर्त्ता निजकान्तमौक्तिकमणिश्रेणीभिरेणीदृशां
गीर्वाणाधिपतेः सुधारसवतीपौरोगवः प्रोदगात्।।३।।

तस्यैव।

भगवान् शंकर के मुकुट-तल के परिष्कार-हेतु प्रदीप का अङ्कुर, कुमुदबन्धु, समस्त अन्धकार को (अपने) उदर में भर लेने वाला, चन्द्रकान्तयुक्त मौक्तिकमणियों से मृगनयनियों के नेत्रों का संस्कार करने वाला और देवराज इन्द्र की अमृतरस से युक्त रसोई का अधिकारी चन्द्रमा प्रकृष्ट रूप से उदित हो गया है। ३।

(- वही)

आमोदं कुमुदाकरेषु विपदं पद्मेषु कालानलं
पञ्चेषोर्विशिखेषु सान्द्रशिशिरक्षारं शशिग्रावसु।
म्लानिं मानवतीमुखेषु विनयं चेतःसु वामभ्रुवां
वृद्धिं वार्धिषु निक्षिपन्नुदयते देवस्तमीकामुकः।।४।।

शङ्करदेवस्य।

कुमुद-समूहों पर आनन्द, कमलों पर विपत्ति, कामदेव के बाणों पर कालाग्नि, चन्द्रकान्त मणियों पर सघनशीतल क्षार, अभिमानिनी नायिकाओं के मुख पर म्लानि, वामनयनियों के हृदय में विनय और समुद्रों में वृद्धि का संचार करते हुए निशानाथ महाराज चन्द्रदेव उदित हो रहे है। ४।

(- शङ्करदेव)

सौरातपविरहज्वर-लङ्घितगात्रीं कुमुद्वतीं निभृतः।
संरक्तः परिपश्यन्विधुरयमयते प्रसादयितुम्।।५।।

कस्यचित्।

सूर्य के सन्ताप (से सन्तप्त) और विरहज्वर (में लंघन करने से क्षीण) अंगों वाली कुमुदिनी को, एकान्त में, अनुरक्त भाव से देखते हुए चन्द्रमा उसे प्रसन्न करने के लिए आगे बढ़ रहा है। ५।

(- अज्ञात कवि)

८३. भासः

कह्लारस्पर्शगर्भैः शिशिरपरिचयात्कान्तिमद्भिः कराग्रै-
श्चन्द्रेणालिङ्गितायास्तिमिरनिवसने स्रंसमाने रजन्याः।
अन्योन्यालोकिनीभिः परिचयजनितप्रेमनिस्यन्दिनीभि-
र्दूरारूढे प्रमोदो हसितमिव परिस्पष्टमाशासखीभिः।।१।।

पाणिनेः।

८३. (चन्द्रमा का) प्रकाश

चन्द्रमा ने जब अपनी कुमुद-स्पर्श मिश्रित, शिशिर के प्रभाव से (शीतल) तथा कान्तिमयी प्रथम किरणों से रजनी का आलिङ्गन किया, तो उसका अन्धकाररूपी वस्त्र खिसक गया। इन दोनों का आनन्द जब बढ़ने लगा, तो एक-दूसरे को (साभिप्राय) देखने वाली, और परिचय के कारण प्रेम प्रकट करने वाली दिशा (रूपी) सहेलियाँ मानों खुलकर हँस-सी पड़ीं। १।

(- पाणिनि)

उपोढरागेण विलोलतारकं
तथा गृहीतं शशिना निशामुखम्।
यथा समस्तं तिमिरांशुकं तया
पुरोऽपि मोहाद्गलितं न लक्षितम्।।२।।

तस्यैव।

प्रगाढ़ अनुराग (तथा लालिमा) से युक्त चन्द्रमा ने रात्रि के चंचल तारों वाले मुख का ग्रहण (-आलिङ्गन, चुम्बनादि-) कुछ इस प्रकार (के आवेग) से किया कि निशा (सुन्दरी) अपनी तिमिररूपी चादर को, सामने गिरने पर भी, (चन्द्रग्रहण) के सम्मोहनवश न देख सकी। २।

(-वही)

यातस्यास्तमनन्तरं दिनकृतो वेशेन रागान्वितः
स्वैरं शीतकरः करं कमलिनीमालिङ्गितुं योजयन्।
शीतस्पर्शमवाप्य संप्रति तया गुप्ते मुखाम्भोरुहे
हासेनेव कुमुद्वतीवनितया वैलक्ष्यपाण्डूकृतः।।३।।

वसुकल्पस्य।

दिनकर के अस्त हो जाने पर, लाल-लाल पहनकर तथा प्रेम से भरकर चन्द्रमा ने जब कमलिनी का स्वच्छन्दतापूर्वक आलिङ्गन करने के लिए अपने किरणरूपी हाथ को आगे बढ़ाया, तो चन्द्रमा के शीतल स्पर्श को पाकर कमलिनी ने अपने मुख-कमल को छिपा लिया। (चन्द्रमा की इस हास्यास्पद स्थिति को देखकर) कुमुदिनी नाम्नी स्त्री हँस पड़ी। इससे चन्द्रमा इतना लज्जित हुआ कि पीला पड़ गया। ३।

(- वसुकल्प)

विशेष-कवि की यह कल्पना चन्द्रमा के शनैः शनैः परिवर्तित स्वरूप पर आधृत है। ठीक उदय के समय चन्द्रमा लाल होता है, फिर उसकी लालिमा पीलेपन में बदल जाती है। ३।

प्राचीमञ्चति यामिनीमनुनयत्याशाः समालम्बते
द्यामालिङ्गति सेवते कुमुदिनीं स्निग्धोऽतिमुग्धैः करैः।
बह्वीषु प्रतिपन्नमन्मथरसं कुर्वन्मनः कामिना-
मिन्दुर्वन्द्यकरः स एष भुवनानन्दः परिस्पन्दते।।४।।

कस्यचित्।

प्रणयी चन्द्रमा (अपनी) मोहक किरणों (या हाथों) से पूर्वदिशा (रूपी नायिका) से प्रणय-दान माँग रहा है, रात्रि से अनुनय कर रहा है, कुमुदिनी का सेवन कर रहा है, दिशाओं को थाम रहा है और अमरावती का आलिङ्गन कर रहा है। (अपनी उपर्युक्त चेष्टाओं से वह) कामियों के मन में बहुत-सी नायिकाओं के प्रति (एक साथ) प्रेमाकर्षण (उत्पन्न) करते हुए (समस्त) संसार को आनन्दित कर रहा है। वन्दनीय किरणों वाला वही चन्द्रमा (सम्प्रति) चारों ओर स्पन्दित हो रहा है। ४।

(- अज्ञात कवि)

कलाधारो वक्रः स्फुरदधररागो नवतनु-
र्गलन्मानावेशास्तरुणरमणीर्नागर इव।
घनश्रोणीबिम्बे नयनमुकुले चाधरदले
कपोले ग्रीवायां कुचकलशयोश्चुम्बति शशी।।५।।

श्रीकण्ठस्य।

नगर-निवासी किसी विदग्ध (-रसिक-) व्यक्ति की भाँति चन्द्रमा (सम्प्रति सभी) कलाओं से सम्पन्न है। (प्रेम-व्यवहार में आवश्यकतानुसार वह) वक्रता (अपना लेता) है। (उसके) होठों से (पान की और प्रेम की) लाली फूटी पड़ रही है, (वेश-भूषा से उसने) नया

रूप (बना लिया) है। तरुणी रमणियों का मान (उसे देखकर) पिघल गया है (और अब वह) उनकी घनी-घनी श्रोणियों (-कटिभाग की पृष्ठास्थि), नेत्रों, अधरों, कपोलों, गर्दन और स्तनकलशों का चुम्बन कर रहा है। ५।

(- श्रीकण्ठ)

विशेष - उपर्युक्त पद्य में चन्द्रमा पर एक चतुर रसिक और कामुक व्यक्ति की विभिन्न चेष्टाओं का आरोप है।

८४. मिश्रकचन्द्रः

उत्पल्लव इव किरणैः कुसुमित इव तारकाभिरयमिन्दुः।
उदयत्युदयतटान्ते सुरतरुरिव शीतलच्छायः।।१।।

जनकस्य।

८४. चन्द्रमा : मिश्रित रूप में

उदयाचल के किनारे-किनारे, (धीरे-धीरे), कल्पवृक्ष की शीतल छाया के सदृश स्निग्ध कान्ति (विखेरता हुआ) चन्द्रमा उदित हो रहा है। (उसकी किरणें वृक्ष में) फूटते हुए किसलयों की, और तारे (प्रफुल्लित) कुसुमों (की प्रतीति करा रहे) हैं। १।

(- जनक)

यात्रायामिव दत्तपूर्णकलशः कन्दर्पराज्ञः शशी-
तत्रायं सहकारपल्लवतुलामङ्कः समारोहति।
ज्योत्स्नालेपनपङ्कपूरितमिव व्योमाङ्गणं सर्वतः
क्षिप्ता मङ्गललाजमुष्टय इव भ्राजिष्णवस्तारकाः।।२।।

कस्यचित्।

महाराज कामदेव की यात्रा के समय चन्द्रमा (मांगलिक दृष्टि से) रखे गये पूर्णकुम्भ (के सदृश प्रतीत होता) है। चन्द्रमा के मध्य विद्यमान कलङ्क कलश के ऊपर रखे गये आम्रपल्लवों के समान है। आकाश में फैली हुई चाँदनी को देखकर लगता है, जैसे आँगन को (गोबर तथा चूने इत्यादि) से लीप-पोत दिया गया हो ! चमकते हुए तारे ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे माँगलिक दृष्टि से मुट्ठियों में भर-भरकर खीलें विखेर दी गई हों ! २।

(- अज्ञात कवि)

गगनतलतडागप्रान्तसीम्नि प्रदोष-
प्रबलतरवराहोत्खन्यमानश्चकास्ति।
परिकलितकलङ्कस्तोकपङ्कानुलेपो-
निजकिरणमृणालीमूलकन्दोऽयमिन्दुः।।३।।

परमेश्वरस्य।

चन्द्रमा, आकाशतलरूपी सरोवर के किनारे-किनारे, सन्ध्याकालरूपी बलवान् शूकर के द्वारा खोदी गई, कमल की उस जड़ के सदृश चमक रहा है, जिसमें कलङ्क रूपी कीचड़ लगा है तथा जिससे किरणरूपी कमलनाल जुड़ी है। ३।

(- परमेश्वर)

चिताचक्रं चन्द्रः कुसुमधनुषो दग्धवपुषः
कलङ्कस्तस्यायं वहति मलिनाङ्गारतुलनाम्।
अथैतस्य ज्योतिर्दरदलितकर्पूरधवलं
र्मरुद्भिर्भस्मेव प्रसरति विकीर्णं दिशि दिशि।।४।।

राजशेखरस्य।

चन्द्रमा, दग्धशरीर वाले कामदेव की चिता के सदृश प्रतीत हो रहा है। उसका कलङ्क (चिता के) अधजले काले अँगारे के सदृश है। पिसे हुए कपूर के सदृश उसकी शुभ्र किरणें चिता की उस भस्म के सदृश हैं, जिसे वायु प्रत्येक दिशा में बिखेर रहा है। ४।

(- राजशेखर)

तथोद्दामैरिन्दोः सरसविसदण्डद्युतिधरै-
र्मयूखैर्विक्रान्तं सपदि परितः पीततिमिरैः।
दिनंमन्या रात्रिश्चकितचकितं कौशिककुलं
प्रफुल्लं निद्राणैः कथमपि यथाम्भोरुहवनैः।।५।।

योगेश्वरस्य।

चन्द्रमा की सरल कमलनाल की कान्ति वाली और अन्धकार को पी लेने वाली उद्दाम किरणों ने तत्काल चारों ओर के (पर्यावरण) को पराक्रम से कुछ इस तरह से घेर लिया है कि रात्रि अपने को दिन समझने लगी है, उलूकवृन्द आश्चर्य से अत्यन्त चकित हैं, और कमल के वे वन, जो निद्रित होने के कारण (आँखों को बन्द कर चुके थे), वे भी किसी-न-किसी प्रकार से खिलने लगे हैं। ५।

(-योगेश्वर)

८५. बहुरूपकचन्द्रः

फेनः क्षीराम्बुराशेरयमुदयगिरेस्तुङ्गशृङ्गातपत्रं
पूर्वस्या भालदेशे तिलक इव दिशो दर्पणो यामिनीनाम्।
वापीनां राजहंसः परिलसितसटः केशरी काननाना-
माकाशस्याट्टहासः कुमुदवनचयोद्बोधशङ्खः शशाङ्कः।।१।।

राजशेखरस्य।

८५. बहुरूपिया चन्द्रमा

(सम्प्रति) चन्द्रमा, क्षीरसागरगत जलराशि का फेन, उदयाचल के उन्नत शिखरों के ऊपर लगा (श्वेत) छत्र, पूर्वदिशारूपी (रमणी) के ललाट पर लगा तिलक, रात्रिरूपी नायिका (के श्रृंगार-प्रसाधन में व्यवहृत) दर्पण, बावलियों (में विद्यमान) राजहंस, काननों में सुशोभित अयालों वाला केशरी, आकाश का अट्टहास और कुमुदवनसमूह को जगाने वाला शंख (प्रतीत हो रहा) है। १।

(- राजशेखर)

वृद्धः क्षौणिभुजां कुलस्य कुलटासङ्केतयात्रापुरो-
वर्त्ती तुच्छघटस्तमीसुततमस्तोमस्य जन्माष्टमः।
क्षीराम्भोधिरसायनं रचयति प्राचीं प्रसन्नस्मितां
दुर्दैवं कमलस्य पान्थतरुणीप्रौढाक्षिशूलं शशी।।२।।

सागरस्य।

चन्द्रमा (किसी) राजवंश का वृद्धपुरुष, कुलटा स्त्रियों की पूर्व संकेतों के अनुसार प्रवर्तित यात्रा के अवसर पर सामने रखा छोटा कलश, रात्रि के बेटे अन्धकारसमूह की जन्म-कुण्डली का (मृत्युसूचक) अष्टम भाव, क्षीरसागर में रसायन तैयार करता हुआ, कीमियागर, पूर्वदिशा की प्रसन्न मुस्कान की प्रणेता, कमलों का दुर्भाग्य और अभिसारिकाओं की आँखों में बुरी तरह खरकता हुआ काँटा (प्रतीत हो रहा) है। २।

(- सागर)

एकः सम्प्रति पाकशासनपुरीपीयूषसत्री पुरः
पारक्यं तमसामसौ कुमुदिनीचैतन्यचिन्तामणिः।

मानोच्चाटनकार्मणं मृगदृशां देवो नभोऽम्भोनिधौ
पश्योदञ्चति पञ्चबाणवणिजो यात्रावहित्रं शशी ।।३।।

हरेः।

देखो, चन्द्रदेव, अकेले ही इस समय (एक साथ) इन्द्र की पुरी (स्वर्ग) में हो रहे अमृतयाग के ऋत्विक् तथा यजमान, अन्धकार-समूह के शत्रु, कुमुदिनियों को जगाने के लिए चिन्तामणि, मृगनयनी स्त्रियों के मान को भंग करने वाले कर्मचारी तथा आकाश-सिन्धु में तैरती हुई कामदेवरूपी व्यापारी की नौका (के रूप में) गमन कर रहे हैं। ३।

(-हरि)

अमृतमयमनङ्गक्ष्मारुहस्यालवालं
मृतदिवसकपालं कालकापालिकस्य।
जयति मकरकेतोः शाणचक्रं शराणा-
ममरपुरपुरन्ध्रीदर्पणः श्वेतभानुः ।।४।।

त्रिपुरारेः।

उन चन्द्रदेव की जय हो ! जो कामदेवरूपी वृक्ष के अमृतरस से परिपूर्ण आलवाल, कालरूपी कापालिक (के हाथ में विद्यमान) गतदिवसरूपी (व्यक्ति) के कपाल, कामदेव के बाणों को (पैना करने के लिए) शाणचक्र और स्वर्ग की सुन्दरियों के (श्रृंगार-प्रसाधन में व्यवहृत) दर्पण के समान (प्रतीत हो रहे) हैं। ४।

(- त्रिपुरारि)

क्रीडाकर्पूरदीपस्त्रिदशमृगदृशां कामसाम्राज्यलक्ष्मी-
प्रोत्क्षिप्तैकातपत्रं श्रमशमनचलच्चामरं कामिनीनाम्।
कस्तूरीपङ्कमुद्राङ्कितमदनवधूमुग्धगण्डोपधानं
द्वीपं व्योमाम्बुराशेः स्फुरति सुरपुरीकेलिहंसः सुधांशुः ।।५।।

जयदेवस्य।

स्वर्गस्थ मृगनयनियों (की रति-) क्रीड़ा में प्रयुक्त कपूर के दीपक, कामदेव के साम्राज्य की राज्य-लक्ष्मी के द्वारा उठाये गये छत्र, कामिनियों की थकान को दूर करने के लिए डुलाये गये चँवर, कामदेव की पत्नी रति के कस्तूरी-पंक की मुद्रा से अंकित उपधान (तकिया),आकाश-सागर के द्वीप और देवनगरी के क्रीड़ा-हंस (के सदृश) प्रतीत होने वाला चन्द्रमा (आकाश में) चमक रहा है। ५।

(- जयदेव)

८६. अस्तमयः

यथैवैष श्रीमांश्चरमगिरिवप्रान्तजलधौ
सुधासूतिश्चेतः कनककमलाशङ्कि कुरुते।
तथायं लावण्यप्रसरमकरन्द द्रवतृषा-
पतद्भृङ्गश्रेणिश्रियमपि कलङ्कः कलयति।।१।।

कस्यचित्।

८६. अस्तमय (चन्द्रमा)

जिस प्रकार, अस्ताचल के टीले के किनारे समुद्र में (अस्त होते समय) चन्द्रमा (को देखकर) उसके सौन्दर्य-सम्पन्न और अमृत से उत्पन्न स्वर्णकमल होने की प्रतीति चित्त में होती है, उसी प्रकार उसके कलंक की शोभा को देखकर लगता है, जैसे लावण्य के फैलते हुए मकरन्दरस को पीने के लिए बेचैन भ्रमरों की कतारें उस पर टूटी पड़ रही हों। १।

(- अज्ञात कवि)

कृतपादनिगूहनोऽवसीदन्नधिकश्यामकलङ्कपङ्कलेखः।
गगनोदधिपश्चिमान्तलग्नो विधुरुत्तान इवास्ति कूर्मराजः।।२।।

शतानन्दस्य

आकाशसिन्धु के पश्चिमी किनारे से सटा हुआ, अवसादग्रस्त और (इसी कारण) अधिक श्यामल कलंक-रेखा से युक्त चन्द्रमा (को देखकर), पैर सिकोड़ कर उत्तान लेटे हुए कच्छपराज की-सी प्रतीति होती है। २।

(- शतानन्द)

मुषितमुषितालोकास्तारास्तुषारकणत्विषः
सवितुरपि च प्राचीमूले मिलन्ति मरीचयः।
श्रयति शिथिलच्छायाभोगस्तटीमपराम्बुधे-
र्जरठलवलीलावण्याच्छच्छविर्मृगलाञ्छनः।।३।।

शर्वस्य।

(चन्द्रास्त के समय) तारों की चमक बार-बार लुटी हुई लगती है, पूर्वदिशा के मूल भाग में चन्द्रमा और सूर्य की किरणें (परस्पर) मिलती (हुई प्रतीत होती) हैं।

पश्चिमसागर के किनारे शिथिल और क्षीण कान्तिवाला चन्द्रमा ऐसा प्रतीत होता है, जैसे वह नष्ट-सौन्दर्य वाली और कान्तिरहित (कोई) पुरानी लता हो। ३।

(- शर्व)

लुठत्यपरवारिधौ कमलनिर्विशेषः शशी
प्ररूढमुदयाचले चुलुकमात्रमुष्णं महः।
क्षणं गगनवेदिकामिदमनङ्कुशं गाहते
कलिन्दगिरिकन्यकातटतमालनीलं तमः।।४।।

सिल्हणस्य।

(खिलते हुए) कमलों से निरपेक्ष चन्द्रमा पश्चिमसागर में लोट रहा है, उदयाचल पर भी केवल अँजुरी भर प्रकाश उदीयमान है। (ऐसी स्थिति में) आकाश की वेदी पर क्षण भर के लिए, यमुनातटवर्ती तमाल वृक्षों के सदृश नीला-नीला अन्धकार निरंकुश भाव से ठहरा हुआ लगता है। ४।

(- सिल्हण)

स्वस्थानादवनीभुजेव पतितं दोषाकरेणेन्दुना
ताराभिर्विरलायितं प्रकृतिभिस्तस्येव निर्धामभिः।
निःश्रीकैः कुमुदाकरैर्मुकुलितं तस्यावरोधैरिव
प्रध्वस्तं तिमिरोत्करैः परिजनैस्तस्येव दुश्चारिभिः।।५।।

लक्ष्मीधरस्य।

दोषाकर (-रात्रि का कारक-) चन्द्रमा दोषों से ग्रस्त (किसी) सम्राट् की तरह अपने स्थान से च्युत हो गया है। निस्तेज प्रकृतियाँ (-मन्त्रि-परिषद्, सेना, कोष इत्यादि) जैसे पदच्युत राजा के पास से धीरे-धीरे हटती जाती हैं, वैसे ही चन्द्रमा के अस्तोन्मुख होते ही तारे (धीरे-धीरे) विरल होते जा रहे हैं। सौन्दर्यविहीन कुमुदसमूह वैसे ही बन्द होते जा रहे हैं, जैसे (पदच्युत राजा की) रानियाँ (शत्रुओं के द्वारा) बन्दी बना ली जाती हैं। तिमिर-समूह उसी प्रकार नष्ट हो गया है, जैसे (पदच्युत राजा के) दुराचारी सेवक नष्ट हो जाते हैं। ५। (- लक्ष्मीधर)

विशेष - उपर्युक्त पद्य में 'दोषाकर' शब्द श्लिष्ट है। चन्द्रमा के पक्ष में 'दोषा' शब्द रात्रि का वाचक है। राजा के पक्ष में 'दोष-समूह से ग्रस्त' अर्थ ग्राह्य है। ५।

८७. उच्चावचचन्द्रः।

नेपथ्यं भूतभर्तुस्त्रिदशपरिषदां जीवनं यामिनीना-
मुत्तंसः पासुलानां कुलरिपुरमृतस्रोतसामादिशैलः।
आतङ्कः पङ्कजानां जयति रतिकलाकेतनं मीनकेतोः
सिन्धूनामेकबन्धुः कुसुमसमुदायनन्दकन्दोऽयमिन्दुः।।१।।

शरणस्य।

८७. उच्चावच चन्द्र

यह चन्द्रमा भूतनाथ भगवान् शिव का आभूषण, देव-परिषदों का जीवन, रात्रि-सुन्दरी का कुण्डल, लम्पट नारियों (-अभिसारिकाओं) का परम्परागत शत्रु, अमृतप्रवाह का आदिपर्वत, कमलों के लिए आतंक, कामदेव की रति-कला की पताका, समुद्रों का एकमात्र बन्धु और (कुमुद प्रभृति) कुसुमों के आनन्द का मूल है। इसकी जय हो ! १।

(- शरण)

ज्योत्स्नामुग्धवधूविलासभवनं पीयूषवीचीसरः
क्षीराब्धेर्नवनीतकूटमवनीतापार्तितोयोपलः।
यामिन्यास्तिलकः कला मृगदृशां प्रेमव्रतैकाश्रमः
क्रामत्येष चकोरयाचकमहः कर्पूरवर्षः शशी।।२।।

ज्योत्स्नारूपी मुग्धा नायिका के विलास का भवन, अमृत की लहरों से युक्त सरोवर, क्षीरसागर से उत्पन्न नवनीत का पिण्ड, पृथिवी के तापजन्य कष्ट को दूर करने वाला हिमखण्ड, रजनी के (माथे) का टीका, मृगनयनी स्त्रियों की कला, प्रणयव्रत (के परिपालनार्थ निर्मित) तपोवन, चकोरों की याचना का केन्द्र और कपूर की वर्षा करने वाला यह चन्द्रमा छलाँग लगा रहा है। २।

प्राचीगण्डस्थलमलयजस्थासके कामिनीना-
मन्तर्यामिण्यमृतकिरणे वैरिणि स्वैरिणीनाम्।
ज्योत्स्नाजालं विकिरति मुहुश्चन्द्रकान्तप्रणाली-
राचामन्ति प्रियसहचरीचाटुकाराश्चकोराः।।३।।

हरेः।

पूर्वदिशा (रूपी रमणी) के कपोलों पर लगी चन्दन की थापी (के सदृश), कामिनियों के अन्तर्यामी (- हृदयस्थ परमेश्वर के समान), अमृत-किरणों से युक्त और कुलटाओं के

शत्रु चन्द्रमा के द्वारा चाँदनी का जाल फैला देने के बाद, प्रियसहचरियों की चाटुकारिता में संलग्न चकोरगण बार-बार चन्द्रकान्तमणि की नलिकाओं से आचमन कर रहे हैं। ३।

(- हरि)

तमोभिर्दिक्कालैर्वियदिव विलङ्घ्य क्व नु गतं
गता दृङ्मुद्रापि क्व नु कुमुदकोषस्य सरसः।
क्व धैर्यं तच्चाब्धेर्विदितमुदयाद्रेः परिसर-
स्थलीमध्यासीने शशिनि जगदप्याकुलमिदम्।।४।।

अपराजितरक्षितस्य।

उदयाचल की परिसरभूमि में चन्द्रमा के आसीन होते ही (- अर्थात् चन्द्रोदय होते ही-) संसार व्याकुल हो उठा ! दिशा और काल के साथ अन्धकार भी न जाने कहाँ आकाश में छलाँग लगाकर चला गया ! कुमुदों के सरस कोष की बन्द आँखों की मुद्रा भी न जाने कहाँ चली गई ? (तात्पर्य यह कि कुमुदकुसुमों के कोष खुल गये हैं)। और समुद्रों का वह (विख्यात) धैर्य भी (अव) कहाँ रह गया ! (- उनमें भी ज्वार-भाटा उठने लगा है - इस प्रकार चन्द्रोदय होते ही मानों समस्त संसार में ही हाहाकार मच गया है)। ४।

(- अपराजितरक्षित)

ऋक्षैर्वृतो स हरिपदे निवसन्समीर-
सन्तानदैन्यजनकः कुमुदप्रमोदी।
निघ्नन्निशाचरतमः पृथुनीललक्ष्मा
तारापतिः स्फुरति चित्रमनङ्गदोऽयम्।।५।।

सुरभेः।

इस पद्य के अनेक पद श्लिष्ट हैं। इस कारण इसके दो अर्थ हैं। पहला अर्थ चन्द्रमा के पक्ष में है और दूसरा सुग्रीव के अर्थ में है। दोनों क्रमशः इस प्रकार हैं - (चन्द्रमा के पक्ष में-) किरणों से परिवेष्टित, वसन्तविषुव में निवास करने वाला, वायु के प्रवाह (-प्रसार-) में दीनता का उत्पादक, कुमुदों को आनन्दित करने वाला, अन्धकार रूपी रात्रिचरों के समूह को नष्ट करता हुआ, बड़े कलंक से युक्त और नक्षत्रों का अधिपति चन्द्रमा आश्चर्यजनक रीति से (सभी को) काम-सुख प्रदान करते हुए उदित हो रहा है। (सुग्रीव के पक्ष में -) रीछों से घिरे, भगवान् श्रीराम के चरणों में निवास करते हुए, वायुपुत्र (हनुमान्) की दीनता के कारण, पार्थिव आनन्दों से आनन्दित, निशाचरसमूह का विनाश करते हुए, बड़े-बड़े (नल-) नील प्रभृति महारथियों से युक्त, तारा के स्वामी सुग्रीव प्रकट हो रहे हैं - लेकिन आश्चर्य यह है कि इस बार अंगद उनके साथ नहीं हैं। ५।

(-सुरभि)

८८. वातः

मज्जन्नम्भसि पुष्पधूलिषु लुठन्नाकम्पयन्भूरुह-
श्रेणीरुन्मदकोकिलावलिरवैराबद्धकोलाहलः।
अध्वन्यान् हृदि ताडयन् पुरवधूवासांसि विस्रंसयन्
स्वच्छन्दं भ्रमति स्मरावनिपतेरुन्मत्तको मारुतः।।१।।

कस्यचित्।

८८. वायु

महाराज कामदेव (का अनुचर) उन्मत्त पवन जलराशि में स्नान करता हुआ, पुष्पराग में लोटता हुआ, वृक्षों को कँपाता हुआ, मतवाली कोयलों की कूक से कोलाहल मचाता हुआ, पथिकों के हृदय पर प्रहार करता हुआ और नगर-वधुओं के वस्त्रों को उड़ाता हुआ स्वच्छन्द रूप से भ्रमण कर रहा है। १।

(-अज्ञात कवि)

अलीनां मालाभिर्विरचितजटाभारमहिमा
परागैः पुष्पाणामुपरचितभस्मव्यतिकरः।
वनानामाभोगे कुसुमवति पुष्पोच्चयपरो
मरुन्मन्दं मन्दं विचरति परिव्राजक इव।।२।।

वीर्यमित्रस्य।

भ्रमर-पंक्तियों (के रूप में) जटाएँ बढ़ाकर, पुष्पपराग की भस्म रमाये, वनों के प्रफुल्लित परिसर में, फूल चुनते हुए परिव्राजक (संन्यासी) की तरह पवन मन्द-मन्द विचरण कर रहा है। २।

(- वीर्यमित्र)

सुरतसमरस्वेदच्छेदप्रदो दलदम्बुज-
व्रजपरिमलस्पर्शं वर्षन्नसौ श्वसनः शनैः।
प्रसरति पिकत्रोटित्रुट्यद्रसालनवाङ्कुर-
द्रवनवपरिष्वङ्गैः शीतः कुरङ्गवधूदृशाम्।।३।।

कस्यचित्।

हरिणी के सदृश चितवनों वाली (रमणियों) के संभोग-समर में निकले स्वेद को सुखाने वाली, मर्दित कमलों के सुगन्धित स्पर्श की अनुभूति कराने वाली और कोयल की चोंच से कटी नई आम्र-मञ्जरी से टपके रस में भीगने से शीतल वायु धीरे-धीरे प्रवाहित हो रही है। ३।

(- अज्ञात कवि)

प्रमदविपिनवापीसम्भृताम्भोजराजि-
प्रकटितमकरन्दग्राहिणोऽमी समीराः।
अभिनवमदभाजां कामिनीनां कपोले
सुरतसमरखेदस्वेदमुन्मूलयन्ति।।४।।

गदाधरनाथस्य।

मद भरे वनों की बावलियों में उगे कमलों के पराग को समेटे हुए (पवन के ये झोंके प्रेम या मद्य के) नये-नये नशे में उन्मत्त कामिनियों के कपोलों पर संभोग-समर की क्लान्तिवश निस्सृत स्वेद-बिन्दुओं को पोंछ रहे हैं। ४।

(- गदाधरनाथ)

एते पल्लीपरिवृढवधूप्रौढकन्दर्पकेलि-
क्लिश्यत्पीनस्तनपरिसरस्वेदसम्पद्विपक्षाः।
वान्ति स्वैरं सरसि सरसि क्रोडदंष्ट्राविमर्द-
त्रुट्यद्गुन्द्रापरिमलगुणग्राहिणो गन्धवाहाः।।५।।

कस्यचित्।

गाँव में पली-बढ़ी बहू के, प्रचण्ड काम-क्रोध में मर्दित बड़े-बड़े स्तनों पर जमे पसीने को सुखाने वाले, तालाबों में उगे और सुअरों की दाढ़ों से उखाड़े हुए और कुचले गुन्द्रा[1] (?) के सुरभिगुण को ग्रहण करने वाले पवन के (ये झोंके) स्वच्छन्द रूप से प्रवाहित हो रहे हैं। ५।

(- अज्ञात कवि)

---

१. तालाबों में खिलने वाले किसी पुष्प का यह क्षेत्रीय लोकभाषागत नाम प्रतीत होता है- अनु.)

८९. दक्षिणवातः

चुम्बन्नाननमालुठन् स्तनतटीमान्दोलयन् कुन्तलं
व्यस्यन्नंशुकपल्लवं मनसिजक्रीडां समुल्लासयन्।
अङ्गं विह्वलयन्मनो विकलयन्मानं समुन्मूलय-
न्नारीणां मलयानिलः प्रिय इव प्रत्यङ्गमालिङ्गति।।१।।

विनयदेवस्य।

८९. दक्षिण पवन

नारियों के मुखों को चूमता हुआ, स्तनों को सहलाता हुआ, केशों को उड़ाता हुआ, चादरों (या दुपट्टों) को अस्त-व्यस्त करता हुआ, काम-क्रीड़ा का आनन्द बढ़ाता हुआ, अंग-अंग को विह्वल करता हुआ, मन को बेचैन करता हुआ तथा मान को मूल से ही उन्मूलित करता हुआ मलयानिल (एक) प्रेमी की तरह (स्त्रियों के) प्रत्येक अंग का आलिङ्गन कर रहा है। १।

(- विनयदेव)

एते ते मलयाद्रिकन्दरजुषस्तच्छाखिशाखावली-
लीलाताण्डवसम्प्रदानगुरवश्चेतोभुवो बान्धवाः।
चूतोन्मत्तमधुव्रतप्रणयिनीहुङ्कारझङ्कारिणो
हा कष्टं प्रसरन्ति पान्थयुवतीजीवद्रुहो वायवः।।२।।

श्रीपतेः।

अरे, ये तो मलयगिरि की कन्दराओं में रहने वाली और उस (पर्वत) पर उगे वृक्षों की डालों को क्रीड़ा-नृत्य की शिक्षा प्रदान करने वाली, मन्मथ की निकट सम्बन्धिनी, आम के नशे में विह्वल भ्रमर-प्रेयसियों की हुँकार को झंकृत करने वाली हवा बह रही हैं। कष्ट की बात (इतनी ही है कि) ये (अभिसार-हेतु घर से निकल पड़ीं) पान्थयुवतियों के जीवन की वैरी (बन गई) हैं। २।

(- श्रीपति)

अन्ध्रीनीरन्ध्रपीनस्तनतटलुठनायासमन्दप्रचारा-
श्चारूनुल्लासयन्तो द्रविडवरवधूहारधम्मिल्लभारान्।

जिघ्नन्तः सिंहलीनां मुखकमलवनं केरलीनां कपोलं
चुम्बन्तो वान्ति मन्दं मलयपरिमला वायवो दाक्षिणात्याः।।३।।

कस्यचित्।

आन्ध्र-निवासिनी (रमणियों) के ठोस और बड़े-बड़े स्तनों के किनारों पर लोटने के श्रम से मन्दगति वाली, द्रविड़ प्रदेश की श्रेष्ठ वधुओं के सुन्दर (पुष्प) हारों एवं केश-पाशों को उल्लसित करती हुई, सिंहलवासिनी (नारियों) के मुख-कमलों को सूँघती हुई, और केरलवासिनी (कामिनियों) के कपोलों को चूमती हुई, चन्दन की सुगन्ध से सराबोर दक्षिणी हवाएँ धीरे-धीरे बह रही हैं। ३।

(- अज्ञात कवि)

ये दोलाकेलिकाराः किमपि मृगदृशां मन्युतन्तुच्छिदो ये
सद्यः श्रृङ्गारदीक्षाव्यतिकरगुरवो ये च लोकत्रयेऽपि।
ते कण्ठे लोठयन्तः परभृतवयसां पञ्चमं रागराजं
वान्ति स्वैरं समीराः स्मरविजयमहासाक्षिणो दाक्षिणात्याः।।४।।

राजशेखरस्य।

झूला झूलने का खेल खेलने वाली, मृगनयनियों के रोष का समूल शमन करने वाली, तीनों लोकों को गुरुओं की तरह श्रृङ्गार-दीक्षा देकर उन्हें प्रणय-बन्धन में बाँधने वाली, कोयलों के कण्ठ में पञ्चम महाराग को भरने वाली, तथा कामदेव की विजय की सुदृढ़ साक्षिणी ये दक्षिणी हवाएँ उन्मुक्त रूप से बह रही हैं। ४।

(- राजशेखर)

स्वैरं स्वैरं द्रविडललनागण्डभित्तीः स्पृशन्तः
कर्णाटीनामटनकुटिलाः कुन्तलावर्त्तनेषु।
व्याधुन्वन्तो वकुललवलीनागपुंनागवल्ली-
र्लोपामुद्रादयितककुभो मारुताः संचरन्ति।।५।।

कस्यचित्।

द्रविड़-सुन्दरियों के कपोलों का उन्मुक्त रूप से स्पर्श करती हुई, कर्णाटक की (रमणियों) के केश-कलाप को नचाने के कौटिल्य से युक्त, वकुल-सुपारी-नागकेसर और

ताम्बूल-लताओं को विशेष रूप से हिलाती हुई दक्षिणी हवाएँ संचरण कर रही हैं। ५[1]

(- अज्ञात कवि)

६०. नदीवातः

प्रतितटिनि तरङ्गान्मन्दमान्दोलयन्त-
स्तरुणकरुणमल्लीफुल्लमुल्लासयन्तः।
इह हि नववसन्ते वान्ति सीमन्तिनीनां
सुरतसमरखेदच्छेदधीराः समीराः।।१।।

कस्यचित्।

६०. नदी-पवन

नदियों की तरंगों को धीरे-धीरे आन्दोलित करती हुई, मल्लिका के तरुण पुष्पों को उल्लसित करती हुई, सौभाग्यवती स्त्रियों के संभोग-समर की थकान को दूर करने के धैर्य से सम्पन्न हवाएँ, यहाँ वसन्त ऋतु के नवागमन की वेला में बह रही हैं। १।

(- अज्ञात कवि)

धुनानः कावेरीपरिसरभुवश्चन्दनतरू-
न्मरुन्मन्दं कुन्दप्रकरमकरन्दानवकिरन्।
प्रियप्रेमावर्षच्युतरचनमामूलसरलं
ललाटे लाटीनां लुठितमलकं ताण्डवयति।।२।।

कस्यचित्।

पवन, कावेरी की तट-भूमि पर उगे चन्दन वृक्षों को हिलाते हुए और कुन्द कुसुमों के पराग-कणों को बिखेरते हुए, लाट प्रदेश की (रमणियों के) माथे पर लोटती हुई उस केशराशि को धीरे-धीरे नचा रहा है, जो प्रेमी के द्वारा की गई प्रेम-वर्षा के कारण खुले जूड़े वाली और प्रारम्भ से ही सीधी है। २।

(- अज्ञात कवि)

---

१. विशेष - लोपामुद्रादयितककुभ : = लोपामुद्रा महर्षि अगस्त्य की पत्नी का नाम है। जीवन के उत्तरार्द्ध में महर्षि अगस्त्य दक्षिण में चले गये थे, अतः दक्षिण दिशा उनके नाम से प्रसिद्ध है। -अनु.

वहति मलयशैलोपान्तविश्रान्तवल्ली-
नवकिसलयभङ्गक्षीरसौरभ्यबन्धुः।
रहसि परिचितोऽयं पाण्ड्यसीमन्तिनीनां
दरतरलितरेवातीरनीरः समीरः।।३।।

उमापतिधरस्य।

मलयगिरि पर पसरी लताओं के नये पल्लवों के मसलने से निकले दूध की सुगन्धि को समेटे, पाण्ड्य प्रदेश की सौभाग्यशीलाओं का एकान्त परिचित और रेवा-तट के हिलते हुए जल की बूँदों से युक्त यह पवन प्रवाहित हो रहा है। ३।

(- उमापतिधर)

रेवानिर्झरवारिबिन्दुशिशिरः प्रेयानिवायं सखे
वातः फुल्ललवङ्गसङ्गमवशान्मन्दः कुरङ्गीदृशाम्।
वक्त्रं चुम्बति वेपथुं जनयति प्रोद्घाटयत्यंशुकं
शीत्कारं तनुते तनोति पुलकं केशान्तमाकर्षति।।४।।

अचलस्य।

सखे ! रेवा के निर्झर (-सदृश प्रचण्ड जलप्रवाहगत) जलबिन्दुओं (के सम्मिश्रण) से शीतल और लवंगपुष्प के साहचर्य के कारण मन्द-मन्द पवन, मृगी की-सी चितवनों वाली (रमणियों) के मुखों को (एक) प्रेमी की भाँति चूमता है, (उनमें) सिहरन उत्पन्न करता है, (उनके) दुपट्टों अथवा चादरों को खोलता है, (उनके द्वारा क गई) सीत्कार (की ध्वनि) का विस्तार करता है, उनका आनन्द बढ़ाता है और उनके जूड़ों को खींचता है। ४।

(-अचल)

उदञ्चत्कावेरीलहरिषु परिष्वङ्गरङ्गे लुठन्तः
कुहूकण्ठीकण्ठीरवरवलवत्रासितप्रोषितेभाः।
अमी चैत्रे मैत्रावरुणितरुणीकेलिकङ्केल्लिमल्ली-
चलद्वल्लीहल्लीसकसुरभयश्चण्डि चञ्चन्ति वाताः।।५।।

राक्षसस्य।

अरी कठोर हृदये ! चैत्र मास में ये, कावेरी की लहरों में उछलती हुई, आलिङ्गन के रंग (-मंच) पर लोटती हुई, कोयल की कुहू-कुहू-ध्वनि और सिंह की आंशिक गर्जना से प्रवास पर निकली हथिनियों को डराने वाली, दक्षिणी प्रदेशों की तरुणियों की क्रीड़ा (में

व्यवहृत) अशोक और मल्लिका लताओं की चतुर्दिक फैलती हुई सुरभि से सराबोर हवाएँ कूदती हुई चल रही हैं[1]। ५।

(– राक्षस)

६१. समुद्रवातः

वहति जलधिकूले बालताम्बूलवल्ली-
चलनविधिविदग्धः सान्द्रनीहारसार्द्रः।
गगनचरपुरन्ध्रीदन्तनिर्भिन्नवन्य-
क्रमुकफलकषायामोदसौम्यः समीरः।।१।।

दक्षस्य।

६१. समुद्री पवन

समुद्र के तट पर छोटी-छोटी ताम्बूल-लताओं को हिलाता हुआ, छैल-छबीला, सघन तुषार-कणों से आर्द्र और आकाश में विचरण करती हुई अप्सराओं के दाँतों से तोड़े गये सुपारी के फलों की कषैली सुगन्ध से सराबोर मन्द-मन्द समीर प्रवाहित हो रहा है। १।

(– दक्ष)

लवणजलधिवेलाशीकरासारवर्षी
सुरतरभसखिन्नद्राविडीभुक्तमुक्तः।
वहति मलयशैलारण्यदोलाविलासी
तरुणकरुणमल्लीगन्धबन्धुः समीरः।।२।।

धर्मपालस्य।

खारे समुद्र के तट से (बटोरी गई) जलबिन्दुओं की अजस्र वर्षा करने वाला, संभोग में थकी द्रविड़-सुन्दरियों के द्वारा उपभोग के अनन्तर (निःश्वास रूप में) छोड़ा गया, मलयगिरि के अरण्य में झूला झूलने का आनन्द उठाने वाला तथा तरुणी मल्लिका (लता) के (पुष्पों से निर्गत) सुगन्ध से सराबोर पवन बह रहा है। २।

(– धर्मपाल)

१. विशेष – मैत्रावरुणि = अगस्त्य, लाक्षणिक अर्थ है-अगस्त्य से सम्बन्धित दक्षिण दिशा में रहने वाली। कंकेल्लि = अशोकवृक्ष। हल्लीसक = घेरा बाँधकर नृत्य करती हुई।

ये कल्लोलैश्चिरमनुगता दक्षिणस्याम्बुराशेः
पीतोच्छिष्टास्तदनु मलये भोगिभिश्चन्दनस्थैः।
अन्तर्भ्रान्ताः प्रतिकिसलयं पुष्पितानां लतानां
संप्राप्तास्ते विरहशिखिनो गन्धवाहाः सहायाः।।३।।

अमरसिंहस्य।

दक्षिणी समुद्र की लहरों से अनुगत, मलय (पर्वतस्थ) चन्दन तरुओं पर रहने वाले सर्पों के द्वारा (पहले) पी गईं और फिर (निःश्वास के रूप में) छोड़ी गईं कुसुमित लताओं के पल्लव-पल्लव पर मँड़राती हुई तथा विरहाग्नि (की वृद्धि) में सहायक हवाएँ चलने लगी हैं। ३।

(- अमरसिंह)

मन्दान्दोलितदक्षिणार्णवचलत्कल्लोललीलालस-
त्कर्णाटीरतकेलिलोलसुमनोमालासमुल्लासिनः।
वाताः केरलकामिनीकुचतटे लाटीललाटे मुहुः
खेलन्तो विकिरन्ति मालववधूधम्मिल्लमल्लीस्रजः।।४।।

कस्यचित्।

मन्दगति से लहराते हुए दक्षिणी समुद्र की उठती हुई लहरों से खेल-खेल कर अलसाई, कर्णाटक (-कामिनियों) की क्रीड़ावश हिलती हुई पुष्पमालाओं को उल्लसित करने वाली, केरल की कामिनियों के स्तनों और लाट प्रदेश की नारियों के माथे पर बार-बार खिलवाड़ करती हुई हवाएँ मालव प्रदेश की वधुओं के जूड़ों में निबद्ध मल्लिका-मालाओं को पौनः पुन्येन बिखेर रही हैं। ४।

(- अज्ञात कवि)

लावण्यैश्चक्रपाणेः क्षणधृतगतयः प्रांशुभिश्चन्द्रकान्त-
प्रासादैर्द्वारकायां तरलितचरमाम्भोधितीराः समीराः।
सेवन्ते नित्यमाद्यत्करिकठिनकरास्फालकालप्रबुद्ध-
क्रुध्यत्पञ्चाननोग्रध्वनिभरविगलच्चण्डहुङ्कारगर्भाः।।५।।

कस्यचित्।

भगवान् कृष्ण की द्वारका में वे हवाएँ सेवा कर रही हैं, जो उत्कट ज्वारयुक्त समुद्र की तटवर्तिनी हैं, जिनकी गति को क्षण भर के लिए (वहाँ के) चन्द्रकान्त मणियों से बने

लावण्यमय ऊँचे-ऊँचे प्रासाद रोक लेते हैं तथा जो सदैव मदोन्मत्त हाथियों की कठोर सूँड़ों के आघात के समय जगे और क्रोधित सिंहों की तीव्र गर्जना से भरे होने के कारण प्रचण्ड हुङ्कारों से युक्त हैं। ५।

(- अज्ञात कवि)

६२. प्राभातिकवातः

अयमुषसि विनिद्रद्राविडीतुङ्गपीन-
स्तनपरिसरसान्द्रस्वेदबिन्दूपमर्दी।
स्रुतमलयजवृक्षक्षीरसौरभ्यरम्यो
वहति सखि भुजङ्गीभुक्तशेषः समीरः।।१।।

कस्यचित्।

६२. प्रभातकालीन पवन

हे सखी ! उषःकाल में यह, सोई हुई द्रविड़-रमणियों के उन्नत और बड़े-बड़े स्तनों पर विद्यमान सघन स्वेद-बिन्दुओं को पोंछने वाला, चन्दन वृक्ष से निकले क्षीर की सुगन्धि से सुरम्य और सर्पिणी-समूह के पीने से अवशिष्ट समीर बह रहा है। १।

(- अज्ञात कवि)

प्रभाते सन्नद्धस्तनिततनिमानं जलधरं
स्पृशन्तः सर्वत्र स्फुटिततरमल्लीसुरभयः।
अमी मन्दं मन्दं सुरतसमरश्रान्ततरुणी-
ललाटस्वेदाम्भःकणपरिमुषो वान्ति मरुतः।।२।।

अचलस्य।

प्रभात-काल में उमड़े और किञ्चिद् गर्जना करते हुए जलधरा (-मेघों-) का स्पर्श करते हुए, भरपूर खिले मल्लिका (पुष्पों) की सुगन्धि से युक्त, (रात्रि) में संभोग-समर में थकी युवतियों के माथे के समस्त स्वेद-बिन्दुओं को हर लेने वाले समीर (के) ये (झोंके) मन्द-मन्द बह रहे हैं। २।

(- अचल)

रजनिकरमयूखोन्निद्रनीलोत्पलाली-
परिमलबहुगन्धोवन्धुरस्तत्परागैः।
कवलितरतिखेदस्वेदबिन्दुर्निशान्ते
पुलकयति तुषारासारवर्षी समीरः।।३।।

सरसीरुहस्य।

(रात्रि में) चन्द्रमा की किरणों के कारण उनींदे नील कमलों की प्रचुर सुगन्ध से युक्त और उनके (-कमलों) के परागकणों से मनोहर, सम्भोगजन्य क्लान्ति (के सूचक) स्वेदविन्दुओं को निगल लेने वाला तथा तुषार-कणों की वर्षा करने वाला समीर प्रातः काल आनन्दित कर रहा है। ३।

(- सरसीरुह)

रामाणां रमणीयवक्त्रशशिनः खेदोदबिन्दुप्लुत-
व्यालोलालकवल्लरीः प्रचलयन्धुन्वन्नितम्बाम्बरम्।
प्रातस्त्यो वहति प्रकामविलसद्राजीवराजीरजः-
पुञ्जामोदमनोहरो रतिरसग्लानिं हरन्मारुतः।।४।।

अमरोः।

रमणियों के रमणीय मुख-कमल की थकान के (परिलक्षक) स्वेदबिन्दुओं में भीगी (उनकी) चंचल केश-लता को लहराते हुए, (स्त्रियों के) नितम्ब-वस्त्र को हिलाते हुए तथा उनकी संभोगजन्य थकान को दूर करते हुए प्रभातकालीन तथा प्रफुल्लित कमलों के पराग की भरपूर सुगन्ध से मनोहर पवन प्रवाहित हो रहा है। ४।

(- अमरु)

स्तनपरिसरभागे दूरमावर्तमानाः
श्रिततनिमनि मध्ये किंचिदेव स्खलन्तः।
ववुरतनुनितम्बाभोगरुद्धा वधूनां
निधुवनरसखेदच्छेदिनः कल्यवाताः।।५।।

रत्नाकरस्य।

विवाहिता स्त्रियों के स्तन-परिसरक्षेत्र में दूर-दूर तक आती-जाती हुई, उनके कृश कटिभाग में कुछ लड़खड़ाती हुई, स्थूल नितम्बों के विस्तार में फँसी हुई तथा सम्भोगजन्य आनन्दमयी थकान को हर लेने वाली प्रभातकालीन हवा प्रवाहित हो गई हैं। ५।

(-रत्नाकर)

६३. मदनः

सुधासूतेर्बन्धुर्मधुसहचरः पञ्चमरुचि-
र्दिशँल्लीला बह्वीः कुवलयदृशां नर्मणि गुरुः।
स देवः श्रृङ्गारी हृदयवसतिः पञ्चविशिखः
सदा स्वादूकुर्व्वन्मधुमदविकारान्विजयते।।१।।

राजशेखरस्य।

६३. मदन (कामदेव)

अमृत को प्रकट करने वाले (चन्द्रमा अथवा समुद्र) के बन्धु, वसन्त के सहचर, उज्ज्वल कान्तियुक्त, बहुसंख्यक क्रीड़ाओं के निर्देशक, कमलनयनियों के कामक्रीड़ा-शिक्षक, श्रृंगाररस के अधिष्ठाता, हृदय में बसने वाले, पाँच बाणों से युक्त तथा मद्यजन्य विकारों को स्वादिष्ट बनाने वाले कामदेव की जय हो ! १।

(-राजशेखर)

अन्तर्बहिस्त्रिजगतीरसभावविद्वा-
न्यो नर्तयत्यखिलदेहभृतां कुलानि।
क्षेमं ददातु भगवान् परमादिदेवः
श्रृङ्गारनाटकमहाकविरात्मजन्मा।।२।।

भवानन्दस्य।

जो तीनों लोकों में, रसों और भावों का ज्ञाता है, जो समस्त देहधारियों को नचाता रहता है, वह सर्वप्रथम देवता, परम ऐश्वर्य सम्पन्न, श्रृङ्गार नाटक का रचयिता महाकवि तथा स्वयम्भू कामदेव कल्याण प्रदान करे। २।

(- भवानन्द)

जयति स मदलेखोच्छृङ्खलप्रेमरामा-
ललितसुरतलीलादैवतं पुष्पचापः
त्रिभुवनजयसिद्धौ यस्य श्रृङ्गारमूर्ते-
रुपकरणमपूर्वं माल्यमिन्दुर्मधूनि।।३।।

उत्पलराजस्य।

उन कुसुमायुध कामदेव की जय हो ! जो मद्यपान करने से उच्छृङ्खल तथा प्रेम से रमणीय सुन्दरियों की सुचारु काम-क्रीड़ा के (एक मात्र) देवता हैं। तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करने में, इस श्रृङ्गार स्वरूप कामदेव के अद्भुत उपकरण (क्रमशः) पुष्पमालाएँ, चन्द्रमा, वसन्त और मद्य (ही) हैं। ३।

(- उत्पलराज)

मनसि कुसुमबाणैरेककालं त्रिलोकीं
कुसुमधनुरनङ्गस्ताडयत्यस्पृशद्भिः।
इति विततविचित्राश्चर्यसंकल्पशिल्पो
जयति मनसिजन्मा जन्मिभिर्मानिताङ्गः।।४।।

कस्यचित्।

पुष्पधन्वा और अंगहीन कामदेव, बिना छुए ही (अपने) पुष्पबाणों से, एक ही समय में, तीनों लोकों की ताड़ना (उनके) मन पर करता है। इस प्रकार विस्तृत, विचित्र और आश्चर्यमय सङ्कल्परूप शिल्प वाले, मन में उत्पन्न होने वाले तथा प्राणियों के द्वारा सम्मानित अंगों वाले कामदेव की जय हो ! ४।

(- अज्ञात कवि)

याच्यो न कश्चन गुरुः प्रतिमा च कान्ता
पूजा विलोकननिगूहनचुम्बनानि।
आत्मा निवेद्यमितरव्रतसारजेत्रीं
वन्दामहे मकरकेतनदेवदीक्षाम्।।५।।

वल्लनस्य।

हम कामदेव की उस दीक्षा की वन्दना करते हैं, जिसमें न कुछ माँगा जाता है और न कोई गुरु होता है। (इस) पूजा की मूर्त्ति है कान्ता, और पूजा की विधियों में दर्शन, आलिङ्गन और चुम्बनादि (सम्मिलित) हैं। (इसमें) नैवेद्य के रूप में (व्यक्ति) अपने को ही अर्पित कर देता है। (कामदेव की यह दीक्षा) अन्य (सभी) व्रतों पर विजय पा लेने वाली है। ५।

(- वल्लन)

६४. मदनशौर्यम्

वन्दे देवमनङ्गमेव रमणीनेत्रोत्पलच्छद्मना
पाशेनायतिशालिना सुनिबिडं संयम्य लोकत्रयम्।
येनासावपि भस्मनाञ्जिततनुर्देवः कपाली बला-
त्प्रेमक्रुद्धनगात्मजाङ्घ्रिविनतिक्रीडाव्रते दीक्षितः।।१।।

ललितोकस्य।

६४. कामदेव का शौर्य

मैं उन अंगहीन भगवान् कामदेव की वन्दना करता हूँ, जिन्होंने रमणियों के कमलनयनों के प्रच्छन्न और बड़े पाश में तीनों लोकों को मजबूती से बाँधकर, शरीर में भस्म रमाये और मुण्डमाला पहने हुए भगवान् शिव को भी बलपूर्वक प्रणयरोष से रुष्ट पार्वती के चरणों में झुकने की क्रीड़ा के व्रत में दीक्षित कर दिया है। १।

(– ललितोक)

चापः क्षमाधरपतिः फणिनां पतिर्ज्या
बाणः पुराणपुरुषस्त्रिदशाः सहायाः।
ईशः पुरामिति पुरां तिसृणां विजेता
पुष्पायुधः पुनरयं त्रिजगद्विजेता।।२।।

भवानन्दस्य।

भगवान् शिव का धनुष था हिमालय, प्रत्यञ्चा थे नागराज, बाण थे पुराणपुरुष भगवान् विष्णु और सहायक थे देवता। वे स्वयं भी सभी पुरों (– दुर्गों-) के स्वामी थे, तथापि वे केवल तीन ही पुरों पर विजय प्राप्त कर सके। (इसके विपरीत) कामदेव का धनुष तो (मात्र) पुष्पों से (ही) बना है, तब भी वह (कामदेव) तीनों लोकों का विजेता है। २।

(– भवानन्द)

अयं स भुवनत्रयप्रथितसंयमी शङ्करो
बिभर्ति वपुषाधुना विरहकातरः कामिनीम्।
अनेन किल निर्जिता वयमिति प्रियायाः करं
करेण परिलालयञ्जयति जातहासः स्मरः।।३।।

नीलपट्टस्य।

'(देखो), यह वही त्रिभुवन में विख्यात संयमी भगवान् शंकर हैं, जिन्होंने (कभी) हमें जीत लिया था। आज वे (स्वयं) विरह में कातर होकर कामिनी को धारण किये हुए हैं' - (यही सोच-सोचकर) प्रिया के हाथ को (अपने) हाथ से दुलराते हुए हँस पड़ने वाले कामदेव की जय हो ! ३।

(- नीलपट्ट)

कुलगुरुरबलानां केलिदीक्षाप्रदाने
परमसुहृदनङ्गो रोहिणीवल्लभस्य।
अपि कुसुमपृषत्कैर्देवदेवस्य जेता
जयति सुरतलीलानाटिकासूत्रधारः।।४।।

राजशेखरस्य।

स्त्रियों को काम-क्रीड़ा की दीक्षा प्रदान करने में (उनके) गुरु, रोहिणी के प्रेमी (चन्द्रमा) के परम प्रिय मित्र, अंगहीन, फूल के बाणों से (भी) देवताओं के देवता (-महादेव-) को जीत लेने वाले और कामक्रीड़ारूपी नाटिका के सूत्रधार (कामदेव) की जय हो ! ४।'

विशेष - रोहिणी प्रजापति दक्ष की पुत्री है, जो चन्द्रमा की परमप्रिय संगिनी मानी जाती है। ४।

धनुर्माला मौर्वी क्वणदलिकुलं लक्ष्यमबला-
मनोभेद्यं पद्मप्रभृतय इमे पञ्च विशिखाः।
इयाञ्जेतुं यस्य त्रिभुवनमदेहस्य विभवः
स वः कामः कामान्दिशतु दयितापाङ्गवसतिः।।५।।

कस्यचित्।

जिसका धनुष है पुष्पमाला, प्रत्यञ्चा है गुंजार करती हुई भ्रमरावली, लक्ष्य हैं स्त्रियाँ, भेदन करने का स्थान है मन, और कमलप्रभृति पाँच (फूल के) बाण हैं। त्रिभुवन पर विजय प्राप्त करने के लिए जिस अशरीरी (देवता) की इतनी ही सम्पत्ति है, वह, प्रिया के कटाक्ष में निवास करने वाला कामदेव आपकी मनःकामनाओं की सिद्धि करे। ५।

(- अज्ञात कवि)

---

१. विद्धशालभञ्जिका, नान्दी-पद्य, १.१।

९५. उच्चावचम्

पुनः प्रादुर्भावादनुमितमिदं जन्मनि पुरा
पुरारे न प्रायः क्वचिदपि भवन्तं प्रणतवान्।
नमञ्जन्मन्यस्मिन्नहमतनुरग्रेप्यनतिभाङ्-
महेश क्षन्तव्यं तदिदमपराधद्वयमपि।।१।।

मुञ्जस्य।

९५. उच्चावच (विविध, ऊँच-नीच प्रभृति)

हे त्रिपुरारिशिव ! (मेरे) पुनर्जन्म प्राप्त करने से प्रतीत होता है कि (अपने) पूर्वजन्म में मैंने आपको कहीं (और कभी) भी प्रणाम नहीं किया था। इस जन्म में आपको प्रणाम करते हुए (ही) मैं शरीररहित (हो जाऊँ) और आगे भी इससे अधिक (कुछ) पाने का पात्र मैं नहीं हूँ। हे महादेव! मेरे इन दोनों (ही) अपराधों को, आपको क्षमा कर देना चाहिए। १।

(- मुञ्ज-)

न ज्योत्स्ना न च मालती न दयिता नो वल्लकीपञ्चम-
स्ताम्बूलं न विलेपनं न च रहः केलिर्न मुक्तालता।
नो वा सत्कविसूक्तयो मम तथा हर्तुं क्षमन्ते मनः
पुण्यैरुन्मिषिता चराचरगुरोर्भक्तिर्यथा शूलिनः।।२।।

तस्यैव।

चाँदनी (रातें), मालती (-माला), प्रिया, वीणा का पञ्चम (स्वर), ताम्बूल (-सेवन), (चन्दनादि का) लेपन, एकान्त में (करणीय) काम-क्रीड़ा, मोतियों (की माला), और श्रेष्ठ कवियों के सुभाषित-इनमें से कोई भी वस्तु मेरे मन को उस प्रकार से आकृष्ट करने में समर्थ नहीं है, जिस प्रकार शुभ कर्मों के (परिणामस्वरूप) जगी हुई, चराचर जगत् के गुरु भगवान् शंकर के प्रति भक्ति (-भावना-) आकृष्ट करती है। २।

(- वही)

का दुर्दशा कुपितनिर्दयचित्रगुप्त-
वित्रासितस्य जगतो यदि देवि न स्याः।
त्वं कर्मबन्धनविमोचनधर्मराज-
लेखाधिकारपरिशोधनजातपत्री।।३।।

विरिञ्चेः।

हे देवि ! क्रुद्ध और निष्ठुर (मुंशी) चित्रगुप्त के द्वारा डराये जा रहे इस संसार की कितनी दुर्दशा हो जाती, यदि तुम (स्वयं) कर्म-बन्धन से छुटकारा दिलाने के लिए, यमराज के हिसाब-किताब में संशोधन करने वाली पत्रिका (-चिट्ठी-) न बन जातीं। (अभिप्राय यह कि भगवती की कृपा से मनुष्य को यमराज के कर्मबन्धनकारक लेखा से भी मुक्ति मिल जाती है)। ३।

(- विरिञ्चि)

स्वाङ्गैः कल्पितसान्द्रतल्परचनः श्वासानिलोल्लासिभिः
कह्लारैः कृतचामरः पृथुफणाक्लृप्तातपत्रक्रियः।
चूडारत्नधृतप्रदीपवलयो विश्वेशमाराधय-
न्नाकल्पस्थिरनिश्चयेन मनसा शेषः परं जीवति।।४।।

ब्रह्मनागस्य।

अपने अंगों से गद्दीदार शय्या बनाये हुए, श्वासवायु से प्रफुल्लित कमलों के माध्यम से चँवर डुलाते हुए, बड़े-बड़े फनों की छतरी ताने हुए और मस्तकस्थ मणियों की दीपमाला सजाये हुए शेषनाग पूरे कल्प भर स्थिर निश्चययुक्त मन से भगवान् विष्णु की आराधना करते हुए श्रेष्ठ जीवन जी रहे हैं। ४।

(- ब्रह्मनाग)

सश्लाघ्यस्तमुपस्तुवन्ति विबुधास्तेनान्वयः पावित-
स्तस्मै नाम नमन्ति तेऽपि मुनयो मान्यास्ततो बिभ्यति।
हस्ते तस्य जगत्रयी किमपरं तत्रामृतं लीयते
येन श्रीहरिपादपद्मरजसि न्यस्तं कदाचिन्मनः।।५।।

तस्यैव।

वह प्रशंसनीय है, देवता उसकी स्तुति करते हैं, वंश उससे पवित्र हो जाता है, मुनिजन उसको प्रणाम करते हैं, (समाज के) सम्मानित व्यक्ति उससे डरते हैं, उसके हाथ में तीनों लोक है, और (अधिक) क्या कहें ? अमृत भी उसमें लीन हो जाता है, जिसने कभी भी भगवान् के श्रीचरण कमलों के पराग में अपने मन को लगाया हो। ५।

(- वही -)

श्रीधरदासविनिर्मितसदुक्तिकर्णामृते पवित्रयतु।
गङ्गेव गाहमानान्प्रशमो देवप्रवाहोऽयम्।।१।। श्रीः

श्री श्रीधरदास-प्रणीत 'सदुक्तिकर्णामृत' के अन्तर्गत यह देवप्रवाह (पाठकों को) उसी प्रकार पवित्र करे, जैसे गङ्गा (अपने में) अवगाहन करने वाले को शान्ति प्रदान करती है। १। श्रीः।

इति श्रीमहामाण्डलिकश्रीधरदाससंगृहीते सदुक्तिकर्णामृते देवता-
प्रवाहो नाम प्रथमः प्रवाहः।। अत्र वीचयः ६५ श्लोकाः ४७५।।

श्री महामाण्डलिक श्रीधरदास के द्वारा संगृहीत 'सदुक्तिकर्णामृत' में देवता-प्रवाह नामक प्रथम प्रवाह (सम्पन्न हुआ)। इसमें ६५ वीचियाँ और ४७५ श्लोक हैं।

श्रृङ्गारप्रवाहवीचयः

वयसोः सन्धिरुदञ्चद्युवभावा युवतिरङ्गनाश्चर्य्यम्।
मुग्धा मध्या प्रौढा नवपरिणीता च सैव विस्रब्धा।।१।।

श्रृङ्गारप्रवाह की लहरें

वयः सन्धि, चढ़ता हुआ यौवन, युवती स्त्री, नायिका में अद्‌भुत परिवर्तन, मुग्धा, मध्या, प्रौढा, नवोढ़ा और विश्वस्त नवोढा। १।

गर्भवती सत्यवती स्वैरिण्युपदेशगुप्तबन्धक्यौ।
वैदग्ध्यवती कुलटा लक्षितकुलटा च वारवनिता च।।२।।

गर्भवती, कुलस्त्री, स्वैरिणी (असती), कुलटा का उपदेश, प्रच्छन्न असती, समझदार, कुलटा, लक्षिता कुलटा और वाराङ्गना। २।

अपि दाक्षिणात्यपाश्चात्त्यौदोच्यप्राच्ययुवतयो ग्राम्याः।
स्त्रीमात्रं खण्डितया सहान्यसंभोगचिह्नदूना च।।३।।

दाक्षिणात्यस्त्री, पश्चिमी प्रदेश की स्त्री, उत्तर और पूर्व की स्त्रियाँ, गाँव की स्त्री, स्त्रीमात्र, खण्डिता नायिका, अन्यासंभोग के चिह्नों से दुःखिता। ३।

कलितविरहिणी विरहिण्यस्या वागश्रु दूतिकावचनम्।
दयिते प्रियपरुषोत्तरवचसी चेष्टानुकथनं च।।४।।

स्पष्ट विरहिणी, विरहिणी, विरहिणी के वचन, रोदन, दूती के वचन, प्रिय के प्रति कठोर वचन, विरहिणी की चेष्टाएँ तथा सन्ताप-कथन। ४।

तापतनुत्वोद्वेगक्षणदावस्थाविभावनं तस्याः।
वासकसज्जा स्वाधीनभर्तृका विप्रलब्धा च।।५।।

दुर्बलता-उद्वेग-निशावस्था- इत्यादि का विभावन, वस्त्र-सज्जा, स्वाधीनपतिका और वंचिता नायिका। ५।

कलहान्तरिता तद्वाक् सखीवचो गोत्रतः स्खलनम्।
मानिन्युदात्तमानिन्यनुरक्तमनस्विनी तदीयोक्तिः।।६।।

कलहान्तरिता, कलहान्तरिता के वचन, सखी के वचन, गोत्र-स्खलन, मानिनी, उदात्त मानिनी, अनुरक्त मानिनी, मानिनी का कथन। ६।

तस्याः सखी प्रबोधोऽनुनयो मानक्षतिः प्रवसतः स्त्री।
यात्राक्षेपः प्रोषितपतिका तद्वाक् सखीषु तद्वचनम्।।७।।

सखी के द्वारा प्रबोधन, मान-मनौव्वल, मानहानि, प्रवासी की स्त्री, यात्राक्षेप, प्रोषितपतिका, प्रोषितपतिका के वचन, सखियों के मध्य उसका कथन। ७।

तस्याः प्रियसंवादोऽवस्थाकथनं प्रतीक्षणं पत्युः।
काकः प्रियसंभेदोऽप्यथाभिसारक्रियारम्भः।।८।।

उसका प्रिय संवाद, अवस्था-कथन, पति की प्रतीक्षा, काक, प्रियसंभेद, अभिसार-क्रिया का प्रारम्भ। ८।

अभिसारिका दिनतमोज्योत्स्नादुर्दिनगता च कुलटानाम्।
प्रलपितमबलारूपं भ्रूदृक्कर्णाधराननं वचनम्।।९।।

अभिसारिका, दिन के अन्धकार, ज्योत्सना और वर्षा में अभिसारिका की स्थिति, कुलटाओं का प्रलाप, अबला रूप, भौंह-दृष्टि-कर्ण-अधर विषयक कथन। ९।

बाहुस्तनरोमावलिमध्यं च क्रीडितानि युवतीनाम्।
अनुकूलो दक्षिणशठधृष्टग्राम्याश्च नायका मानी।।१०।।

बाहु-स्तन-रोमावलि और कटिभाग, युवतियों की क्रीड़ाएँ, अनुकूल-दक्षिण-शठ-धृष्ट-ग्राम्य और मानी नायक। १०।

प्रोषितपथिकौ वर्षापथिकः पथिकस्य नायिकास्मरणम्।
यात्राभङ्गो विरहो विरहिस्त्रीस्मरणमवलोकः।।११।।

प्रवास पर गया हुआ और पथिक नायक, वर्षा पथिक, पथिक का नायिका-स्मरण, यात्रा-भंग, विरह, विरहिणी स्त्री का स्मरण और दर्शन। ११।

चित्रं स्वप्नो यूनोरभिलाषस्तानवं गुणाख्यानम्।
उद्वेगः परिदेवनमिन्दुस्मरजलमुचामुपालम्भः।।१२।।

चित्र, स्वप्न, युवक की अभिलाषा, दुर्बलता, गुण-कथन, उद्वेग, विलाप, चन्द्रमा, कामदेव और बादलों के प्रति उपालम्भवचन। १२।

उन्मादः स्मरलेखः क्रीडावनवारिणोरलंकारः।
दूतीसंवदनं स्त्री पुंलोभनदूत्युपालम्भौ।।१३।।

उन्माद, प्रेम-पत्र, क्रीड़ा, वन, जल और अलंकार, दूतीसंवाद, स्त्री, पुरुष का प्रलोभन, दूती के प्रति उपालम्भ। १३।

मिथुनागमनं वाद्यं नृत्यं गीतं दुरोदरं दृष्टिः।
स्त्रीणां कटाक्षचाटू मधुपानं तल्पसंश्रयणम्।।१४।।

स्त्री और पुरुष का युग्म रूप में आगमन, वाद्य, नृत्य, गीत, द्यूत और दृष्टि। स्त्रियों के कटाक्ष और चाटुवाक्य, मधुपान, शय्या-सेवन। १४।

परिरम्भचुम्बनाधरदंशनखन्यासकण्ठकूजाश्च।
वस्त्राकर्षनवोढासंभोगौ निधुवनारम्भः।।१५।।

आलिङ्गन, चुम्बन, अधरक्षत, ध्वनि, न्यास, कण्ठ-कूजन, वस्त्राकर्षण, नवोढा-संभोग, रतिक्रीड़ा का प्रारम्भ। १५।

सुरतं विपरीतरतं विपरीतरतानुकथनसुरतान्तौ।
उषसि प्रियावलोकनमथ वनितानिष्क्रमो रतश्लाघा।।१६।।

सुरत, विपरीतरति, विपरीति रति के पश्चात् कथन, सुरतान्त, उषः काल में प्रिया का अवलोकन, स्त्री का निकलना, रतिक्रीड़ा की प्रशंसा। १६।

आलीनामितरेतरकथा शुकाकापलज्जमाना च।
प्रत्यूषादित्योदयमध्याङ्कास्तमयसायतिमिराणि।।१७।।

सखियों का पारस्परिक संवाद, लज्जाभाव, प्रभात, सूर्योदय, मध्याह्न, सूर्यास्त और अन्धकार। १७।

दीपेन्दूदयरजनय आरम्भः कुसुमसमयस्य।
कुसुमसमयोऽस्य वासरतरुपिकमधुपा निदाघतद्वेशौ।।१८।।

दीप-प्रज्वालन, चन्द्रोदय, रात्रि का आरम्भ, वसन्त ऋतु का आरम्भ, वसन्त ऋतु, वसन्त कालीन दिन, वृक्ष, पिक, मधुप, ग्रीष्म ऋतु और उसमें पहनी गई वेशभूषा। १८।

ग्रीष्मभवः श्रृङ्गारो दववह्निः प्रावृडह्नारम्भः।
वर्षा वार्षिकवारिदतटिनीदिनरात्रयः शरत्सन्धिः।।१९।।

ग्रीष्म ऋतु में करणीय श्रृङ्गार, जंगल की अग्नि, वर्षा ऋतु का आरम्भ, वर्षा कालीन मेघ-नदियाँ- दिन और रात्रियों तथा शरद् ऋतु की सन्धि। १९।

शरदेतदीयह्रदिनी खञ्जनहेमन्ततत्तमस्विन्यः।
हैमनहालिकपथिकौ शिशिरस्तद्ग्रामशस्यशर्माणि।।२०।।

शरद् ऋतु, शरद ऋतु में झीलों की स्थिति, खंजन पक्षी। हेमन्त ऋतु, हेमन्त ऋतु की रातें, हेमन्त ऋतु में कार्यरत हलवाहा, पथिक, शिशिर ऋतु, शिशिर कालीन ग्राम, फसलें और अन्य कल्याणकारी वस्तुएँ। २०।

उच्चावचमिति नवसप्तत्यधिकशतेन सरसवीचीनाम्।
श्रीधरदासेन सतारचि श्रृङ्गारप्रवाहोऽयम्।।२१।।

विविध विषय। इस प्रकार ७९ सरस वीचियों [1] का यह 'श्रृङ्गारप्रवाह' श्रीधरदास ने संकलित किया है।

१. वयःसन्धिवीचिः

अचञ्चलं मुग्धमुदञ्चितं दृशो-
रनुन्नतं श्रीमदुरो मृगीदृशः।

---

१. इनमें से प्रस्तुत संस्करण में केवल ५० वीचियाँ प्राप्त होती हैं। मात्र एक श्लोक ५१वीं वीचि में मिलता है।- अनु.

अभङ्गुराकूतवती गतिर्भ्रुवो-
रबद्धलक्ष्यं क्वचिदुत्कमान्तरम्।।१।।

गोसोकस्य।

१. वयः सन्धि की लहर

मृगनयनी किशोरी की आँखों का अचंचल और मुग्धभाव से ऊपर चढ़ना, बिना उभार का सौन्दर्ययुक्त वक्ष, भौंहों की स्थिर और साभिप्राय गति और आन्तरिक उत्कण्ठायें (सभी) कहीं लक्ष्य से नहीं बँधतीं। १।

(-गोसोक)

अप्रकटवर्तितस्तन-मण्डलिकानिभृतचक्रदर्शिन्यः
आवेशयन्ति हृदयं स्मरचर्यागुप्तयोगिन्यः।।२।।

तस्यैव।

उभाररहित और वर्तुलाकार स्तन-मण्डल के गुप्तचक्र को प्रदर्शित करने वाली गुप्तयोगिनी (-गोपनीय ढंग से योग साधना करने वाली तथा प्रच्छन्न रूप से संभोग कराने वाली) की काम चेष्टाएँ हृदय को आविष्ट करती हैं। २।

(- वही)

विशेष - किशोरी की परिकल्पना यहाँ योग की एक गुप्तसाधिका के रूप में की गई है। 'चक्र-साधना' तान्त्रिक-साधना का महत्त्वपूर्ण अंग है। किशोरी की रुचि तो काम-क्रीड़ाओं को जानने में होती है, किन्तु बड़ों से छिपाकर ही वह काम-चेष्टाओं में निरत होती हैं। २।

यूनां पुरः सपदि किंचिदुपेतलज्जा
वक्षो रुणद्धि मनसैव न दोर्लताभ्याम्।
प्रौढाङ्गनाप्रणयकेलिकथासु बाला
शुश्रूषुरन्तरथ बाह्यमुदास्त एव।।३।।

श्रीहनूमतः।

(कोई) किशोरी (जब) युवकों के सामने पड़ जाती है, तब वह लज्जित होकर अपने वक्षःस्थल को मन से ही ढकने का प्रयास करती है, बाहुलताओं से नहीं। (इसी प्रकार) बड़ी उम्र की स्त्रियाँ जब (आपस में) प्रेम और काम-क्रीड़ा सम्बन्धी वार्तालाप करती हैं, उस समय वह किशोरी अन्तःकरण से तो उनकी बातें सुनना चाहती है, लेकिन ऊपर से उदासीनता प्रकट करती है - (जैसे उसे इन बातों में कोई रुचि ही न हो !) ३।

(- श्रीहनुमान्)

अहमहमिकाबद्धोत्साहं रतोत्सवशंसिनि
प्रसरति मुहुः प्रौढस्त्रीणां कथामृतदुर्दिने।
कलितपुलका सद्यः स्तोकोद्गतस्तनकोरके
वलयति शनैर्बाला वक्षस्थले तरलां दृशम्।।४।।

धर्माशोकदत्तस्य।

(जब) प्रौढ़ा स्त्रियाँ आपस में एक-दूसरी से आगे बढ़कर, काम-क्रीड़ाजन्य आनन्द-वर्षा की चर्चा कर रही होती हैं, उस समय कन्या बार-बार (उनके मध्य किसी-न-किसी बहाने से) जाती है। (उनकी बातों को सुनकर प्रसन्न होती हुई वह) तत्काल अपने थोड़े-थोड़े उभरे कलिका-सदृश स्तनों से युक्त वक्षः स्थल पर धीरे-धीरे तरल दृष्टि डालती रहती है। ४।

(- धर्माशोकदत्त)

लावण्यामृतसान्द्रसिन्धुलहरीसंसिक्तमस्या वपु-
र्जातस्तत्र नवीनयौवनकलालीलालतामण्डपः।
तत्रायं स्पृहणीयशीतलतरुच्छायाप्रसुप्तोत्थितः
संमुग्धो मधुबान्धवः स भगवानद्यापि निद्रालसः।।५।।

भिक्षोः।

किशोरी का शरीर लावण्य रूपी अमृत से भरपूर भरे समुद्र की लहरों से सिंचित है। उसमें नये-नये यौवन की कलाओं की क्रीड़ा-रूप लताओं से बने मण्डप में ऋतुराज वसन्त के मित्र भगवान् कामदेव मनचाहे शीतल वृक्षों की छाया में सोने के बाद जग तो गये हैं, लेकिन अभी भी वे सम्मोहित भाव से नींद में अलसाये पड़े हैं। (अभिप्राय यह कि किशोरी में अभी काम-भावना का स्वल्प संचार ही हुआ है)। ५।

(- भिक्षु)

२. किंचिदुपारूढयौवना

यत्प्रत्यङ्गं स्फुटमनुसरन्त्यूर्मयो विभ्रमाणां
क्षोभं धत्ते यदपि विपुलः स्निग्धलावण्यपङ्कः।
उन्मग्नं यत्स्फुरति च मनाक्कुम्भयोर्युग्ममेत-
त्तन्मन्येस्याः स्मरगजयुवा गाहते हृत्तडागम्।।१।।

विधूकस्य।

२. कुछ-कुछ चढ़ते यौवन वाली नायिका

इस (किशोरी नायिका) के (शरीर में) हाव-भाव की लहरें प्रत्येक अंग का अनुसरण कर रही हैं, स्नेहभरे लावण्य के पंक में भरपूर क्षोभ उत्पन्न हो रहा है, और (वक्षःस्थल पर) स्तन कलशों का थोड़ा-थोड़ा धीरे-धीरे उभार हो रहा है- इन सबसे मुझे प्रतीत होता है कि कामदेव रूपी युवा हाथी (इस किशोरी के) हृदयरूपी सरोवर में (अब) स्नान करने लगा है। १।

(- विधूक)

भ्रुवोः काचिल्लीला परिणतिरपूर्वा नयनयोः
स्तनाभोगो व्यक्तस्तरुणिमसमारम्भसमये।
इदानीमेतस्याः कुवलयदृशः प्रत्यहमयं
नितम्बस्याभोगो नयति मणिकाञ्चीमधिकताम्।।२।।

राजोकस्य।

चढ़ती जवानी के समय (सभी अंग एक समान नहीं रह जाते) भौंहों में कुछ (भिन्न) हाव-भाव (आ जाते) हैं, आँखों में अपूर्व परिपक्वता (आ जाती) है, स्तनों का विस्तार स्पष्ट हो उठता है । (और इसके अतिरिक्त) अब इस कमलनयनी (किशोरी) को, नितम्बों के प्रतिदिन हो रहे विस्तार के कारण अपेक्षाकृत अधिक बड़ी मणिकाञ्ची (करधनी) की (आवश्यकता पड़ने लगी) है। २।

(- राजोक)

दरोत्तानं चक्षुः कलितविरलापाङ्गचलनं
भविष्यद्विस्तारस्तनमुकुलगर्भालसमुरः।
नितम्बे संक्रान्ताः कतिपयकला गौरवजुषो
वपुर्मुञ्चद्बाल्यं किमपि कमनीयं मृगदृशः।।३।।

कस्यचित्।

मृगनयनी (किशोरी) के शरीर से जब बचपन बिदाई ले रहा होता है, उस समय उसमें कुछ (अनिर्वचनीय) कमनीयता आ जाती है। (उस समय उसकी) भयवश ऊपर उठी आँखों के अपाङ्ग भाग की गतिविधियों में विरलता दिखाई देने लगती है, विकसित हो रही स्तनकलिकाओं से वक्षःस्थल (कुछ) अलसाया-सा लगने लगता है, और नितम्बों में कुछ भारीपन आ जाता है। ३।

(- अज्ञात कवि)

पद्भ्यां मुक्तास्तरलगतयः संश्रिता लोचनाभ्यां
श्रोणीबिम्बं त्यजति तनुतां सेवते मध्यभागः।
धत्ते वक्षः कुचसचिवतामद्वितीयं च वक्त्रं
तद्गात्राणां गुणविनियमः कल्पितो यौवनेन।।४।।

राजशेखरस्य।

(यौवन में प्रवेश करती हुई किशोरी के) पैरों के द्वारा छोड़ी गई चंचल गतिविधियाँ लोचनों में समा जाती हैं, अर्थात् आँखें चंचल होकर थिरकने लगती हैं। श्रोणिभाग (-पृष्ठास्थि-) तो कृशता का परित्याग कर देता है, लेकिन वही कृशता कटि में आ जाती है। वक्षःस्थल स्तनों का सचिव बन जाता है, और मुख तो अद्वितीय होता ही है। (इस प्रकार) यौवन के कारण (किशोरियों के) विभिन्न अंगों में गुणों का पारस्परिक आदान-प्रदान (विनिमय) होने लगता है। ४।

(- राजशेखर)

गते बाल्ये चेतः कुसुमधनुषा सायकहतं
भयाद्वीक्ष्यैवास्याः स्तनयुगमभून्निर्जिगमिषुः।
सकम्पा भ्रूवल्ली चलति नयनं कर्णकुहरं
कृशं मध्यं भुग्ना वलिरलसितः श्रोणिफलकः।।५।।

शतानन्दस्य।

बचपन के बीत जाने पर, (किशोरी के), कामदेव के बाणों से घायल मन को देखते ही (उसके) स्तन मानों भय से ग्रस्त होकर निकल भागना चाहते हैं (अर्थात् स्तनों का उभार बढ़ जाता है), भ्रू-लता काँपने लगती है, आँखें कानों तक फैल जाती हैं। कटिभाग कृश हो जाता है, त्रिवलि वक्र हो जाती है, और श्रोणिपटल अलसाया-सा लगता है। ५।

(- शतानन्द)

३. युवतिः

तरन्तीवाङ्गानि स्फुरदमललावण्यजलधौ
प्रथिम्नः प्रागल्भ्यं स्तनजघनमुन्मुद्रयति च।
दृशोर्लीलारम्भाः स्फुटमपवदन्ते सरलता-
महो सारङ्गाक्ष्यास्तरुणिमनि गाढः परिचयः।।१।।

राजशेखरस्य।

३. युवती

(इस) मृगनयनी युवती का यौवन से (अब) घनिष्ठ परिचय हो गया है। (इसीलिए इसके) अंग लावण्य के लहराते हुए निर्मल सिन्धु में तैर-से रहे हैं। प्रौढ़ विस्तार से स्तनों और जाँघों की निगूढ़ता खुलती जा रही है। आँखों का खेल प्रारम्भ में ही स्पष्ट रूप से सरलता को धता बता रहा है। १।

(- राजशेखर)

अतन्त्री वाग्वीणा स्तनयुगलमग्रीवकलसा-
वनब्जं दृङ्गीलोत्पलदलमपत्रोरुकदली।
अकाण्डा दोर्वल्ली वदनमकलङ्कः शशधर-
स्तदस्यास्तारुण्यं भुवनविपरीतं घटयति।।२।।

वाग्वीणस्य।

(तारुण्य के कारण इस युवती की) वाणी बिना तारों की वीणा हो गई है, दोनों स्तन गरदनरहित घट हो गये हैं, आँखें, कमलों के न रहने पर भी, नीलकमल की पंखुरियाँ प्रतीत होती हैं। जाँधें पत्ररहित कदली (-स्तम्भ) - सी हैं, भुजाएँ गाँठरहित लताएँ लगती हैं और मुख को (देखकर प्रतीत होती है जैसे) चन्द्रमा अपने कलङ्क से मुक्त हो गया हो! (इस प्रकार) यौवन के कारण सब कुछ लोक-प्रसिद्धि के विपरीत ही घट रहा है। २।

(- वाग्वीण)

न जङ्घे गौराङ्ग्याः सरसकदलीस्तम्भयुगलं
न मध्योऽयं वेदी न कुचयुगलं काञ्चनघटौ।
न काञ्ची किञ्चायं स्फुरति परितस्तोरणगुणः
स्मरस्यैतन्मन्ये सकलमभिषेकोपकरणम्।।३।।

कस्यचित्।

ये, गौरांगी (युवती) की जाँघें नहीं हैं, बल्कि सरल कदली के दो स्तम्भ हैं। यह (उसका) मध्यभाग भी नहीं है, यह तो वास्तव में (-अग्नि-) वेदी है, ये (उसके) कुचयुगल नहीं हैं, बल्कि स्वर्णकलश हैं, और (कमर में) यह करधनी भी नहीं है, यह तो (वस्तुतः) चारों ओर बाँधी गई बन्दनवार है। मुझे लगता है, जैसे कामदेव का राज्याभिषेक करने के लिए उपर्युक्त समस्त अभिषेक सामग्री एकत्र कर दी गई हो ! ३।

(- अज्ञात कवि)

तदेतत्सर्वस्वं भुवनजयिनः पुष्पधनुषो
मनुष्याणामेकं तदिदमसमं जीवितफलम्।
इदं तत्सौख्यानां कुलभवनमाद्यं त्रिभुवने
यदेतत्तारुण्योपहितमहिमानो मृगदृशः।।४।।

कस्यचित्।

यह विश्वविजयी कामदेव का सर्वस्व है, मनुष्यों के जीवन का एकमात्र अनुपम फल है, मनुष्यों के सुखों का कुल-गृह है जो मृगनयनी युवतियाँ तरुणाई के कारण महिमामण्डित हो गई हैं। ४।

(- अज्ञात कवि)

मध्यं बद्धवलित्रयं विजयते निस्सन्धिबन्धोन्नम-
द्विस्तारिस्तनभारमन्थरमुरो मुग्धाः कपोलश्रियः।
किञ्चामुग्धविनिद्रनीरजदृशस्तारुण्यपुण्यातिथे-
रस्याः कुङ्कुमपङ्कलेपलडहच्छायं वपुर्वर्तते।।५।।

कस्यचित्।

यौवनरूपी पावन अतिथि (के पदार्पण से इस युवती का) मध्यभाग त्रिवलि से निबद्ध होने के कारण उत्कृष्ट हो गया है। बिना जोड़ के, ऊपर उठते और फैलते हुए स्तनों के भार से वक्षःस्थल मन्थर हो गया है, कपोलों की सुषमा अत्यन्त सम्मोहक हो गई है, कमल-सदृश नयन मुग्धभाव से निद्रालस-से बने रहते हैं। इसका (सम्पूर्ण) शरीर इतना मनोहर हो गया है, जैसे उस पर कस्तूरी का लेप कर दिया गया हो ! ५।

(- अज्ञात कवि)

४. नायिकाद्भुतम्

मध्ये हेमलतं कपित्थयुगलं प्रादुर्बभूव क्रम-
प्राप्तौ तालफलद्वयं तदभवन्निःसन्धिभावस्थितम्।
पश्चाद्बद्धसमुन्नतिव्यतिकरं सौवर्णकुम्भद्वया-
कारेण स्फुटमेव तम्परिणतं क्वेदं वदामोद्भुतम्।।१।।

वेतोकस्य।

४. नायिका में अद्भुत (परिवर्तन)

मध्यभाग में, (पहले तो) स्वर्णलता में कपित्थ (कैथे) के दो फल उत्पन्न हुए; बढ़कर वे ताड़ के दो ऐसे फल लगने लगे, जिनके बीच में कोई अन्तर नहीं रह गया था। बाद में वे फल इतने बड़े हो गये कि स्पष्ट ही दो स्वर्णकलशों के आकार के लगने लगे। पकने पर, (अब) वे इतने अद्भुत हो गये हैं कि उनके विषय में (हम) क्या बताएँ ? १।

(- वेतोक)

दृष्टा काञ्चनयष्टिरद्य नगरोपान्ते भ्रमन्ती मया
तस्यामद्भुतमेकपद्ममनिशं प्रोत्फुल्लमालोकितम्।
तत्रोभौ मधुपौ तथोपरि तयोरेकोऽष्टमीचन्द्रमा-
स्तस्याग्रे परिपुञ्जितेन तमसा नक्तंदिवं स्थीयते।।२।।

तस्यैव।

मैंने, नगर के किनारे-किनारे घूमती हुई एक सोने की छड़ी देखी। उसमें मैंने, दिन-रात में निरन्तर खिले रहने वाले अद्भुत कमल को देखा। उस कमल पर दो भौंरे (मड़रा रहे थे)। भौंरों के ऊपर अष्टमी का चन्द्रमा (चमक रहा था), और उस चन्द्रमा के आगे संचित अन्धकार दिन-रात डेरा डाले रहता है। २।

(- वही)

दृष्टाः शैवलमञ्जरीपरिचिताः सिन्धोश्चिरं वीचयो
रत्नान्यप्यवलोकितानि बहुशो युक्तानि मुक्ताफलैः।
यत्तु प्रोज्झितलाञ्छने हिमरुचावुन्निद्रमिन्दीवरं
संसक्तं च मिथो रथाङ्गमिथुनं तत्कुत्र दृष्टं पुनः।।३।।

रथाङ्गस्य।

समुद्र की, शैवालमञ्जरी से परिचित लहरों को मैंने चिरकाल तक देखा; बहुसंख्यक मोती जड़े रत्नों को भी देखा, लेकिन कलंकरहित चन्द्रमा पर प्रफुल्लित नीलकमलों और उन दोनों के मध्य चिपके हुए चकवा-चकई के जोड़े को (केवल एक बार ही देखा उसके बाद)- वे फिर कहाँ दिखाई पड़े ! ३।

(- रथाङ्ग)

लावण्यसिन्धुरपरैव हि केयमत्र
यत्रोत्पलानि शशिना सह संप्लवन्ते
उन्मज्जति द्विरदकुम्भतटी च यत्र
यत्रापरे कदलकाण्डमृणालदण्डाः ।।४।।

विकटनितम्बायाः ।

लावण्य की यह कोई दूसरी ही झील है, जहाँ कमल चन्द्रमा के साथ तैरते रहते हैं। गजकुम्भतटी जहाँ पानी से बाहर निकली रहती है, और कदली के स्तम्भ और मृणाल दण्ड वहाँ (एक साथ दिखाई पड़ते) हैं। ४।

(- विकटनितम्बा)

किं कोऽप्येष मम भ्रमः किमथवा जातो दृशां मादृशां
दोषस्तैमिरिकः किमेष सुमहानुत्पातनामा विधिः।
यत्रीलाञ्जनसंनिभोत्पलदलद्वन्द्वोल्लसत्पञ्चम-
व्याहारी दिवसे च वर्द्धितरुचिर्गेहे शशी पार्वणः।।५।।

कस्यचित्।

मेरा क्या यह कोई भ्रम है अथवा मेरे जैसों की आँखों की, धुँधलेपन की बड़ी बीमारी है, अथवा कोई उत्पात है जो काजल के सदृश नीलकमल की दो पंखुरियों के पास कोयल कूकती रहती है और घर में दिन में भी पूर्णिमा के चन्द्रमा की बढ़ी हुई कान्ति बनी रहती है। ५।

(- अज्ञात कवि)

५. मुग्धा

वारंवारमनेकधा सखि मया चूतद्रुमाणां वने
पीतः कर्णदरीप्रणालवलितः पुंस्कोकिलानां ध्वनिः।
तस्मिन्नद्य पुनः श्रुतिप्रणयिनि प्रत्यङ्गमुत्कम्पितं
तापश्चेतसि नेत्रयोस्तरलता कस्मादकस्मान्मम।।१।।

५. मुग्धा (नायिका)

अरी सखी ! अमराई में मैंने अनेक बार नरकोयल की, कानों में उमड़ती-घुमड़ती और गूँजती हुई ध्वनि को बड़े चाव से सुना है। आज फिर मैं उसी अमराई में, जहाँ मेरे

कान लगे रहते हैं, (गई थी), लेकिन उस कूक को सुनते ही (न जाने) क्यों अकस्मात् मेरा मन सन्ताप से भर गया, आँखें नम हो उठीं, और अंग-अंग (किसी अपूर्व) उत्कण्ठा से भर गया ! १।

ववुरेव मलयमरुतो जगुरेव पिकाः परारि च परुच्च।
उत्कण्ठाभरतरलं सखि मानसमैषमः किमिदम्।।२।।

कालिदासस्य।

अरी सखी ! मलयानिल (के झोंके) तो गतवर्ष भी बहे थे, कोयलों ने पिछले साल भी गीत गाये थे (लेकिन तब कुछ भी नहीं हुआ था)। परन्तु इस बार मेरा मन (न जाने किसी अनजानी उत्कण्ठा से) चंचल हो उठा है ! सखी ! यह (अनजाना अनुभव) क्या है ? २।

(- कालिदास)

सा पत्युः प्रथमापराधसमये सख्योपदेशं विना
नो जानाति सविभ्रमाङ्गवलनावक्रोक्तिसंसूचनम्।
स्वच्छैरच्छकपोलमूलगलितैः पर्यस्तनेत्रोत्पला
बाला केवलमेव रोदिति लुठल्लोलालकैरश्रुभिः।।३।।

अमरोः।

(पति ने सुहागरात में जब) इस मुग्धा नायिका के प्रति पहली बार 'अपराध' किया तब तक सखियों से उसे (दाम्पत्य-जीवन के विषय में) कोई सीख नहीं मिली थी। (इस कारण शारीरिक) हाव-भाव, चेष्टाओं, अंगों में उठने वाली ऐंठन और उनके विषय में परोक्ष कथनों की उसे कोई जानकारी नहीं थी। (इसीलिए पति की चेष्टाओं को याद कर-करके) वह बाल-वधू केवल रो भर रही है और उसके आँसू बड़े-बड़े नेत्र-कमलों से निकलकर, गोरे-गोरे गालों पर लुढ़कते हुए, बालों की छितरी हुई चंचल लटों पर (गिरते जा रहे) हैं। ३।'

(- अमरु)

ध्रुवमुदयतटीषु वल्लयस्ता
यदुदिततन्तुचयैर्भवन्ति काञ्चाः।
इह हरिणदृशः फलैर्यदीयै-
र्विदधति मौक्तिकनामभिश्च हारान्।।४।।

राजशेखरस्य।

---

१. अमरुशतक (२९वाँ पद्य) के कुछ टीकाकारों ने मानवती मुग्धा नायिका के सन्दर्भ में भी इसकी व्याख्या की है।- अनु.

निश्चित ही, उदय (गिरि) के किनारे-किनारे (की तलहटी में) वे ही लताएँ हैं, जिनके निकले हुए तन्तु-समूहों से करधनियाँ बन जाती हैं। यहीं पर मृगनयनी (युवतियाँ) उनके 'मौक्तिक' नाम के फलों से हार गूँथ रही हैं। ४।

(- राजशेखर)

यावद्यावत्कुवलयदृशा मृज्यते दन्तराजि-
स्तावत्तावद्द्विगुणमधरच्छायया शोणशोचिः।
भूयोभूयः प्रियसहचरीदर्शितादर्शभित्तौ
दृष्ट्वा दृष्ट्वा न विरमयते पाणिमद्यापि मुग्धा।।५।।

देवबोधस्य।

कमलनयनी मुग्धा (नायिका) जितनी बार दन्त-पंक्ति को स्वच्छ करती है, उतनी ही बार वह (-दन्त-पंक्ति-) अधरों की परछाईं से दूनी लाल-लाल हो जाती है। बार-बार (अपनी) प्रिय सखी के द्वारा दिखाये गये दर्पण में (इस स्थिति को) देख-देखकर भी, वह भोली नायिका अपने हाथ को नहीं रोक रही है ! ५।

(- देवबोध)

६. मध्या

विरम नाथ विमुञ्च ममाञ्चलं
शमय दीपमियं समया सखी।
इति नवोढवधूवचसा युवा
मुदमगादधिकां सुरतादपि।।१।।

रुद्रटस्य।

६. मध्या (नायिका)

'अरे स्वामी ! (थोड़ा तो) रुको, मेरे आँचल को (तो) छोड़ दो। (जरा) यह दीपक तो बुझा दो। (देखो, मेरी) सखी भी पास में ही है- (इसलिए ..)' - इस प्रकार नवोढावधू के वचनों से युवक (-पति-) को रति-क्रीड़ा से भी अधिक आनन्द प्राप्त हुआ। १।

(- रुद्रट)

दृष्टिः स्निह्यति निर्भरं प्रियतमे वैदग्ध्यभाजो गिरः
पाणिः कुन्तलमालिकाविरचने त्यक्तान्यकार्यग्रहः।
वक्षः संव्रियते पुनः पुनरिदं भारालसं गम्यते
जाता सुभ्रु मनोरमा तव दशा कस्मादकस्मादियम्।।२।।

तस्यैव।

हे सुन्दर भौंहों वाली ! तुम्हारी प्यार भरी दृष्टि पूरी तरह प्रियतम पर ही केन्द्रित है; वाणी में विदग्धता आ गई है, हाथ (पहले से) लिये गये दूसरे कामों को छोड़कर (केवल) जूड़ा सजाने में ही लगे हैं। सीना भी बार-बार उठ-गिर रहा है। (नितम्बों के) भार से तुम्हारी चाल भी अलसाई-अलसाई है। (अरी सखी !) अकस्मात् तुम्हारी यह दशा (इतनी) सुन्दर कैसे हो गई है ? २।

(- वही)

यथा रोमाञ्चोऽयं स्तनभुवि लसत्स्वेदकणिको
यथा दृष्टिस्तिर्यक् पतति सहसा संकुचति च।
तथा शङ्केऽमुष्याः प्रणयिनि दरास्वादितरसं
न मध्यस्थं चेतः प्रगुणरमणीयं न च दृढम्।।३।।

कस्यचित्।

इस (स्त्री) के स्तन-परिसर में जिस प्रकार से स्वेद कणों से सुशोभित रोमाञ्च हो रहा है और जिस प्रकार से इसकी दृष्टि (पहले तो कहीं पर) तिरछी-तिरछी पड़ती है (फिर) अचानक संकुचित हो जाती है-इससे प्रतीत होता है कि अपने प्रेमी से इसे आनन्द की प्राप्ति हो चुकी है, क्योंकि इसका चित्त (अब) न तो मध्यस्थ रह गया है और न दृढ़ ही है। ३।

न वक्ति प्रेमार्द्रं न खलु परिरम्भं रचयति
स्थितौ तस्यां तस्यां करकमललीलां न सहते।
स्मितज्योत्स्नाकान्तं मुखमभिमुखं नैव कुरुते
तथाप्यन्तः प्रीतिं वपुषि पुलकोऽस्याः कथयति।।४।।

कालिदासस्य।

(यद्यपि यह स्त्री) न तो प्रेमसिक्त वाक्य बोलती है और न आलिङ्गन मुद्रा ही बनाती है। विभिन्न अवस्थाओं में (यह) करकमलों के खिलवाड़ को भी सहन नहीं करती। मुस्कान की चाँदनी से सुन्दर अपने मुख को यह (सबके) सामने भी नही करती, तथापि इसके शरीर भर में विद्यमान प्रसन्नता इसकी आन्तरिक प्रीति-भावना को प्रकट ही कर देती है। ४।

(- कालिदास)

यदन्योन्यप्रेमप्रवणयुवतीमन्मथकथा
समारम्भे स्तम्भीभवति पुलकैरञ्चिततनुः।
तथा मन्ये धन्यं परमसुरतब्रह्मनिरतं
कुरङ्गाक्षी दीक्षागुरुमकृत कञ्चित्सुकृतिनम्।।५।।

नरसिंहस्य।

एक दूसरे के प्रेम में अनुरक्त युवती का शरीर, काम-क्रीड़ाओं की चर्चा का प्रारम्भ होते ही प्रसन्नता से रोमाञ्चित हो उठता है और वह ठहरकर (उस चर्चा को सुनने लगती है); इससे मुझे प्रतीत होता है कि इस मृगनयनी ने (अवश्य ही) किसी संभोग-ब्रह्म (की साधना में) निरत पुण्यात्मा को अपनी दीक्षा का गुरु बनाकर उसे कृतार्थ कर दिया है। ५।

(- नरसिंह)

७. प्रगल्भा

गण्डे मण्डनमात्मनैव कुरुते वैदग्ध्यगर्वादसौ
मुक्ता हेमविभूषणानि कुरुते तालीदलेषु ग्रहम्।
मन्दा कन्दुकखेलनाय कुरुते शारीषु शिक्षारसं
तन्व्याश्चित्रमकाण्ड एव लडहे भावे निबद्धो भरः।।१।।

कस्यचित्। विक्रमाङ्कदेव च. ८।८२

७. प्रगल्भा

विदग्धता (-समझदारी-) के अहंकारवश (प्रगल्भा नायिका) स्वयं ही अपने कपोलों का श्रृङ्गार कर रही है। (इसी क्रम में) वह स्वर्णाभूषणों को छोड़कर ताड़पत्रों को ग्रहण कर रही है। (अब) गेंद खेलने में (उसकी रुचि) कम हो गई है (और वह) सारिकाओं के शिक्षण में (अधिक) आनन्द पा रही है। इस तन्वङ्गी में, असमय ही (प्रचुर) रमणीयता आ गई है, यह आश्चर्य ही है ! १।

(- अज्ञात कवि)[1]

---

१. विक्रमाङ्कदेवचरित (८.८२) में यह पद्य उपलब्ध हो जाता है।- अनु.)

दोलायां जघनस्थलेन चलता लोलेक्षणा लज्जते
धत्ते दिक्षु निरीक्षणं स्मितमुखी पारावतानां रुतैः।
स्पर्शः कण्टककोटिभिः कुटिलया लीलावनौ नेष्यते
सज्जं मौग्ध्यविसर्जनाय सुतनोः शृङ्गारमित्रं वपुः।।२।।

बिल्हणस्य। ८।८६

(प्रगल्भा नायिका) जब झूले पर बैठती है, तो (उसकी) जाँघें हिलती रहती हैं। दृष्टि में चंचलता रहती है, (कुछ) लज्जा (भी) करती है। कबूतर जब 'गुटर-गूँ' करते हैं, तो दिशाओं में (इधर-उधर) ताकती रहती है। लीलास्थली पर इस कुटिल स्त्री को काँटो की नोंक का स्पर्श (तक) अच्छा नहीं लगता। इसका शृङ्गार-सहचर शरीर (अब) मुग्धभाव का परित्याग करने के लिए (पूर्णतया) तैयार है। २।

(- बिल्हण, विक्रमाङ्कदेवचरित, ८.८६)

प्रियस्य रुढप्रणयस्य काचि-
त्किञ्चित्समुत्सार्य नितम्बबिम्बम्।
भ्रुवस्त्रिभागेन तरङ्गितेन
सलीलमर्धासनमादिदेश।।३।।

प्रवरसेनस्य।

किसी (प्रगल्भा स्त्री) ने, अपने पक्के प्रेम वाले प्रेमी को, (अपने) नितम्ब को कुछ खिसकाकर, भौंहों के तीन भागों को लहराकर, क्रीड़ापूर्वक, आसन के आधे भाग पर (बैठने के लिए) आदेश दिया। ३।

(- प्रवरसेन)

मधुरवचनैः सभ्रूभङ्गैः कृताङ्गुलितर्जनै-
रलसवलितैरङ्गन्यासैर्महोत्सवबन्धुभिः।
असकृदसकृत्स्फारस्फारैरपाङ्गविलोकितै-
स्त्रिभुवनजये सा पञ्चेषोः करोति सहायताम्।।४।।

रुद्रटस्य।

वह (प्रगल्भा स्त्री अपने) मधुर वचनों से, भौंहे नचाकर उँगलियों से तर्जना करती हुई, (यौवन-) महोत्सव की सखियों के सदृश अँगड़ाइयाँ लेती हुई, बार-बार आँखें फाड़कर देखती हुई, पञ्चायुध कामदेव की, त्रिलोक-विजय में सहायता कर रही है। ४।

(- रुद्रट)

अभ्यस्य स्मरदंशकौशलमुपाध्यायीरुपास्यावयोः
क्रीडाम्नायरहस्यवस्तुनि मिथोऽप्यासीज्जिगीषा सखि।
उत्कम्पोत्पुलकाङ्गसंभृतघनस्वेदाविलस्तन्मया
सद्यो निष्प्रतिभः स मन्मथकलावैतण्डिकः खण्डितः।।५।।

योगोकस्य।

(अरी सखी !) काम-क्रीड़ाजन्य (नख-) क्षतादि में कुशलता-प्राप्ति-हेतु अभ्यास करके और (काम तत्त्व की विशेषज्ञा) गुरुआनियों के पास बैठ करके काम-क्रीड़ा के शास्त्रीय रहस्यों (के परिज्ञान में) हम दोनों ही एक दूसरे को जीतना चाहते थे, लेकिन जल्दी ही मैंने उस (कामकला में) अनाड़ी को, जो झूठे ही, कामशास्त्रविषयक अपने ज्ञान के विषय में बढ़-बढ़ कर शेखियाँ बघार रहा था, परास्त कर दिया। (कामकला की प्रतियोगिता में मुझसे मुकाबला करता हुआ वह कभी) काँप-काँप उठता था, (कभी) विह्वल हो जाता था, (और अन्त में तो वह) पसीने-पसीने ही हो गया था। ५।

(- योगोक)

८. नवोढा

प्रथयति मयि व्याजेनाङ्गं ह्रिया च निगूहते
क्षिपति विशदस्निग्धं चक्षुः क्षणाच्च नियच्छति।
मम न सहते दृष्टा दृष्टिं पुनश्च समीहते
वहति हृदये कामं बाला न चोज्झतिवामताम्।।१।।

चन्द्रस्वामिनः।

८. नवोढा

(मेरी नव ब्याहुली) बालिका (वधू) मुझ पर बहाने से (अपने) अंग को रखती है और (फिर) लाज से छिपा (भी) लेती है। (पहले तो) मुझ पर स्नेह भरी दृष्टि डालती है और (फिर) क्षण भर में ही लौटा भी लेती है। जब मैं उस पर दृष्टिपात करता हूँ, तो वह सहन तो नहीं कर पाती, लेकिन चाहती यही है कि मैं उसे देखता रहूँ। मन में कामभावना रखती हुई भी यह (ऊपर से) विपरीतता को नहीं छोड़ पाती। १।

(- चन्द्रस्वामी)

पटालग्ने पत्यौ नमयति मुखं जातविनया
हठाश्लेषं वाञ्छत्यपहरति गात्राणि निभृतम्।
न शक्नोत्याख्यातुं स्मितमुखसखीदत्तनयना
ह्रिया ताम्यत्यन्तः प्रथमपरिहासे नववधूः ।।२।।

अमरोः।

प्रथम परिहास के समय पति जब नवोढा वधू के वस्त्र को खींचता है, तो वह विनम्रतापूर्वक मुख को झुका लेती है। पति जब हठपूर्वक उसका आलिङ्गन करना चाहता है, तो चुपके से अंगों को समेट लेती है। मुस्कराती हुई सखी पर दृष्टि केन्द्रित किए हुए वह (पति के साथ) संभाषण में भी भाग नहीं लेती। (अभिप्राय यह कि) नवपरिणीता वधू पति के साथ प्रथम परिहास में भीतर-ही-भीतर तमतमा रही है। २।

(- अमरु)

निर्यन्त्रणं विहर मा चिरय प्रसीद
किं वेपसे पवनवेल्लितवल्लरीव।
क्षीरोदचञ्चलदृगञ्चलपातमात्र-
क्रीते जने क इव विभ्रमसंनिरोधः ।।३।।

गोवर्द्धनस्य।

(किसी नवोढा वधू से उसके पति का कथन-) 'निःसंकोच व्यवहार करो। विलम्ब मत करो। प्रसन्न हो जाओ। वायु से हिलती हुई लता की तरह तुम काँप क्यों रही हो ? (तुम्हारी) क्षीरसागर की तरह चंचल आँखों का आँचल गिरने भर से जो व्यक्ति (तुम्हारे हाथों में) बिक चुका है, उसके सामने अपने हाव-भावों को प्रकट करने में नियन्त्रण क्यों कर रही हो ? (अभिप्राय यह कि मेरे सामने तुम उन्मुक्त व्यवहार करो।) ३।

(- गोवर्द्धन)

अवचनं वचनं प्रियसंनिधावनवलोकनमेव विलोकनम्।
अवयवावरणं च यदञ्चलव्यतिकरेण तदङ्गसमर्पणम् ।।४।।

कालिदासस्य।

प्रिय के समीप (नवोढा वधू का) न बोलना ही (वास्तव में) बोलना है ; न देखना ही (वस्तुतः) देखना है। और अंगों को ढकने के बहाने आँचल को इधर से उधर करना ही (प्रिय को अपने) अंग सौंप देना है। ४।

(- कालिदास)

क्षिपति दयिते दृष्टिं वक्रामपाङ्गतरङ्गिणीं
हसितमनभिव्यक्तं मध्ये दधाति कपोलयोः।
मृदु मदकलं किञ्चिद्वाक्यं कथञ्चन मुञ्चती
हरति हृदयं प्रौढेवेयं नवापि नितम्बिनी।।५।।

उमापतिधरस्य।

(कमनीय) नितम्बों वाली (यह नायिका), नवोढा होने पर भी, (किसी) प्रौढा नायिका के समान हृदय को आकर्षित करती है। (इस क्रम में वह अपनी) लहराते हुए अपांग वाली वक्र दृष्टि को प्रिय पर डालती है, हँसती तो है, लेकिन उसे प्रकट नहीं होने देती-कपोलों पर ही बीच में (हँसी को) धारण कर लेती है। किसी प्रकार (वह) मधुर और कोमल रीति से एकाध आकर्षक वाक्य बोलती है। ५।

(- उमापतिधर)

९. विस्रब्धनवोढा

दृष्ट्वा दृष्टिमधो ददाति कुरुते नालापमाभाषिता
शय्यायां परिवृत्त्य तिष्ठति बलादालिङ्गिता वेपते।
निर्यान्तीषु सखीषु वासभवनान्निर्गन्तुमेवेहते
जाता वामतयैव मेऽद्य सुतरां प्रीत्यै नवोढा प्रिया।।१।।

श्रीहर्षस्य।

९. विश्वस्त नवोढा

(मेरी) नवोढा प्रिया, मेरे देखने पर, अपनी नजरें नीची कर लेती है। मेरे बोलने पर भी, साथ-साथ संभाषण नहीं करती। शय्या पर, दूसरी ओर मुख करके लेट जाती है। मेरे द्वारा बलपूर्वक आलिङ्गन करने पर (भी) थर-थर काँपने लगती है। शयनकक्ष से, सखियों के निकलने पर स्वयं भी निकल जाना चाहती है। - इस प्रकार, विपरीत व्यवहार करने के कारण ही (यह नवोढा प्रिया) सम्प्रति मेरे प्रेम को और भी बढ़ा देती है। १।

(- श्रीहर्ष)

अपि भुजलतोत्क्षेपादस्याः कृतं परिरम्भणं
प्रियसहचरीक्रीडालापे श्रुता अपि सूक्तयः।

नवपरिणयव्रीडावत्या मुखोन्नतियत्नतोऽ-
प्यलसवलिता तिर्यग्दृष्टिः करोति महोत्सवम्।।२।।

कालिदासनन्दिनः।

नये-नये ब्याह के कारण लजाती हुई (अपनी) इस (नवोढा वधू) का मैंने, बाहुलता को उठाकर, आलिङ्गन कर लिया है, (अपनी) प्रिय सहेलियों के साथ खेलते समय किये गये वार्तालाप में (इसके) सुन्दर वचनों को भी मैंने सुन लिया है। इसके मुख को (जब भी मैं) ऊपर उठाने का प्रयत्न करता हूँ (उस समय इसकी) अलसाई और (दूसरी ओर) घूमी हुई तिरछी चितवन (मेरे लिए) महोत्सव (भरपूर आनन्द-) की सृष्टि कर रही है। २।

(- कालिदासनन्दी)

हरति रुचिरं गाढाश्लेषे यदङ्गकमङ्गना
स्थगयति तथा यत्पाणिभ्यां मुखं परिचुम्बने।
यदपि बहुशः पृष्टा किंचिद्ब्रवीत्यपरिस्फुटं
रमयतितरां तेनैवासौ मनोऽभिनवा वधूः।।३।।

कस्यचित्।

अंग-अंग में लावण्य युक्त यह नवोढा वधू, (मेरे द्वारा प्रगाढ़) आलिङ्गन करने पर अपने अंगों को बड़ी कमनीयता से हटा लेती है। (मेरे द्वारा) भरपूर चुम्बन लेने पर, हाथों से अपने मुख को आच्छन्न कर लेती है। यद्यपि मैं बार-बार (इससे) पूछता रहता हूँ (तब भी यह) थोड़ा ही बोलती है-वह भी अस्पष्ट-सा। (अपनी) इन्हीं (चेष्टाओं) के कारण यह मेरे मन को और भी अधिक आनन्द प्रदान कर रही है। ३।

(- अज्ञात कवि)

प्रगल्भस्त्रीशिक्षानियमितभयव्रीडमुदित-
स्मरोत्कम्पस्वेदं वहति घनमालिङ्गति मुहुः।
मुहुः स्वादु स्वैरं वदति निभृतं पश्यति मुहु-
श्चिरादेवं धन्यानचिरपरिणीता रमयति।।४।।

प्रियाकस्य।

प्रौढावस्था की अनुभवी स्त्रियों की सीख से (अपने) भय और लज्जा को नियन्त्रित करती हुई नवोढा वधू आनन्दित होकर, कामजन्य थरथराहट के कारण (पहले तो) स्वेदयुक्त हो उठती है, फिर (पति का) सुदृढ़ आलिङ्गन कर लेती है। बार-बार उन्मुक्त रूप से (प्रिय

को अच्छे लगने वाले वचन) बोलती रहती है। बार-बार विश्वासपूर्वक देखती रहती है। इस प्रकार (नवोढा वधू) सौभाग्यशालियों को चिरकाल तक (अपनी इन चेष्टाओं से) आनन्दित करती रहती है। ४।

(- प्रियाक)

दन्ताग्रग्रहणं करोति शनकैर्नैवाधरे खण्डनं
कण्ठे श्लिष्यति निर्भरग्रहविधिं कर्तुं पुनः शङ्कते।
तिष्ठत्येव रतान्तरेष्वभिमुखं नैवाभियुङ्क्ते स्वयं
निष्प्रागल्भ्यतयैव वल्लभतरो यूनां नवोढाजनः।।५।।

भ्रमरदेवस्य।

नवोढा वधू (चुम्बन के समय पति के अधर को) दाँत के अगले भाग से, धीरे-से स्पर्श करती है, उसे (जोर से) काटती नहीं है। (वह पति के) गले से तो लिपट जाती है, किन्तु भरपूर आलिङ्गन करने के लिए सोचती ही रहती है कि 'करूँ कि न करूँ।' (पति के द्वारा की गई) संभोग की विविध क्रीड़ाओं में ठहरी तो रहती है (लेकिन) स्वयं (आगे बढ़कर) सहयोग नहीं करती। (इस प्रकार) नवोढ़ा वधुएँ अपनी अप्रगल्भता के कारण युवकों को अधिक प्रिय लगती हैं। ५।

(- भ्रमरदेव)

१०. गर्भिणी

आविर्भूतविपाण्डुरच्छवि मुखं क्षामा कपोलस्थली
स्वःव्यापारपरिश्लथे च नयनेऽनुत्साहमुग्धं वपुः।
श्यामीभूतमुखं पयोधरयुगं मध्यः स्वभावोच्छ्रितो
जातान्यैव मनोहराकृतिरहो गर्भोदये सुभ्रुवः।।१।।

कालिदासनन्दिनः।

१०. गर्भिणी

सुन्दर भौंहों वाली गर्भवती स्त्री का मुख विशेष प्रकार के पीलेपन से युक्त छवि वाला हो जाता है। कपोल भाग कृश हो जाता है। आँखें अपना कार्य करने में शिथिल हो जाती हैं। शरीर में (यद्यपि) उत्साह नहीं रहता (तब भी) वह सम्मोहक लगता है। मुख और स्तनों पर साँवलापन आ जाता है। (उदरादि) मध्यभाग विशेष रूप से उभारयुक्त हो जाता है। (इन

सबके होने पर भी गर्भवती स्त्री की) आकृति मनोहर ही लगती है। १।

(– कालिदासनन्दी)

हारिद्रमम्बरमुपान्तनिबद्धचक्र-
मेकं कुलस्थितिवशाद्दधती प्रियासौ।
तत्कालमङ्गलसमाचरणप्रयत्न-
व्यासिद्धकेलिरपि मङ्गलमातनोति।।२।।

तस्यैव।

(गर्भवती) प्रिया पत्नी (अपनी) कुलस्थिति के अनुरूप ऊपर से नीचे तक, एक ही हल्दी से रंगा वस्त्र पहनती है। रति-क्रीड़ा की दृष्टि से अनुपादेय होने पर भी वह उस समय मंगलाचरण में लगी हुई (अपने पति और उसके परिवार का) कल्याण ही करती है। २।

(– वही)

मृदासक्ता हृद्यं स्थगयति मुखं चुम्बति मयि
स्तनौ पाण्डुश्यामौ मम करतलादाक्षिपति च।
कृते गर्भालापे विशदहसितं रक्षति रुषा
प्रिया सर्वाकारं विशति हृदयं वल्लभतया।।३।।

कर्णाटदेवस्य।

मिट्टी (खाने) में विशेष आसक्ति वाली (गर्भवती स्त्री) पौष्टिक वस्तुओं को (खाने से) मना कर देती है। मैं (जब) उसके मुख को चूमता हूँ, तो (अपने) पीले और साँवले स्तनों पर से वह मेरी हथेली को हटा देती है। गर्भ (-स्थ शिशु) के विषय में चर्चा करने पर रोष से उन्मुक्त हँसी को बचा जाती है। (इस प्रकार गर्भवती स्त्री अपने) प्रेम से प्रिय के हृदय में सब प्रकार से प्रवेश कर जाती है। ३।

(-कर्णाटदेव)

अलसमधुरा स्निग्धा दृष्टिर्घनत्वमुपागता
किसलयरुचिर्निस्ताम्बूलस्वभावधरोधरः।
त्रिवलिवलया लेखोन्नेया घटन्त इवैकतः
प्रकृतिसुभगा गर्भेणासौ किमप्युपपादिता।।४।।

तस्यैव।

गर्भावस्था ने इस स्त्री को प्राकृतिक रूप से कुछ और भी सुन्दर बना दिया है। इसकी दृष्टि आलस्य से मधुर, स्नेह भरी और प्रगाढ़ता से युक्त हो गई है। ताम्बूल (की लालिमा) से रहित अधरों की पल्लव-कान्ति अपने प्राकृतिक रूप में आ गई है और (मध्यभाग में) त्रिवलिगत वलयों की रेखाएँ उभर आई हैं। ४।

(- वही)

परिणतशरकाण्डापाण्डुरा गण्डभित्तिः
कुचकलसमुखश्रीः कालिमानं दधाति।
व्यपनतकृशभावं पीनतामेति मध्यं
वपुरतिशयगौरं गर्भमाविष्करोति।।५।।

पशुपतिधरस्य।

(इस गर्भवती स्त्री के) कपोलस्थल पके हुए सरकण्डों (के सदृश) थोड़े-थोड़े पीले हो गये हैं। स्तनकलशों के मुख अर्थात् चूचुक काले पड़ गये हैं। मध्यभाग कृशता को छोड़कर स्थूल हो गया है। (इसका) अत्यधिक गौरवर्ण (इसकी) गर्भावस्था को प्रकट कर रहा है। ५।

(- पशुपतिधर)

११. कुलस्त्री

कुर्वीथाः श्वशुरस्य भक्तिमधिकां श्वश्र्वाश्च पादानतिं
स्नेहं भृत्यजने प्रतीच्छ रभसाद्वारागतान्बान्धवान्।
भर्तारं सुखदुःखयोरविकृतप्रेमानुबन्धोदया
गेहे वा विपिनेऽपि वा सहचरीवृत्तेन नित्यं भज।।१।।

कालिदासस्य।

११. कुल-स्त्री

(माता या पिता के द्वारा विवाह के अनन्तर पुत्री को प्रदत्त शिक्षा) ससुर जी के प्रति अधिक भक्ति-भावना रखना। सासुजी को प्रणाम करना। नौकर चाकरों से स्नेहपूर्ण व्यवहार करना। अचानक बाहर से आये सम्बन्धियों का ध्यान रखना। सुख-दुःख में पति के प्रति समान भाव से प्रेमपूर्ण व्यवहार करना। चाहे घर में रहना पड़े या वन में - पति की सेवा सदैव सहचरी बनकर करना। १।

(- कालिदास)

न नयति बहुमानस्यास्पदं स्निग्धबन्धू-
न्न च गुणिनि समृद्धेऽप्यादरं याति ताते।
न भजति धृतिमन्तर्नन्दनेऽप्यन्तरात्मा
भवति हि पतिनिष्ठं प्रेम साध्वीजनस्य।।२।।

उमापतिधरस्य।

पतिव्रता स्त्रियों का प्रेम (केवल अपने) पति के प्रति होता है। स्नेही सम्बन्धियों के प्रति वे बहुत आदर नहीं प्रदर्शित करतीं। पिता चाहे जितना गुणवान् या समृद्ध हो, उसके प्रति भी वे सामान्य सम्मान ही रखती हैं। (साध्वी स्त्रियों की) अन्तरात्मा को नन्दन-वन में भी (वह) धैर्य नहीं प्राप्त होता (जो उन्हें अपने) पति के सान्निध्य में प्राप्त होता है। २।

(- उमापतिधर)

अभ्युत्थानमुपागते गृहपतौ तद्भाषणे नम्रता
तत्पादार्पितदृष्टिरासनविधिस्तस्योपचर्या स्वयम्।
सुप्ते तत्र शयीत तत्प्रथमतो जह्याच्च शय्यामिति
प्राच्यैः पुत्रि निवेदिताः कुलवधूसिद्धान्तधर्मा अमी।।३।।

राजशेखरस्य।

'बेटी ! प्राचीन (मनीषियों) ने कुलवधुओं (के द्वारा पालनीय) ये सिद्धान्त बतलाए हैं- गृहस्वामी के आने पर (पत्नी को उसका स्वागत उठकर (करना चाहिए)। जब वह बोल रहा हो, तो नम्रता होनी चाहिए। दृष्टि (पति) के चरणों में रहनी चाहिए। उन्हें (बैठने के लिए) आसन देना चाहिए। स्वयं उनकी सेवा करनी चाहिए। (रात्रि में) पति के सो जाने पर ही पत्नी को सोना चाहिए। सवेरे, पति से पूर्व ही पत्नी को शय्या छोड़कर उठ जाना चाहिए। ३।

(- राजशेखर)

शिरो यदवगुण्ठितं सहजरूढलज्जानतं
गतं च परिमन्थरं चरणकोटिलग्ने दृशौ।
वचः परिमितं च यन्मधुरमन्दमन्दाक्षरं
निजं तदियमङ्गना वदति नूनमुच्चैः कुलम्।।४।।

लक्ष्मीधरस्य।

(कुल -) स्त्री अपने लाज से झुके शिर को घूँघट से ढक कर, नीचे पैरों को देखती हुई जो धीरे-धीरे चलती है, और मन्द-मन्द गति से सीमित तथा मधुर वचन बोलती है, उससे वह अपनी उच्च कुल की सम्बद्धता को ही प्रकट करती है। ४।

(- लक्ष्मीधर)

शुश्रूषस्व गुरुन् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।।५।।

कालिदासस्य।

(महाकवि कालिदास-कृत 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के चतुर्थ अङ्क में, पति-गृह को गमन करती हुई शकुन्तला को महर्षि कण्व की शिक्षा -)

(बेटी ! अपने पति-गृह में तुम) गुरुजनों की सेवा करना। अपनी सौतों को सहेलियाँ समझकर व्यवहार करना। पति के रोष से रूठने पर भी तुम मत रूठना। नौकर-चाकरों के प्रति (उदारता) और अनुकूलता का व्यवहार करना। अपने सौभाग्य पर (कभी) अहंकार न करना। कुल-वधुएँ (इसी प्रकार का) व्यवहार करती हुई गृहिणी के (प्रतिष्ठित) पद पर पहुँचती हैं। इसके विपरीत चलने वाली स्त्रियाँ तो पति-कुल के लिए मानसिक संकट (या समस्या) का कारण ही सिद्ध होती हैं। ५।

(-कालिदास)

१२. असती

सिकतिलतलाः सान्द्रच्छायातटान्तविलम्बिनः
शिशिरमरुतां नीतावासाः क्वणज्जलरङ्कवः।
अविनयवतीनिर्विच्छेदस्मरव्ययदायिनः
कथय मुरले केनामी ते कृता निचुलद्रुमाः।।१।।

विद्यायाः।

१२. असती (स्त्री)

(केरल में बहने वाली) ओ मुरला नदी ! तुम्हारे इन रेतीले तल वाले सघन छाया-तटों के अन्त में फैले हुए, शीतल समीर से युक्त, चहचहाते हुए जलपाँखियों से पूर्ण तथा कुलटा स्त्रियों की अखण्ड काम-क्रीड़ा के केन्द्र, नरकुल वृक्षों से भरे (इन वनों का) किसने निर्माण किया है ? १।

(- विद्या)

विशेष - 'रंकु' का सामान्य अर्थ हरिण होता है, लेकिन 'जलरंकु' का अर्थ 'जलपक्षी' ही उचित प्रतीत हुआ। १।

पत्युः केलिभिरस्थिषु च्छिदुरता मर्मक्षतिर्नर्मणा
श्रृङ्गारेण गुरुव्यथा समुदयत्युच्चाटनं चाटुभिः।
ध्यायन्त्याः सततोत्सुकेन मनसा नीरन्ध्रवानीरिणी-
राकौमारमुपास्यमानमुरलासीमाभुवः सुभ्रुवः।।२।।

उमापतिधरस्य।

सुन्दर भौंहों वाली (कुलटा स्त्री), जिसने कौमारावस्था से ही मुरला नदी के तट पर स्थित बेंत के विश्वस्त कुंजों में बैठ-बैठकर (केलिसुख प्राप्त किया है), उसे, पति के साथ की गई रति-क्रीड़ा में हड्डियों के चिटखने, आमोद-प्रमोद से कोमल स्थानों में चोट पहुँचने, श्रृङ्गार से भारी पीड़ा और पति की प्रसन्न करने वाली चेष्टाओं से उच्चाटन होता है। (तात्पर्य यह कि कुलटा स्त्री को पति के साथ किसी भी प्रकार की रतिक्रीड़ा अप्रिय ही प्रतीत होती है। उसका मन तो सदैव अपने यार से मिलने के लिए बेचैन रहता है।) २।

(- उमापतिधर)

यः कौमारहरः स एव हि वरस्ताश्चन्द्रगर्भा निशाः
प्रोन्मीलन्नवमालतीसुरभयस्ते ते च विन्ध्यानिलाः।
सा चैवास्मि तथापि चौर्यसुरतव्यापारलीलाभृतां
रेवारोधसि वेतसीवनभुवां चेतः समुत्कण्ठते।।३।।

कस्यचित्।

जिसने (मेरी) कौमारावस्था (के सूचक सतीच्छद) का हरण किया था, वही वर है। वे ही चाँदनी रातें हैं। विन्ध्य (की उपत्यका) में प्रवाहित वायु के झोंके भी वे ही हैं, जिनमें प्रफुल्लित मालती पुष्पों की सुगन्धि रची-बसी है। मैं भी वही हूँ, फिर भी नर्मदा नदी के तट पर मेरी चोरी-चोरी की गई रति-क्रीड़ाओं (की स्मृतियों) को सँजोने वाले बेंत के वनों (में पुनः जाने के लिए और रतिक्रीड़ा करने के लिए) मन (अनायास) उत्कण्ठित हो रहा है। ३।

(- अज्ञात कवि)

दावालीढकलेवरे विटपिनि प्राप्तोद्गमानङ्कुरा-
नग्रे पल्लवितैर्मनोभिरचिराच्चेतोभुवा नर्तिताः।
सानन्दाश्रु विलोकयन्ति कलितस्वेदं स्पृशन्त्यादरा-
दुत्कम्पाङ्गुलि दर्शयन्ति मदनक्रीडामहस्मारिणः।।४।।

कामदेव के द्वारा (पहले मानसिक विकास के समय) नचाये गये स्त्री-पुरुष, दावाग्नि के द्वारा भस्मीभूत वृक्ष में निकले नये अंकुरों को, जो (पहले की गई) काम-क्रीड़ोत्सवों के स्मारक हैं, (आँखों में) आनन्दाश्रु भरकर देखते हैं, आदर से उनका स्पर्श करते हैं। स्पर्श के समय उन्हें (इतना रोमांच होता है कि वे) पसीने-पसीने हो उठते हैं और काँपती हुई उँगलियों से (दूसरों को भी) दिखाते हैं। ४।

तस्याः संप्रति वासरक्रमनमत्तोये तमालातटे
साकूतं निपतन्ति वेतसलताकुञ्जोदरे दृष्टयः।
सोत्कम्पस्खलितांशुकस्तनतटं सोल्लासकाञ्चीगुण-
ग्रन्थिन्यस्तचलाङ्गुलीकिसलयं स्वेदार्द्रहस्ताम्बुजम्।।५।।

चण्डालचन्द्रस्य।

काल-क्रम से क्षीण जल वाली तमाला नदी के तट पर (विद्यमान) वेत्र-लता के कुंज के भीतर उस (कुलटा स्त्री) की दृष्टि इस समय साभिप्राय पड़ रही है। (कुंज में दृष्टि-निक्षेप के कारण) हो रहे कम्पन से उसकी चादर वक्षस्थल पर से हटती जा रही है, हाथ में लिया गया वह कमल पसीने में पसीज गया हे जो प्रसन्नता से करधनी की लड़ की गाँठ पर रखी और हिलती हुई अँगुलियाँ रूपी किसलयों से युक्त हैं। ५।

(-चण्डालचन्द्र)

१३. कुलटोपदेशः

वयं बाल्ये बालांस्तरुणिमनि यूनः परिणता-
वपीच्छामो वृद्धांस्तदिह कुलरक्षा समुचिता।
त्वयारब्धं जन्म क्षपयितुमनेनैकपतिना
न नो गोत्रे पुत्रि क्वचिदपि सतीलाञ्छनमभूत्।।१।।

विद्यायाः।

१३. कुलटा का उपदेश

'अरी बेटी ! हमें बचपन में बालकों की, युवावस्था में युवकों की, और प्रौढ़ावस्था में वृद्धों की भी चाह रहती है – तो यहाँ कुल की रक्षा (ही) उचित है। (हमारी कुल-परम्परा के विपरीत) तुमने इस एक ही पति के साथ जीवन बिताना प्रारम्भ कर दिया है (जो ठीक नहीं है)। नहीं, नहीं बेटी ! हमारे गोत्र पर कहीं भी सती होने का 'कलंक' नहीं लगा।' १।

(– विद्या)

उन्मीलद्यौवनासि प्रियसखि विषमाः श्रेणयो नागराणां
तस्मात्कोऽपि त्वयाद्य प्रभृति न सहसा संमुखं वीक्षणीयः।
यावच्चन्द्रार्कमेकः पतिरतिशयितश्रद्धया सेवितव्यः
कर्तव्या रूपरक्षा वचसि च हृदयं देयमस्मद्विधानाम्।।२।।

शरणस्य।

'अरी प्रिय सखी ! तुम तो खिलते हुए यौवन वाली हो ! और नगर निवासी सभी रसिक एक ही प्रकार के नहीं होते। इसलिए तुम्हें किसी के भी सामने आज के बाद अचानक नहीं देखना चाहिए। जब तक सूर्य और चन्द्रमा हैं, तब तक तुम्हें अत्यधिक श्रद्धापूर्वक केवल एक ही पति का सेवन करना चाहिए। अपने रूप (-रंग) की रक्षा करनी चाहिए और हम लोगों के वचनों को अपने हृदय में रखना चाहिए। २।

(– शरण)

आराध्यः पतिरेव तस्य च पदद्वन्द्वानुवृत्तिर्व्रतं
केनैताः सखि शिक्षितासि विपथप्रस्थानदुर्वासनाः।
किं रूपेण न यत्र मज्जति मनो यूनां किमाचार्यकै-
र्गूढानङ्गरहस्ययुक्तिषु फलं येषां न दीर्घं यशः।।३।।

तस्यैव।

'(केवल) पति की ही आराधना करनी चाहिए और उसी के चरण-युगल के पीछे-पीछे चलने का व्रत निभाना चाहिए'-इस प्रकार की, विपथ पर चलने की दूषित वासनाओं की शिक्षा तुम्हें किसने दी है सखि! (अरे !) वह रूप ही क्या हुआ ! जिसमें युवकों के मन डूब न जायें। और उन आचार्यों को क्या (कहें !) जिन्हें सुदीर्घ यश प्राप्त नहीं हुआ, लेकिन उनकी कामदेव के गुप्त रहस्यों की युक्तियों का क्या यही फल है ?' ३।

(– वही)

अस्माकं व्रतमेतदेव यदयं कुञ्जोदरे जागरः
शुश्रूषा मदनस्य वक्त्रमधुभिः संतर्पणीयोऽतिथिः।
निस्त्रिंशाः शतशः पतन्तु शिरसश्छेदोथवा जायता-
मात्मीयं कुलवर्त्म पुत्रि न मनागुल्लङ्घनीयं त्वया।।४।।

वैद्यगदाधरस्य।

'बेटी ! हमारा तो (केवल) एक ही व्रत है और वह है कुञ्ज के भीतर जागना, कामदेव की सेवा करना (तथा) मुख के आसव (शराब) से अतिथि को तृप्त करना। हम पर चाहे जितने शूल गिरें, चाहे हमारा शिर ही क्यों न कट जाये- हमारे कुल-क्रमागत मार्ग का तुम्हें तनिक भी उल्लङ्घन नहीं करना चाहिए।' ४।

(- वैद्यगदाधर)

कुलोत्कर्षात्स्नेहात्कमितुरथवा पातकभया-
त्सखि श्रद्धा ते स्याद्यदि विनयमालम्बितुमपि।
किमेभिर्दातव्यं परिकलय शिप्रातटरुहां
करञ्जानां कुञ्जैरविनयवतीनर्मनिपुणैः।।५।।

डिम्बोकस्य।

'अरी सखी ! कुल के उत्कर्ष से, स्नेह से, अथवा लम्पट व्यक्ति के पाप-भय से यदि तुम्हारी श्रद्धा कुलस्त्रियों के आचार का पालन करने में हे, तो शिप्रा-तट पर उगे करञ्जवृक्षों के इन कुंजों के द्वारा, जो कुलटा स्त्रियों को काम-क्रीड़ा हेतु तैयार करने में निपुण हैं, (हमें) क्या प्रदेय है - जरा इसका भी तो सर्वाङ्गीण विचार करो।' ५।

(- डिम्बोक)

१४. गुप्तासती

दृष्टिं हे प्रतिवेशिनि क्षणमिहाप्यस्मद्गृहे दास्यसि
प्रायेणास्य शिशोः पिता न विरसाः कौपीरपः पास्यति।
एकाकिन्यपि यामि सत्वरमितः स्रोतस्तमालाकुलं
नीरन्ध्रास्तनमालिखन्तु जरठच्छेदा नलग्रन्थयः।।१।।

विद्यायाः।

१४. प्रच्छन्न कुलटा (स्त्री)

'अरी पड़ोसिन ! जरा हमारे घर पर भी नजर डाले रहना! (मेरे) इस बच्चे के पिताजी प्रायः कुँयें का खारा पानी नहीं पीते, इसलिए मैं अकेली ही यहाँ से जल्दी (ही) तमालवृक्षों से घिरे झरने पर जा रही हूँ, भले ही सूखे और ठोस नरकुल की गाँठें मेरे स्तनों में क्यों न चुभ जायें !' १।

(- विद्या)

विशेष-यह कथन किसी ऐसी विवाहिता कुलटा स्त्री का है, जो झरने पर पानी लेने के बहाने नरकुल के कुंज में अपने उपपति से रतिक्रीड़ा करने के लिए जा रही है। उपपति के द्वारा स्तनों पर किये जाने वाले चिह्नों के विषय में भी उसने नरकुल की गाँठों के चुभने का बहाना पहले से ही सोचकर पड़ोसिन को बता दिया है, ताकि पति के द्वारा स्तन-चिह्नों के विषय में छानबीन करने पर, पड़ोसिन स्त्री उस कुलटा स्त्री की बात की पुष्टि करती हुई रक्षा कर सके।

उपान्तप्रोन्मीलद्विटपिजटिलां कौतुकवती
कदाचिद्गन्तासि प्रियसखि न शिप्रातटभुवम्।
यदस्यां मुक्तास्रग्विहितसितभोगिभ्रमतया
वयोरूढः केकी लिखति नखरेण स्तनतटम्।।२।।

मधोः।

'अरी सखि ! (कभी) कुतूहलवश (तुम) शिप्रानदी के किनारे की भूमि पर मत जाना। वहाँ उगे पेड़ों की जटाएँ (बड़ी घनी-घनी फैली) हैं। वहाँ (-स्त्रियों की) मोतियों की मालाओं को श्वेतवर्णीय सर्प समझ कर पुराने मोर (स्त्रियों के) स्तनों पर नाखून के चिह्न अंकित कर देते हैं।' २।

विशेष - इस पद्य में दो व्यंग्यार्थ निकलते हैं -

(१) कोई कुलटा स्त्री किसी दूसरी नई युवती को भी अपने मार्ग पर ले जाना चाहती है। युवती के संकोच को वह बड़े वृक्षों की बाड़ का उल्लेख कर दूरी कर रही है कि वहाँ डरने की कोई बात नहीं है। पेड़ों के कारण पूरी तरह गोपनीयता है। 'वयोरूढ मोर' से कामकला में अनुभवी और आकर्षक रंग-रूप के पुरुषों के मिलने की संभावना प्रकट की गई है।

(२) दूसरा अर्थ निषेधपरक है। कोई स्वैरिणी अपनी स्वच्छन्द कामक्रीड़ा में बाधा पड़ने की आशंका से शिप्रा तटवर्तिनी भूमि की भयंकरता का उल्लेखकर दूसरी स्त्रियों को वहाँ पहुँचने से विरत कर रही है। २।

(- मधु)

षष्ठ्यां गन्तुमरण्यमस्मि चकिता यत्रार्चयन्ती द्रुमा-
न्दृष्ट्वैवापतिता भुजङ्गमभितो व्यस्तापयान्ती ततः।
विश्लिष्यद्वसना विकीर्णकवरी जातक्षता कण्टकैः
कास्मीति स्वमहं न वेद सखि तद्वन्दे व्रतं तादृशम्।।३।।

गोविन्दस्वामिनः।

'षष्ठी तिथि को मुझे वन जाना है, जहाँ वृक्ष-पूजा करती हुई मैं अपने चारों ओर साँपों को देखकर, विस्मित होती हुई गिर पड़ी थी - फिर वहाँ से जब मैं भाग रही थी, उस समय मेरे कपड़े छिन्न-भिन्न हो गये, बाल बिखर गये और काँटे चुभ गये। मुझे यह भी होश नहीं रहा कि मैं हूँ कौन ? इसी कारण मैं इस व्रत की वन्दना करती हूँ।' ३।

(- गोविन्दस्वामी)

विशेष - यह कथन भी किसी स्वैरिणी का है, जो वृक्ष-पूजा के बहाने जंगल में जाकर उपपति के साथ उन्मुक्त रूप से रतिक्रीड़ा करती है। 'भुजंग' शब्द उसके साथी कामुकों (लम्पटों) का द्योतक है। ३।

अन्यासां न किमस्ति वेश्मनि वधूः कैवं निशि प्रावृषि
प्रैति प्रान्ततडागमम्ब गृहिणि स्वस्थासि मेऽवस्थया
भग्नोयं वलयो घटो विघटितः क्षुण्णा तनुः कण्टकै-
राक्रान्तः स तथा भुजङ्गहतकः कष्टं न यद्दष्टवान्।।४।।

पादूकस्य।

(बहू-) 'सासु माँ ! दूसरी स्त्रियों के घर में क्या नहीं है ? और, कौन-सी बहू इस प्रकार वर्षा की रात में (गाँव के) छोर पर स्थित तालाब पर जाती है ?' (सास-) ' अरे बहू ! (तुम) स्वस्थ तो हो न ? (बहू-) '(यह तो आपको) मेरी हालत से ही पता चल जायेगा। (देखिए, तो) कंगन टूट गया है, घड़ा फूट गया है, शरीर में काँटे चुभ गये हैं। उस हत्यारे साँप ने ऐसा हमला किया कि... अफसोस यही है कि उसने डसा नहीं। (डस लेता तो अच्छा था, फिर आपकी ये जली-कटी बातें तो न सुननी पड़तीं।) ४।

विशेष-कोई स्वैरिणी स्त्री पानी लाने के बहाने गाँव के छोर पर स्थित तालाब के किनारे जाकर वहाँ उपपति से रति-क्रीड़ा करके लौटी है और उसे छिपाने के लिए साँप के हमले और उसके कारण घड़ा फूटने, कंगन टूटने इत्यादि के बहाने बना रही है। ४।

अम्ब श्वश्रु यदि त्वया हतशुकः संवर्द्धिनीयस्तदा
लौहं पञ्जरमस्य दुर्णयवतो गाढान्तरं कारय।

अद्यैनं बदरीनिकुञ्जकुहरे संलीनमन्विष्यती
दष्टा यत्र भुजङ्गमेन तदतिश्रेयः किमेभिः क्षतैः।।५।।

कस्यचित्।

'सासु माँ ! यदि आपको इस दुष्ट शुक को पालना ही है, तो इसके लिए लोहे का मजबूत पिंजड़ा बनवाइए। वेर के घने कुंजों में आज जब यह छिप गया, तो इसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते, बस, यही गनीमत रही कि साँप ने नहीं डस लिया-बाकी ये चोटें तो (बहुत मामूली हैं, जल्दी ही ठीक हो जायेंगी)।' ५।

(- अज्ञात कवि)

विशेष - यह कथन भी किसी स्वैरिणी का है, जो उपपति के साथ की गई रतिक्रीड़ा में लगे नखादिजन्य क्षतों को, वेर के काँटों के चुभने से लगी चोटें बतला रही है। ५।

१५. विदग्धासती

ग्रामान्ते वसतिर्ममातिविजने दूरप्रवासी पति-
र्गेहे देहवती जरेव जरती श्वश्रूर्द्वितीया परम्।
एतत्पान्थ वृथा विडम्बयति मां बाल्यातिरिक्तं वयः
सूक्ष्मं वीक्षितुमक्षमेह जनता वासोऽन्यतश्चिन्त्यताम्।।१।।

बलभद्रस्य।

१५. समझदार कुलटा

'अरे पथिक ! गाँव के बिल्कुल छोर पर मेरा घर है। वहाँ एक भी व्यक्ति के न रहने से पूरी तरह सन्नाटा रहता है। मेरा पति बहुत दूर परदेश में है। घर में मेरे अतिरिक्त बस मेरी बेहद वृद्धा सास है, जो साक्षात् शरीरधारिणी वृद्धावस्था ही है। फिर मेरा बचपना तो अब है नहीं-जवानी की अवस्था है, जो मुझे व्यर्थ में ही सताती रहती है। इस गाँव की जनता भी सूक्ष्मावलोकन करने में समर्थ नहीं है, इसलिए तुम दूसरी जगह डेरा डालो।' १।

(- बलभद्र)

विशेष - यह कथन ऊपर से तो निषेधपरक है, किन्तु उसमें व्यंजित अभिप्राय विधिपरक है। तात्पर्य यह कि यह कुलटा स्त्री बड़ी समझदारी से पथिक को अपने घर में रहने के लिए आमंत्रित कर रही है, क्योंकि उसका घर गाँव के किनारे पूरी तरह निर्जन स्थान पर है। घर में मात्र अतिवृद्धा सास है, जिससे किसी आपत्ति या भय की कोई संभावना नहीं है। पति परदेश में इतनी दूर है कि प्रयत्न करने पर भी वह जल्दी अपने

घर नहीं लौट सकता। गाँव की जनता भी छिद्रान्वेषी प्रवृत्ति की नहीं है, जो दूसरे के जीवन में व्यर्थ ही ताक-झाँक करती फिरे। और सबसे बड़ा चारा डाल रही है वह अपने भरपूर यौवन का उल्लेख करके, जो पुरुष-सम्पर्क के लिए लालायित है। अतः निष्कर्ष यही है कि वह पथिक इस कुलटा युवती के घर के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं रहने का विचार तक न करे और निःसंकोच उसी के घर में आकर रहे। १।

एकाकिनी परवशा तरुणी तथाह-
मस्मिन्गृहे गृहपतिश्च गतो विदूरम्।
किं याचसे तदिह वासमियं वराकी
श्वश्रूर्ममान्धवधिरा ननु मूढ पान्थ।।२।।

रुद्रटस्य।

'अरे मूर्ख पथिक ! इस घर में मैं ही अकेली पराधीन तरुणी हूँ। गृहस्वामी दूर (-देशान्तर-) गये हैं। मेरी सास तो बेचारी अन्धी और बहरी दोनों ही है, इसलिए तुम उससे निवास के विषय में याचना क्यों कर रहे हो ? (अरे ! समझदार हो, तो बिना पूछे ही, आकर क्यों नहीं रहने लगते ? इसमें पूछने की बात ही क्या है ? मैं तो तुम्हारा स्वागत करने के लिए उत्सुक हूँ ही !' २।

(-रुद्रट)

विशेष - यह कथन भी आपाततः निषेधपरक ही प्रतीत होता है, किन्तु वास्तव में विधिपरक है। २।

अम्बा शेतेऽत्र वृद्धा परिणतवयसामग्रणीरत्र तातो
निःशेषागारकर्मश्रमशिथिलतनुर्गर्भदासी तथात्र।
अस्मिन्तापाहमेका कतिपयदिवसप्रोषितप्राणनाथा
पान्थायेत्थं युवत्या कथितमभिमतं व्याहृतिव्याजपूर्वम्।।३।।

भट्टस्य।

'अरे पथिक ! (देखो), यहाँ मेरी बूढ़ी माँ (अथवा सास) सोती है, और यहाँ पर, वृद्ध व्यक्तियों में अग्रगण्य मेरे पिता (अथवा ससुर जी)। घर के सारे कामकाज करने के परिश्रम से थकी-माँदी, शिथिल शरीर वाली गर्भदासी यहाँ पर सोती है। और घर के इस पूर्णतया किनारे पर मैं अकेली सोती हूँ। मेरे प्राणनाथ कुछ दिन पहले परदेश चले गये थे- युवती ने जब इस प्रकार पथिक से कहा, तो उसे 'ओम्' कहकर उस पर बहाने से सहमति दे दी (अर्थात् उसने उस युवती के घर में रहना स्वीकार कर लिया)। ३।

(-भट्ट)

पुरः पल्ली शून्या तदनु च विदूरेऽस्ति नगरं
परं पारेगङ्गं चरमगिरिगामी च मिहिरः।
इतो यान्तं प्रान्ते मम रमणमालोकयसि चे-
त्ततस्ते कल्याणं पथिक स हि तत्र प्रहरिकः।।४।।

नीलोकस्य।

'अरे पथिक ! आगे का गाँव जनशून्य अर्थात् बिल्कुल खाली है। शहर दूर है। सूर्य, गंगा के उस पार अस्ताचलगामी (दिख रहा) है। यदि तुम यहाँ से जा रहे मेरे पति को (साहचर्य और सहयोग के लिए आशा भरी दृष्टि से) देख रहे हो, तब तो तुम्हारा कल्याण (ही) हो गया ! क्योंकि वह तो वहाँ सिपाही है (और तुम व्यर्थ में ही लुट जाओगे, इसलिए हे पथिक ! अच्छा यही है कि आज की रात तुम मेरे पास ही ठहर जाओ)। ४।

(- नीलोक)

पान्थ स्वैरगतिं विहाय झटिति प्रस्थानमारभ्यता-
मत्यन्तं करिशूकराहिगवयैर्भीमं पुरः काननम्।
चण्डांशोरपि रश्मयः प्रतिदिशं म्लानास्त्वमेको युवा
स्थानं नास्ति गृहे ममापि भवतो बालाहमेकाकिनी।।५।।

कस्यचित्।

'अरे पथिक ! तुम अब अपनी यह मनमानी चाल छोड़कर तत्काल प्रस्थान करना आरम्भ करो, क्योंकि आगे हाथियों, सुअरों, साँपों और नीलगायों से व्याप्त अति भयावह जंगल है। सूर्य की किरणें भी, प्रायः प्रत्येक दिशा में कुम्हला गई हैं, फिर तुम अकेले और युवा हो, इसलिए मेरे घर में भी तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं है, क्योंकि एक तो मैं कन्या हूँ और दूसरे अकेली हूँ। ५।

(- अज्ञात कवि)

विशेष - यह कथन आपाततः निवास-निषेधपरक है, किन्तु वास्तव में, इसमें पथिक से रुक जाने का सुदृढ़ आग्रह ही परोक्षरीत्या व्यंजित हो रहा है। यह स्त्री जंगल की भयंकरता का चित्र सामने खींचकर पथिक को जाने से विरत तो कर ही रही है, साथ ही अपने कन्यात्व और अकेलेपन का चारा भी डाल रही है।

१६. लक्षितासती

दशनपदमतिस्फुटं विभाति
स्फुरति तनुः श्रमवारिसिक्तमास्यम्।
अवितथमभिधत्स्व कामिनि त्वां
कुटिलगतिर्न न दष्टवान् भुगङ्गः।।१।।

कस्यचित्।

१६. लक्षिता असती

'अरी कामिनी ! (तुम्हारा) दन्तस्थान अत्यन्त स्पष्टरूप से चमक रहा है। चेहरे पर पसीने की बूँदें भी झलक रही हैं। तुम सच-सच बताओ कि तुम्हें टेढ़े-टेढ़े चलने वाले साँप ने नहीं, बल्कि किसी लम्पट व्यक्ति ने नहीं डसा है ?' १।

(- अज्ञात कवि)

विशेष - साँप जिसे डसता है, उसके मुँह से झाग निकलने लगती है, लेकिन यहाँ तो चेहरे पर रमणीयता है। इसलिए पूछने वाली ने ताड़ लिया है कि इसे किसी साँप ने नहीं, बल्कि किसी कामुक-लम्पट ने अपनी रति-क्रीडा का आखेट बनाया है। १।

न्यस्तं न स्तनमण्डले नखपदं कण्ठान्न विश्लेषिता
मुक्ताहारलता कपोलफलके लुप्ता न पत्रावली।
मुग्धे यद्यपि तेन ते न दशनैर्भिन्नोऽद्य बिम्बाधर-
स्तद्वैलक्ष्यविजृम्भितैरिह तथाप्युन्नीयते दुर्णयः।।२।।

श्रीमल्लक्ष्मणसेनस्य।

'अरी भोली (बनने वाली) ! यद्यपि आज उसने (तुम्हारे प्रेमी ने) स्तनों पर नखक्षत के चिह्न नहीं बनाये हैं, गले में पड़ी मोतियों की माला भी अलग नहीं की है, और कपोलों पर अंकित पत्र-रचना भी लुप्त नहीं हुई है। बिम्बफल के सदृश (लाल-लाल) अधरोष्ठ भी दन्तावली से भिन्न नहीं प्रतीत होता अर्थात् होठों पर भी काटने के निशान नहीं हैं। फिर भी तुम जो बार-बार लजा रही हो, इससे तुम्हारी दुश्चेष्टा (-प्रच्छन्न रतिक्रीड़ा) की पुष्टि (तो) हो ही रही है। २।

(- श्रीमत्लक्ष्मणसेन)

निर्धौताञ्जनलक्ष्म नेत्रमरुणोच्छूना कपोलस्थली
क्रान्त्वेवाधरपालिरस्फुटमिलल्लेखा तटी पार्श्वयोः।
निद्राघूर्णितनिष्प्रयत्नशिथिलान्यङ्गानि ते तद्वयं
नो विद्मः सखि संमुखः स भगवान् कस्याद्य पुष्पायुधः।।३।।

उमापतिधरस्य।

'अरी सखी ! (तुम्हारी) आँखों से काजल की रेखा पूरी तरह धुल गई है, कपोलों पर लाली उल्लसित हो रही है। अधरों की रेखा मानो छलांग लगाकर अगल-बगल के किनारों से मिल रही है। शिथिल और अलसाये अंग नींद से विह्वल हैं, इसलिए हम यह नहीं जानते कि भगवान् कामदेव आज किसके सामने पड़ गये (अर्थात् वासना के आवेग में किसने तुम्हारे साथ आज रतिक्रीड़ा की) ?' ३।

(-उमापतिधर)

मीलच्चक्षुरनुक्षणं पुलकिनी धत्से यदन्तर्मुदं
सावज्ञं यदुपान्तसंकुचितया दृष्ट्या पतिं पश्यसि।
यद्वक्रास्वपि वेषभाषितकलास्वभ्यासमालम्बसे
तन्मन्ये सखि नागरस्य विषयं कस्यापि यातासि किम्।।४।।

तस्यैव।

'अरी सखी ! (तुम्हारी) आँखें मुँद रही हैं। आन्तरिक आनन्द से तुम पुलक-पल्लवित हो रही हो। पति को तुम अवज्ञापूर्वक आँख का कोना दबाकर देख रही हो। उल्टे-सीधे कपड़े पहनने और उलटबाँसियाँ बोलने की कला में बड़ी निपुणता दिखा रही हो- इससे मुझे लगता है कि तुम किसी नगरनिवासी (-रसिक-शिरोमणि-) की (रति-क्रीड़ा की) लक्ष्य तो कहीं नहीं बन गई हो ?' ४।

(- वही)

परिणतसखीवाङ्गिर्वेदान्निवृत्तगृहग्रहे
सुदति मदनाद्वैताभ्यासान्निकुञ्जनिवासिनि।
कनखलशिलोत्खेलद्गङ्गास्खलद्गुरुकीकसः
कथय कतमो वानप्रस्थाश्रमेद्य तवातिथिः।।५।।

पादूकस्य।

(नये-नये ब्रह्मचारियों अथवा स्नातकों को अपनी रतिक्रीड़ा का पात्र बनाने वाली तथा वानप्रस्थाश्रम में रहने वाली किसी कुलटा से उसकी सखी का प्रश्न-) : अरी सुन्दर दाँतों वाली ! तथा काम-क्रीड़ा में अद्वैतभाव का अनुभव करने के लिए निकुंज में निवास करने वाली अनुभवी सखी ! यह बताओ कि वेदाध्ययन के अनन्तर, घर लौटने वाले स्नातकों से भरे (तुम्हारे) वानप्रस्थाश्रम में, कनखल की शिलाओं से टकरा-टकरा कर खिलवाड़ करती गंगा में फिसली भारी हड्डी की तरह अपने गुरु के भारी नियन्त्रण से मुक्त कौन-सा ब्रह्मचारी आजकल तुम्हारा अतिथि है ?' (पूछने वाली का अभिप्राय यह है कि आजकल तुम किस नये ब्रह्मचारी अथवा स्नातक के साथ मौज-मजा ले रही हो ?) ५।

(- पादूक)

१७. वेश्या

ईर्ष्या कुलस्त्रीषु न नायकस्य
निःशङ्ककेलिर्न पराङ्गनासु।
वेश्यासु चैतद्वितयं विरूढं
सर्वस्वमेतास्तदहो स्मरस्य।।१।।

रुद्रटस्य।

१७. वेश्या

(अपनी) कुलवधुओं में, नायक की, (कामक्रीड़ा-हेतु) तीव्र रुचि नहीं होती और पराई औरतों के साथ निश्चिन्ता पूर्वक काम-क्रीड़ा हो नहीं पाती। (इसके विपरीत) वेश्याओं के मध्य यह दोनों बाते घटित हो जाती हैं- अर्थात् उनमें नायक रुचि तो लेता ही है, साथ ही उनके साथ निःशंक भाव से रतिक्रीड़ा भी की जा सकती है। इसलिए वेश्याएँ ही कामदेव की सर्वस्व हैं। १।

(- रुद्रट)

क्वथत्पिनाकिनेत्राग्निज्वालभस्मीकृतः पुरा।
उज्जीवति पुनः कामो मन्ये वेश्यावलोकितैः।।२।।

तस्यैव।

मुझे लगता है कि क्रुद्ध शिव की नयन-वह्नि से भस्मीभूत कामदेव वेश्याओं की चितवनों से पुनः जीवित हो गया है। २।

(- वही)

सश्रीकोलकपल्लवेन तिमिरस्ताम्बूलरागच्छविः
स्वच्छायादशनव्रणैर्नखपदैश्चित्रा च पत्रावली।
लोलापाङ्गविलोकितस्तवकिता कर्णोत्पलश्रीरिति
व्यक्तोद्दीपितभूषणाः स्मरमपि क्षुभ्नन्ति वारस्त्रियः।।३।।

जलचन्द्रस्य।

काली मिर्च के सुन्दर पत्तों के सदृश साँवली, ताम्बूल की लाली से युक्त छवि वाली, कान्तियुक्त कपोलों पर दन्तक्षतों और नखक्षतों से अंकित विचित्र पत्र-रचना वाली, चंचल कटाक्षों की चितवनरूपी पुष्प-गुच्छों से युक्त कर्णाभूषणों की शोभा वाली तथा उद्दीपन के सुस्पष्ट आभूषणों वाली, वारांगनाएँ तो (स्वयं) कामदेव (के मन) में भी क्षोभ उत्पन्न कर देती हैं। ३।

(- जलचन्द्र)

श्रोणीभारभरालसा दरगलन्माल्यापवृत्तिच्छला-
ल्लीलोत्क्षिप्तभुजोपदर्शितकुचोन्मीलन्नखाङ्गावलिः।
लोलेन्दीवरदामदीर्धतरया दृष्ट्या धयन्ती, मनो
दोरान्दोलनलोलकङ्कणझणत्कारोत्तरं सर्पति।।४।।

कृष्णमिश्रस्य।

श्रोणि (-पृष्ठास्थि-) के भार से अलसाई, थोडी खिसकती हुई माला को ठीक करने के बहाने उठाई गई भुजा से प्रदर्शित स्तनों पर खिलते हुए नाखूनों वाली, हिलते हुए नीलकमलों की माला (के सदृश) सुदीर्घ दृष्टि से (रसिकों के) मन को उत्तेजित करती हुई, तथा बाँहों को हिलाकर कंगनों को झनकारती हुई (वेश्या धीरे-धीरे) आगे खिसक रही है। ४।

(- कृष्णमिश्र)

समुद्रवीचीव चलस्वभावाः
सन्ध्याभ्रलेखेव मुहूर्त्तरागाः।
वेश्याः कृतार्थाः पुरुषं हृतस्वं
निष्पीडितालक्तकवत्त्यजन्ति।।५।।

शूद्रकस्य।

समुद्र की लहरों के सदृश चंचल स्वभाव वाली और सन्ध्याकालीन मेघों की क्षणिक लालिमा-रेखा की तरह अल्पकालिक प्रेम वाली वेश्याएँ,(ग्राहक पुरुष का) धन हड़पने के बाद, पुरुष को निचोड़े गये आलते की तरह छोड़ देती हैं। ५।

(-शूद्रक)

१८. दाक्षिणात्यस्त्री

आमूलतो वलितकुन्तलचारुचूड-
चूर्णालकप्रकरलाञ्छितभालभागः।
कक्षाविवेशनिविडीकृतनीविरेष
वेषश्चिरं जयति कुन्तलकामिनीनाम् ।।१।।

राजशेखरस्य।

१८. दाक्षिणात्य स्त्री

कुन्तल प्रदेश की कामिनियों के उस वेश की जय हो ! जिसमें जड़ से छल्लेदार बालों के सुन्दर जूड़े से छितरे बालों के गुच्छे से माथा ढका रहता है तथा नीवी काँख में ही कसकर बँधी रहती है। १।

(- राजशेखर)

नेत्रयात्राशरक्षेपैस्त्र्यम्बकस्यापि ताडनी।
भ्रूलता द्राविडस्त्रीणां द्वितीयं कामकार्मुकम् ।।२।।

तस्यैव।

द्रविड़ प्रदेशों की स्त्रियों की लता (के सदृश कमनीय) भौंह तो (मानों) कामदेव का दूसरा धनुष ही है, जो आँखों की चितवन के बाण चला-चलाकर, त्र्यम्बकेश्वर भगवान् शिव पर भी प्रहार करती रहती है। २।

(- वही)

मुखानि चारूणि घनाः पयोधरा
नितम्बपृथ्वयो जघनोत्तमश्रियः।
तनुनि मध्यानि च यस्य सोऽभ्यगा-
त्कथं नृपाणां द्रविडीजनोहृदः।।३।।

पाणिनेः।

सुन्दर मुखवाली, ठोस स्तनों वाली, बड़े-बड़े नितम्बों वाली, सुशोभित जघन भाग वाली और पतली कमर वाली द्राविड़ स्त्रियाँ राजाओं के हृदय से (बाहर) कैसे निकल सकती हैं ! (अभिप्राय यह कि राजागण सर्वाङ्ग सुन्दर दाक्षिणात्य स्त्रियों के आकर्षण से मुक्त नहीं रह सकते हैं)। ३।

(- पाणिनि)

वाचो माधुर्यवर्षिण्यो नाभयः शिथिलांशुकाः।
दृष्टयश्च चलद्भ्रूका मण्डनान्यन्ध्रयोषिताम्।।४।।

भर्तृमेण्ठस्य।

माधुर्य की वर्षा करने वाले वचन, नाभि पर सिमटी चादर और दृष्टि में भौंहों की चंचलता- ये ही, आन्ध्र प्रदेश की (सुन्दर) स्त्रियों के आभूषण हैं। ४।

(- भर्तृमेण्ठ)

द्रविडीनां ध्रुवं लीलारेचितभ्रूलते मुखे।
आसज्य राज्यभावं स्वं सुखं स्वपिति मन्मथः।।५।।

कस्यचित्।

द्रविड़ स्त्रियों की क्रीड़ापूर्वक खिंचती हुई भ्रूलता से युक्त मुख पर अपने साम्राज्य (के संचालन और संवर्धन) का भार डालकर कामदेव सुख से सो रहा है। ५।

(- अज्ञात कवि)

१६. पाश्चात्यस्त्री

प्रपञ्चितकलातन्त्रे पञ्चालीकेलिनर्मणि।
सर्वास्त्रमोक्षं कुरुते स्वयं कुसुमकार्मुकः।।१।।

राजशेखरस्य।

१६. पश्चिमी प्रदेशों की स्त्री

पञ्चाल प्रदेश की स्त्री की कामक्रीड़ा में, जिसमें सभी कलाओं की सृष्टि का विस्तार रहता है, कामदेव स्वयं सभी अस्त्र (शस्त्रों) का त्याग कर देता है अर्थात् पाञ्चाली स्त्रियों की रतिक्रीड़ा में कामदेव के सभी आयुधों का समावेश रहता है। १।

(- राजशेखर)

खेलं संचरितुं तरङ्गतरलभ्रूलेखमालोकितुं
रम्यं स्थातुमनादरार्पितमनोमुद्रं च संभाषितुम्।
संत्यज्योज्जयिनीजनीर्विवदितुं हृद्यं च लङ्कापते
प्रत्यङ्गार्पणसुन्दरं च न जनो जानाति रन्तुं पुरः।।२।।

तस्यैव।

'हे लंकाधीश ! क्रीड़ापूर्वक संचरण करने के लिए, लहराती हुई चंचल भ्रूलता को देखने के लिए, रमणीय (स्थान) पर ठहरने के लिए और तिरस्कारपूर्वक समर्पित मनोमुद्रा से युक्त (स्त्री से) संभाषण करने के लिए, उज्जयिनी की स्त्रियों को छोड़कर इस व्यक्ति को किसी ऐसी स्त्री की जानकारी नहीं है, जिससे मनोभिनिवेशपूर्वक तथा प्रत्येक अंग के समर्पण की चाह से युक्त रतिक्रीड़ा की जा सके। २।

(- वही)

चकोर्य एव चतुराश्चन्द्रिकापानकर्मणि।
आवन्त्य एव निपुणाः स्त्रियः सुरतनर्मणि।।३।।

तस्यैव

चाँदनी का पान करने में कुशल चकोरियों की तरह, मालवा की स्त्रियाँ ही केवल रतिक्रीड़ा का आनन्द प्रदान करने में निपुण हैं। ३।

(- वही)

विशेष - राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी भी मालवा की ही थीं। इसलिए मालवा की स्त्रियों के विषय में उनकी जानकारी प्रामाणिक ही मानी जायेगी।।

ताडङ्कवल्गनतरङ्गितगण्डलेख-
मानाभिलम्बिदरदोलिततारहारम्।
आश्रोणिगुल्फपरिमण्डलितोत्तरीयं
वंशं नमस्यत महोदयसुन्दरीणाम्।।४।।

कस्यचित्।

कान्यकुब्ज प्रदेश (-पुराना नाम महोदय-) की सुन्दरियों के उस वंश (-परम्परागत समूह-) को नमस्कार ! जिनके कपोल भाग की साज-सज्जा कर्णाभूषण के नियन्त्रण से लहराती रहती है, वक्षस्थल के सन्धिस्थल पर तारकहार झूलते रहते हैं, और श्रोणिभाग (-पृष्ठास्थि-) से टखने तक का भाग चादर से ढका रहता है। ४।

(- अज्ञात कवि)

बाहुद्वन्द्वे वलयचरना रक्तकौशेयसूत्रैः
सिन्दूरान्तस्तवकशबला सामि सीमन्तलक्ष्मीः।
दूर्वाश्यामं तिलकमलिके ग्रन्थिलः केशपाशः
प्रीतिं काशीनगरसुदृशामेष वेषस्तनोति।।५।।

कस्यचित्।

बाहुयुग्म पर लाल रेशमी धागों से वलय की रचना, आधी माँग में सिन्दूर और पुष्पगुच्छ के मिले-जुले रंगों वाली शोभा, मस्तक पर दूर्वादल के सदृश गहरी हरी बिन्दी, (बालों का) गाँठ लगा जूड़ा- काशी नगरी की सुन्दर नयनों वाली (सुन्दरियों) की यह वेश-भूषा (हृदय में) प्रेम को बढ़ाती है। ५।

(- अज्ञात कवि)

विशेष - काशी नगरी को पश्चिमी क्षेत्र में, यहाँ बंगाल के दृष्टिकोण से रखा गया है।

२०. उदीच्यप्राच्ये

कान्तिं कुङ्कुमकेशरान्मधुरतां द्राक्षारसस्यासवा-
द्वैदर्भीपरिपाकपूरवचसः काव्यात्कवेर्मार्दवम्।
पार्श्वदेव जरातुरेण विधिना तं तं गृहीत्वा गुणं
सृष्टा हन्त हरन्ति कस्य न मनः कश्मीरवामभ्रुवः।।१।।

उमापतिधरस्य।

२०. उत्तरी और पूर्वी प्रदेशों (की स्त्रियाँ)

वृद्धावस्था से विकल विधाता ने (दूर जाने में अपनी अक्षमता के कारण कश्मीर के) पास से ही विभिन्न वस्तुओं के विविध गुणों को लेकर काश्मीरी वामाङ्गनाओं की रचना की है, यथा - (उसने) केशर और कस्तूरी से कान्ति, अँगूरी शराब से माधुर्य और कवियों के वैदर्भी शैली से भरे-पुरे काव्य से वाणी की कोमलता (को लेकर इन स्त्रियों की रचना की है)। ये (काश्मीरी सुन्दरियाँ) किसके मन को अपनी ओर नहीं आकृष्ट करतीं ? अर्थात् ये सभी को अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ हैं। १।

(- उमापतिधर)

हूणीनां हरिणाङ्कपाण्डुमधुरश्रीभाजि गण्डस्थले
शोभां कामपि बिभ्रति प्रणिहिताः कश्मीरविच्छित्तयः।
अप्यासां स्तनमण्डले परिणमन्मालूरगौरे श्रियं
संधत्ते नवसांध्यरश्मिरुचिरं माञ्जिष्ठपट्टांशुकम्।।२।।

तस्यैव।

हूण-स्त्रियों के चन्द्रमा के समान पीलापन लिये हुए (गौरवर्ण) के माधुर्यमय सुशोभित कपोलों पर केन्द्रित कश्मीर की श्रृङ्गारिक भाव-भंगिमाएँ किसी अपूर्व शोभा को धारण करती हैं। साथ ही, इन (स्त्रियों) के बेल अथवा कैथे के फल के सदृश गौरवर्ण स्तन-मण्डल पर मंजिष्ठा के रंग में रँगा दुपट्टा, नवीन संध्या की किरणों की सुन्दरता को धारण करता है। २।

(- वही)

उत्तरापथकान्तानां किं ब्रूमो रामणीयकम्
यासां तुषारसंभेदे न म्लायति मुखाम्बुजम्।।३।।

अमृतदत्तस्य।

उत्तरापथ की उन कमनीय स्त्रियों की रमणीयता के विषय में हम क्या कहें ! जिनके मुखकमल बर्फ गिरने पर भी नहीं मुरझाते हैं। ३।

(- अमृतदत्त)

अत्रार्द्रचन्दनकुचार्पितसूत्रहार-
सीमन्तचुम्बिसिचयस्फुटबाहुमूलः।
दूर्वाप्रकाण्डरुचिरासु गुरूपभोगो
गौडाङ्गनासु चिरमेष चकास्ति वेषः।।४।।

राजशेखरस्य।

दूर्वादल के सदृश कमनीय कान्तिवाली, गौडप्रदेश (बंगाल) की स्त्रियों की प्रचुरता से प्रयुक्त वह वेशभूषा चिरकाल से प्रकाशित हो रही है, जिसमें ताजा-ताजा चन्दनलिप्त कुचों पर धारित मंगलसूत्र के हार और माँग को चूमने वाले वस्त्र से बाहुमूल स्पष्ट (दिखता) है। ४।

(- राजशेखर)

वासः सूक्ष्मं वपुषि भुजयोः काञ्चनी चाङ्गदश्री-
र्मालागर्भः सुरभिमसृणैर्गन्धतैलैः शिखण्डः।
कर्णोत्तंसे नवशशिकलानिर्मलं तालपत्रं
वेशः केषां न हरति मनो वङ्गवाराङ्गनानाम्।।५।।

कस्यचित्।

शरीर पर हल्का वस्त्र, भुजाओं में स्वर्णनिर्मित बाजूबन्दों की शोभा, सुरभित मालाओं से वेष्टित तथा सुगन्धित तेल से युक्त केशराशि, कर्णाभूषण के रूप में नूतन चन्द्रकला के सदृश स्वच्छ तालपत्र - बंगाल की वारांगनाओं का यह वेशविन्यास किसके चित्त को (अपनी ओर) नहीं आकृष्ट करता ? ५।

(- अज्ञात कवि)

२१. ग्राम्या

तथाप्यकृतकोत्ताल-हासपल्लविताधरम्।
मुखं ग्रामविलासिन्याः सकलं राज्यमर्हति।।१।।

भर्तृमेंण्ठस्य।

२१. ग्राम्य

ग्राम-निवासिनी के अकृत्रिम तथा उन्मुक्त हास्य से किसलय के सदृश स्फुटित अधरों वाले मुख पर तो सम्पूर्ण राज्य को न्यौछावर किया जा सकता है ! १।

(- भर्तृमेण्ठ)

भाले कज्जलबिन्दुरिन्दुकिरणस्पर्धी मृणालाङ्कुरो
दोर्वल्लीषु शलाटुफेनिलफलोत्तंसश्च कर्णातिथिः।
धम्मिल्लस्तिलपल्लवाभिषवणस्निग्धः स्वभावादयं
पान्थान्मन्थरयत्यनागरवधूवर्गस्य वेशग्रहः।।२।।

चन्द्रचन्द्रस्य।

मस्तक पर चन्द्र-किरण और कमलनाल के अंकुर के सदृश काजल का टीका, बाहुलताओं पर (झूलता हुआ) शलाटु (-स्कन्द विशेष-) फल के सदृश कर्णाभूषण, तिल के किसलयों के मसलने से चिकना-चिकना केशकलाप-ग्रामवधुओं का यह वेश-विन्यास पथिकों

की चाल को स्वाभाविक रूप से मन्द कर देता है। (अभिप्राय यह कि पथिक जन अपनी चाल को मन्द करके ग्रामीण वधुओं की साज-सज्जा को देखने लगते हैं)। २।

(-चारुचन्द्र)

न तथा नागरस्त्रीणां विलासा रमयन्ति नः
यथा स्वभावमुग्धानि वृत्तानि ग्राम्ययोषिताम् ।।३।।

कस्यचित् ।

नगर-निवासिनी स्त्रियों के हाव-भाव (हमारे मन को) उतना आनन्द नहीं प्रदान करते, जितना ग्राम्यवधुओं का स्वभावतः भोला-भाला व्यवहार (प्रीतिकर) लगता है। ३।

(- अज्ञात कवि)

मञ्चे रोमाञ्चिताङ्गी रतिमृदिततनोः कर्कटीवाटिकायां
कान्तस्याङ्गे प्रमोदादुभयभुजपरिष्वक्तकण्ठे निलीना।
पादेन प्रेङ्खयन्ती मुखरयति मुहुः पामरी फेरवाणां
रात्रावुत्त्रासहेतोर्वृतिशिखिरलतालम्बिनीं कम्बुमालाम् ।।४।।

विद्यायाः ।

ककड़ी की बाड़ी में (उसे बचाने के लिए रात्रि में) मचान पर (रहने वाली), रतिक्रीड़ा में मसले गये शरीर वाले, पति के अंगों में समाई हुई, आनन्द से (पति के) गले में दोनों भुजाएँ डाले हुई, रोमाञ्चित अंगों वाली निम्नकुल की ग्राम्यवधू, पैरों से झूला-सा झूलती हुई, गीदड़ों को डराने (और उन्हें भगाने) के लिए बाड़ के ऊपर, लता से लटकी हुई शंख माला को बार-बार बजा रही है। ४।

(- विद्या)

हलक्षतकरस्पर्शत्रपयेवासिताननम् ।
बिभर्ति सुभगाभोगं ग्राम्यस्त्री स्तनमण्डलम् ।।५।।

आचार्यगोपीकस्य ।

ग्राम्यस्त्री, हल की चोटों के चिह्नों वाले (अपने हलवाहे पति अथवा प्रेमी के) हाथ के स्पर्श से लजाकर मानों काले पड़ गये चूचुकों से युक्त तथा सुन्दर विस्तार वाले स्तन-मण्डल को धारण करती है। ५।

(- आचार्य गोपीक)

२२. स्त्रीमात्रम्

यासां सत्यपि सद्गुणानुसरणे दोषानुबन्धः सदा
याः प्राणान्वरमर्पयन्ति न पुनः संपूर्णदृष्टिं प्रिये।
अत्यन्ताभिमतेऽपि वस्तुनि विधिर्यासां निषेधात्मक-
स्तास्त्रैलोक्यविलक्षणप्रकृतयो वामाः प्रसीदन्तु वः।।१।।

विभोकस्य।

२२. स्त्रीमात्र

वह नारी-समूह आप पर प्रसन्न हो, जो सद्गुणों का अनुसरण करने पर भी, (कुछ-न-कुछ) दोष से ग्रस्त रहता है। प्रेमी पर वे प्राणों को भले ही न्यौछावर कर दें, लेकिन भरपूर दृष्टि से उसे देखती नहीं। जिस वस्तु को वे बहुत चाहती हैं, उसे भी निषेधपूर्वक (-अर्थात् 'नहीं-नहीं करती हुई-) ही स्वीकार करती हैं। (इस प्रकार) स्त्रियों का स्वभाव त्रिभुवन में विलक्षण ही होता है। १।

(- विभोक)

दृशा दग्धं मनसिजं जीवयन्ति दृशैव याः।
विरूपाक्षस्य जयिनीस्ताःस्तुवे वामलोचनाः।।२।।

राजशेखरस्य।

उन वामनयनी (नारियों) की हम स्तुति करते हैं, जो भगवान् शिव के तृतीय नेत्र (की अग्नि) से भस्मीभूत कामदेव को अपने दृष्टिपात मात्र से जीवित कर देती हैं तथा (इस प्रकार) शिव को भी जीत लेती हैं। २।

(- राजशेखर)

सोऽनङ्गः कुसुमानि पञ्च विशिखाः पुष्पाणि बाणासनं
स्वच्छन्दच्छिदुरामधुव्रतमयी पङ्क्तिर्गुणः कार्मुके।
एतत्साधन उत्सहेत स जगज्जेतुं कथं मन्मथ-
स्तस्यामोघममूर्भवन्ति न हि चेदस्त्रं कुरङ्गीदृशः।।३।।

अमरसिंहस्य।

वह कामदेव, जिसके पास फूलों के पाँच बाण और फूलों का ही धनुष है, तथा धनुष की प्रत्यञ्चा भी स्वच्छन्द विचरण करने वाले भ्रमरों की है, इतने साधन भर से संसार-विजय के लिए कैसे उत्साहित होता, यदि इन मृगनयनी नारियों के रूप में उसके पास अमोघ साधन नहीं होता। ३।-

(अमरसिंह)

यन्नामापि सुखाकरोति कलयत्युर्वीमपि द्यामिव
प्राप्तिर्यस्य यदङ्गसङ्गविधिना किं यन्न निह्नूयते।
अन्तः किञ्च सुधासपत्नमनिशं जागर्ति यद्रागिणां
विस्रम्भास्पदमद्भुतं किमपि तत्कान्तेति तत्त्वान्तरम्।।४।।

कस्यचित्।

जिसका नाममात्र मन को सुखी कर देता है, धरती को भी जो स्वर्ग बना देती है - अङ्ग-अङ्ग की प्रक्रिया से जिसकी प्राप्ति की जाती है, जिसकी हर वस्तु छिपाकर रखी जाती है, प्रेमियों के अन्तःकरण में जो दिन-रात उजागर रहती है, और जो विश्वास की अद्भुत पात्र है, वह 'कान्ता' नामक कोई दूसरा अर्थात् विलक्षण ही तत्त्व है। ४।

(- अज्ञात कवि)

व्यर्थं विलोक्य कुसुमेषुमसुव्ययेऽपि
गौरीपतीक्षणशिखिज्वलितो मनोभूः।
रोषाद्वशीकरणमस्त्रमुपाददे य-
त्सा सुभ्रुवां विजयते जगति प्रतिष्ठा।।५।।

मनोविनोदस्य।

भगवान् शिव के नेत्र से उत्पन्न अग्नि से मनोभव कामदेव के जल जाने पर, (और इस प्रकार) कामदेव के प्राण-त्याग को विफल देखकर, जिस सुन्दर भौंहों वाले नारी-समूह ने क्रोधाविष्ट होकर वशीकरण के अस्त्र का प्रयोग किया, उसकी संसार में सर्वोच्च प्रतिष्ठा है। ५।

(- मनोविनोद)

२३. खण्डिता

तव कितव किमाभिर्वाग्भिरभ्यर्णचूत-
क्षितिरुहि कलकण्ठालापमाकर्णयन्ती।

रजनिमहमलज्जा जागरं पांशुलाना-
मुषसि विघस न त्वां पाणिनापि स्पृशामि।।१।।

धर्मयोगेश्वरस्य।

२३. खण्डिता (नायिका)

(जिन स्त्रियों के पति दूसरी स्त्रियों से रमण करके घर लौटते हैं, वे 'खण्डिता' कहलाती हैं।) 'अरे धूर्त ! तुम्हारे इन (मीठे-मीठे) वचनों से मैं क्या तुम पर विश्वास कर लूँगी ? अमराई के पास के वृक्ष पर (बैठी) कोयल के कण्ठ की तान सुनती हुई मैं तो (रात भर) निर्लज्ज भाव से (तुम्हारी प्रतीक्षा में) जागरण करती रही, (और तुम किसी कलमुँही के पास मौज-मजा लेते रहे !) अरे दूसरों के उच्छिष्ट ! गन्दगी (के पुंज !) अब सवेरे मैं तुम्हें अपने हाथ से छुऊँगी भी नहीं।' १।

(- धर्मयोगेश्वर)

सार्धं मनोरथशतैस्तव धूर्त कान्ता
सैव स्थिता मनसि कृत्रिमभावरम्या।
अस्माकमस्ति न च कश्चिदिहावकाश-
स्तस्मात्कृतं चरणपातविडम्बनाभिः।।२।।

कस्यचित्।

'अरे धूर्त ! सैकड़ों मनःकामनाओं से युक्त, तुम्हारी चहेती तो वही है, जिसके मन में बनावटी प्रेम की सुन्दरता है। (अब) हमारे (मन में) तुम्हारे लिए कोई जगह नहीं है। इसलिए पैरों पर गिरने का अपना यह नाटक बन्द करो (- इससे हम पर कोई असर नहीं होने वाला है)।' २।

(- अज्ञात कवि; रुद्रटकृत श्रृंगारतिलक (१-६८) में भी यह उपलब्ध है।)

पादान्ते पतितः प्रियः पततु न प्रव्यक्तवाष्पोद्गमः
संजातः स न जायतां त्वमधुना तद्वक्त्रमत्रागता।
एकाहं तटिनीतटान्तविटपागारे यदाजागरं
नासीत्कापि सखी तदाघनतमःस्तोमावृतायां निशि।।३।।

आचार्यगोपीकस्य।

'अरी सखी ! प्रेमी चरण-तल में गिरा पड़ा है, तो पड़ा रहे। स्पष्ट रूप से उसकी साँस नहीं निकल रही है, तो न निकले। यहाँ आई हुई तुम तो इस समय उसका मुख हो, अर्थात् उसकी ओर से तुम बोल रही हो, लेकिन उस समय तो (मेरी) कोई भी सखी मेरे पास नहीं आई थी, जब मैं अकेली ही, अँधेरी रात में, नदी किनारे के तरु-कुंज में जाग रही थी ! ३।

(-आचार्य गोपीक)

किं ते वाष्पस्तिरयति दृशौ किं सकम्पोऽधरस्ते
गण्डाभोगः कथय किमु ते कोपकेलीकषायः।
निर्मर्यादे मम हि रजनीजागरक्लेशराशे-
रेकः साक्षी स खलु मुरलातीरवानीरकुञ्जः।।४।।

वासुदेवस्य।

'क्या तुम्हारा श्वासोच्छ्वास आँखों को ढक रहा है ? क्या तुम्हारा अधर काँप रहा है ? तुम्हारे कपोलों का विस्तार क्या रोषवश मलिन हो गया है ? अरी मर्यादाहीन ! मैं (तुम्हारी प्रतीक्षा में) रातभर जगता हुआ कष्ट उठाता रहा (और तुम मुझ पर झूठा दोष लगा रही हो !) इसका गवाह तो केवल मुरला नदीतटवर्ती बेंतों का कुंज ही है ! ४।

(-वासुदेव)

ततश्चाभिज्ञाय स्फुरदरुणगण्डस्थलरुचा
मनस्विन्या रूढप्रणयकलहाविष्टमनसा।
अहो चित्रं चित्रं स्फुटमिति लपन्त्याश्रुकलुषं
रुषा ब्रह्मास्त्रं मे शिरसि निहितो वामचरणः।।५।।

अमरुकस्य।

'और उसके बाद, (मेरे) लाल-लाल चमकते कपोलों की कान्ति से उसने (यह) पहचान कर (कि मैं अन्य स्त्री से रतिक्रीड़ा करके लौटा हूँ), मन में प्रणय-कलह का भाव भरकर (उस) स्वाभिमानिनी (पत्नी अथवा प्रेमिका) ने 'अरे, आश्चर्य है !' 'अरे, आश्चर्य है !' (कहकर) बड़बड़ाती हुई, क्रोध में, मेरे शिर पर ब्रह्मास्त्रस्वरूप अपने बायें पैर का प्रहार कर ही दिया !' ५।

(- अमरुक)

२४. अन्यरतिचिह्नदुःखिता

हंहो कान्त रहोगतेन भवता यत्पूर्वमावेदितं
निर्भिन्ना तनुरावयोरिति मया तज्ज्ञातमद्य स्फुटम्।
कामिन्या स्मरवेदनाकुलहृदा यः केलिकाले कृतः
सोऽत्यर्थं कथमन्यथा तुदति मामेष त्वदोष्ठव्रणः।।१।।

२४. अन्यरतिचिह्नदुःखिता (नायिका)

'अरे प्रियतम ! एकान्त में पहले आपने जो यह कहा था कि 'हम लोगों के शरीर अलग-अलग नहीं रह गये हैं-' (मिलकर वे एक हो गये हैं)- इसे आज मैंने स्पष्ट रूप से जान लिया ! कामवेदना से व्याकुल हृदय से, तुमने (उस) कामिनी से रतिक्रीड़ा के समय जो कुछ किया, उससे तो हद ही हो गई ! वैसे मुझे तो तुम्हारे होंठ पर यह क्षत-चिह्न ही कष्ट दे रहा है।' १।

अयं धूर्तो मायाविनयमधुरादस्य वचसः
सखि प्रत्येषि त्वं प्रकृतिसरले पश्यसि न किम्।
कपोले यल्लाक्षावहलरसरागप्रणयिनी-
मिमां धत्ते मुद्रामनतिचिरवृत्तान्तपिशुनाम्।।२।।

सोल्होकस्य।

'अरी सखी ! (तुम्हारा) यह (प्रेमी) तो महाधूर्त है ! तुम इसके कपट से बनावटी और मीठे-मीठे विनयपूर्ण वचनों पर विश्वास कर रही हो ! तुम तो स्वभाव से ही बड़ी सीधी हो ! तुम क्या (इसकी वास्तविकता को) नहीं देख पा रही हो ? देखो, इसके गाल पर महावर से जो रस-राग की सूचिका प्रणयिनी मुद्रा बनी है, वह तो (इस) ताजा-ताजा घटना की चुगली (ही) कर रही है (कि यह जल्दी ही किसी अन्य स्त्री से संभोग करके आया है!) २।

(- सोल्होक)

किमेताः स्वच्छन्दं वितथशपथोक्तीर्वितनुषे
भजेथास्तामेव प्रियसहचरीं चित्तमधुराम्।
यया याञ्चानम्रे तव शिरसि सौभाग्यगरिम-
प्रशस्तिर्न्यस्तेयं चरणनखलाक्षारसमयी।।३।।

वामदेवस्य।

'तुम बेखटके ये झूठी-झूठी कसमें क्यों खाये जा रहे हो ? तुम तो (अभी भी) उसी मनबसी, प्रिय सहचरी की सेवा करते हो ! जिसने तुम्हारे (रति-याचना के निमित्त) झुके शिर पर, अपने चरण-नखसे, महावर के द्वारा सौभाग्य गरिमा की यह प्रशस्ति, (जो अभी भी दिखाई दे रही है), अंकित कर दी है। (तात्पर्य यह कि तुम्हारे शिर पर लगा महावर का यह चिह्न उसके साथ तुम्हारे मिलने की सूचना दे रहा है)। ३।

(- वामदेव)

लाक्षालक्ष्म ललाटपट्टमभितः केयूरमुद्रा गले
वक्त्रे कज्जलकालिमा नयनयोस्ताम्बूलरागोदयः।
प्रातः कोपविधायि मण्डनमिदं दृष्ट्वा चिरं प्रेयसः
क्रीडातामरसोदरेऽम्बुजदृशः श्वासाः समाप्तिं गताः।।४।।

अमरोः।

मस्तक के चारों ओर लगा महावर का चिह्न, कण्ठ में बाजूबन्द का निशान, मुख पर काजल-टीके की छाप, आँखों में ताम्बूल की-सी लालिमा का आविर्भाव-सवेरे-सवेरे (किसी नायिका ने) अपने प्रिय के (जब) ये अलंकरण देखें, तो उस कमलनयनी की साँसें लीला-कमल के भीतर-ही-भीतर घुटकर रह गईं। ४।

(- अमरु)

निद्राच्छेदकषायिते तव दृशौ दृष्टिर्ममालोहिनी
वक्षो मुष्टिभिराहतं तव हृदि स्फूर्जन्ति मे वेदनाः।
आश्चर्यं नवकुन्दकुड्मलशिखातीक्ष्णैरमीभिर्नखैः
प्रत्यङ्गं तव जर्जरा तनुरहं जाता पुनः खण्डिता।।५।।

उमापतिधरस्य।

'तुम्हारी निद्रा-भंग के कारण कसैली आँखें, मुझे पूरी तरह लपेटने वाली दृष्टि, और मुष्टि-प्रहार से आहत वक्षःस्थल- ये (सभी लक्षण) मेरे हृदय में तीव्र वेदना उत्पन्न कर रहे हैं। आश्चर्य यह है कि नई कुन्दकलिका के सदृश पैने नाखूनों से तुम्हारे शरीर का प्रत्येक अंग तो जर्जर हो ही गया है, साथ ही मैं भी 'खण्डिता' हो गई हूँ।' ५।

(- उमापतिधर)

२५. लक्षितविरहिणी

कुचौ धत्तः कम्पं निपतति कपोलः करतले
निकामं निःश्वासः सरलमलकं ताण्डवयति।
दृशः सामर्थ्यानि स्थगयति मुहुर्वाष्पसलिलं
प्रपञ्चोऽयं किञ्चित्तव सखि हृदिस्थं कथयति।।१।।

अमरसिंहस्य।

२५. चिह्नों से स्पष्ट विरहिणी (नायिका)

(तुम्हारे) स्तन काँप रहे हैं, हथेली गालों पर टिकी है, तेजी से चल रही साँसों से सीधे बाल नाच रहे हैं, आँखों में शक्तिहीनता आ गई है, बार-बार आँसू झर रहे हैं, - अरी सखी ! (तुम्हारी) ये चेष्टाएँ मेरे हृदय के (देवता) से कुछ कह रही हैं। १। (अथवा तुम्हारे हृदयगत भाव को बता रही हैं)

(-अमरसिंह)

आहारे विरतिः समस्तविषयग्रामे निवृत्तिः परा
नासाग्रे नयनं यदेतदपरं यच्चैकतानं मनः।
मौनं चेदमिदं च शून्यमखिलं यद्विश्वमाभाति ते
तद्ब्रूयाः सखि योगिनी किमसि भोः किं वा वियोगिन्यसि।।२।।

राजशेखरस्य।

'भोजन से (तुम्हारी) उदासीनता, समस्त (भौतिक) विषयों से अलग हो जाना, नासिका के अग्रभाग पर आँख को केन्द्रित करना, मन की एकतानता, मौन, और सम्पूर्ण विश्व का सूना-सूना लगना- अरी सखी ! बतलाओं कि तुम्हारे ये लक्षण (तुम्हारे) योगिनी बनने के हैं या वियोगिनी होने के ?' २।

(- राजशेखर)

यत्तालीदलपाकपाण्डु वदनं यन्नेत्रयोर्दुर्दिनं
गण्डः पाणिनिषेवनाच्च यदयं संक्रान्तपञ्चाङ्गुलिः।
गौरी क्रुध्यतु वर्तते यदि न ते तत्कोऽपि चित्ते युवा
धिग्धिक् त्वां सह पांशुखेलनसखीवर्गेपि यन्निह्नवः।।३।।

तस्यैव।

'पके ताड़पत्र के सदृश पीला-पीला मुख, आँखों से अविरल अश्रु-वर्षा, हथेली पर रखने के कारण पाँचों उँगलियों की छाप से युक्त कपोल-भवानी मुझसे रूठ जाये (यदि तुम्हारे इन चिह्नों से यह प्रकट न हो रहा हो कि) तुम्हारे हृदय में कोई नौजवान (बैठ गया) है। अरे, तुम्हें धिक्कार है ! जो तुम उन सखियों से भी (अपने मन की बात को) छिपा रही हो, जिनके साथ धूलि-मिट्टी में एक साथ खेली (-कूदी) हो।' ३।

(- वही)

यत्सम्भाषणलालसेव तनुषे वक्त्रेन्दुमर्द्धानतं
धत्से बाहुलतार्गलां कुचतटे निष्क्रान्तिभीत्येव यत्।
किंवा मन्त्रयते जनोऽयमिति यत्सर्वत्र शङ्काकुला
तज्जाने हृदि कोऽपि तिष्ठति युवा प्रौढश्च गूढश्च ते।।४।।

शिल्हणस्य।

'संभाषण की लालसा से जो तुम मुख-कमल को आधा झुका कर फैला रही हो; वक्ष पर भुजलताओं को अर्गला की तरह इस भय के कारण रखे हो कि कहीं स्तनयुग्म निकल न पड़े' (लोगों की फुसफुसाहट के समय) तुम इस शंका से व्याकुल हो कि यह पता नहीं (मेरे विषय में) क्या कह रहा है - (तुम्हारी) इन (सभी चेष्टाओं) से मैं समझ गई हूँ कि तुम्हारे मन में कोई युवा, प्रौढ़ और गुप्त प्रेमी (आकर) समा गया है।' ४।

(- शिल्हण)

यद्दौर्बल्यं वपुषि महती सर्वतश्चास्पृहा य-
न्नासालक्ष्यं यदपि नयनं मौनमेकान्ततो यत्।
एकाधीनं कथयति मनस्तावदेषा दशा ते
कोसावेकः कथय सुमुखि ब्रह्म वा वल्लभो वा।।५।।

लक्ष्मीधरस्य।

'शारीरिक दुर्बलता, सर्वत्र गहरी उदासीनता, नासिका पर केन्द्रित नेत्र और पूर्णतया मौन-तुम्हारी यह दशा बतला रही है कि तुम (सम्प्रति) किसी एक व्यक्ति के अधीन हो गई हो ! हे सुन्दर मुखवाली सखी ! बतलाओ वह ब्रह्म है या (कोई) प्रेमी है ? ५।

(- लक्ष्मीधर)

२६. विरहिणी

श्वासास्ताण्डवितालकाः करतले सुप्ता कपोलस्थली
नेत्रे वाष्पतरङ्गिते परिणतः कण्ठे कलः पञ्चमः।
अङ्गेषु प्रथमप्रबुद्धफलनीलावण्यसंवादिनो
पाण्डिम्ना विरहोचितेन गमिता कान्तिः कथाशेषताम्।।१।।

२६. विरहिणी

(सुदीर्घ) श्वास-प्रश्वास, थिरकते हुए (अस्त-व्यस्त) केश, हथेली पर रखे कपोल, आँसुओं में लहराते नेत्र, कण्ठ में पञ्चमस्वर अर्थात् घरघराती आवाज तथा पहली बार प्रफुल्लित प्रियंगुलता के सदृश अंगों में विद्यमान लावण्यमयी कान्ति की कथा का शेष भाग विरहोचित पीलापन बतला देता है। (अभिप्राय यह कि उपर्युक्त लक्षणों से यह स्पष्ट है कि नायिका किसी के प्रेमजन्य विरह में सांघातिक रूप से व्याकुल है।) १।

कस्मान्म्लायसि मालतीव मृदितेत्यालीजने पृच्छति
व्यक्तं नोदितमार्तयापि विरहे शालीनया बालया।
अक्ष्णोर्वाष्पभरं निगृह्य कथमप्यालोकितः केवलं
किञ्चित्कुड्मलकोटिभिन्नशिखरश्चूतद्रुमः प्राङ्गणे।।२।।

वाहूटस्य।

सखियों ने (जब अपनी विरहिणी सखी से) पूछा कि 'कुचली-मसली हुई मालती लता के सदृश तुम क्यों कुँभला गई हो?' तो पीड़ित होने पर भी शालीनतावश (उस) बालिका ने स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा। बस वह आँसू भरी आँखों से, किसी प्रकार आत्मनियन्त्रण करके, प्रांगण में लगे आम के उस पेड़ को केवल देखती रही, जिसमें कुड्मल के कोनों से थोड़े-थोड़े अंश अभी उभरे थे। २।

(- वाहूट)

सा चन्द्रादपि मन्मथादपि जलद्रोणीसमीरादपि
त्रस्ता मन्मथमत्तसिन्धुरवरक्रीडाविहारस्थली।
क्रीडाकल्पितकालकण्ठकपटस्वर्भानुचक्षुःश्रवः?
श्रेणीसंभृतदुष्प्रवेशशिविरक्रोडान्न निष्क्रामति।।३।।

महादेवस्य।

कामदेव रूपी उन्मत्त हाथी की क्रीड़ा के लिए विहारभूमि बनी हुई तथा चन्द्रमा, कामभाव, जलबिन्दुयुक्त पवन-इन सभी से आतंकित वह (कन्या) उस शिविर के भीतर से बाहर नहीं निकलती, जिसमें क्रीड़ावश बनाये गये मोर, राहु और साँप इत्यादि की आकृतियों के कारण प्रवेश करना कठिन था। ३।

(- महादेव)

निःशेषा मणिपञ्जरावलिरसौ दात्यूहशून्या कृता
श्येनाः केलिवनेषु कोकिलकुलोच्छेदाय संचारिताः।
किं कुर्मः पुनरत्र रात्रिमखिलां कल्यक्वणत्कोकिला-
केलीपञ्चमहुंकृतेः स्वयमियं यन्मृत्युमाकाङ्क्षति।।४।।

शिल्हणस्य

मणि (-निर्मित) पिंजड़े खाली करा दिये गये हैं, (उनमें रहने वाले शुकों के द्वारा) काटने की संभावना (अब) नहीं है। कोयलों का विनाश करने के लिए बाजों को केलि-वनों में संचारित कर दिया गया है। (अब) हम इस विषय में क्या करें, जो (यह विरहिणी नायिका) पूरी रात, क्रीड़ार्थ रखी (-कृत्रिम-) कोयल की भी पञ्चम हुंकार से (त्रस्त होकर) स्वयं मृत्यु की आकांक्षा करती रही है। ४।

(- शिल्हण)।

प्रयातेऽस्तं भानौ श्रितशकुनिनीडेषु तरुषु
स्फुरत्सन्ध्यारागे शशिनि शनकैरुल्लसति च।
प्रियप्रत्याख्यानद्विगुणविरहोत्कण्ठितदृशा
तदारब्धं तन्व्या मरणमपि यत्रोत्सवपदम्।।५।।

लडूकस्य।

सूर्य (जब) अस्त हो गया, चन्द्रमा धीरे-धीरे पक्षिनीडयुक्त वृक्षों पर साँझ की लालिमा फैलाते हुए उल्लसित होने लगा, उस समय प्रिय के द्वारा तिरस्कृत होने से दूनी विरहोत्कण्ठामयी दृष्टि से, इस तन्वङ्गी ने मृत्यु को भी उत्सव की तरह (स्वीकार करना) आरम्भ किया। ५।

(- लडूक)

२७. विरहिणी-वचनम्

जलार्द्रां चार्द्रां वा मलयजरसैर्मा मम कृथा
वृथा सद्यः पद्मच्छदनशयनं मापि च विधाः।
अतीवार्द्रेणायं प्रियसखि शिखी वाडवनिभः
परीतापं प्रेयश्चिरविरहजन्मा जनयति।।१।।

नरसिंहस्य।

२७. विरहिणी के वचन

'अरी प्रिय सखी ! तुम मेरे शरीर को न तो पानी से गीला करो, और न उसमें चन्दन का लेप ही करो। इस समय तुम मेरे लिए कमलों की शय्या भी मत तैयार करो - (क्योंकि) सुदीर्घ विरह से उत्पन्न यह प्रेमाग्नि, वाडवाग्नि (-समुद्र के भीतर जलने वाली अग्नि-) की तरह आर्द्रता से ही सन्ताप उत्पन्न करती है।' १।

(- नरसिंह)

वृथा गाथाश्लोकैरलमलमलीकां मम रुजं
कदाचितद्धूर्त्तोसौ कविवचनमित्याकलयति।
इदं पार्श्वे तस्य प्रहिणु सखि लग्नाञ्जनलव-
स्रवद्बाष्पोत्पीडग्रथितलिपि ताडङ्कयुगलम्।।२।।

शिल्हणस्य।

'अरी सखी ! (मेरे प्रेमी के पास, मेरे प्रेमरोग को व्यंजित करने वाली) गाथा या श्लोक को भेजना व्यर्थ है, क्योंकि इससे तो वह धूर्त मेरे रोग को कविवाणी (- कविता-) भर समझकर झूठा ही मान लेगा। उसके पास तो तुम ताड़पत्र के सदृश इस कर्णाभूषण के जोड़े को ही भेज दो, जिस पर बहते हुए आँसुओं से धुले काजल के अक्षरों में मेरे प्रेमरोग की पीड़ा अङ्कित है।' २।

(- शिल्हण)

गच्छामि कुत्र विदधामि किमत्र कस्मिं-
स्तिष्ठामि कः खलु भमात्र भवेदुपायः।
कर्त्तव्यवस्तुनि न मे सखि निश्चयोऽस्ति
त्वां चेतसा परमनन्यगतिः स्मरामि।।३।।

कालिदासनन्दिनः।

'हे सखी ! मैं कहाँ जाऊँ ? इस (विरहजन्य) स्थिति में क्या करूँ ? किस (स्थान) पर बैठूँ ? अरे, मेरे इस (कष्ट) का उपचार क्या है ? मुझे क्या करना चाहिए ? - यह निश्चय मैं नहीं कर पा रही हूँ। बस हृदय में तुम्हें स्मरण करने के अतिरिक्त मेरे पास कोई अन्य उपाय नहीं है।' ३।

(- कालिदासनन्दी)

सखि मलयजं मुञ्च क्षारं क्षते किमिवार्प्यते
कुसुममशिवं कामस्यैतत्किलायुधमुच्यते।
व्यजनपवनो मा भूच्छ्वासान्करोति ममाधिका-
नुपचितबले व्याधावस्मिम्मुधा भवति श्रमः।।४।।

तस्यैव।

'अरी सखी ! (मेरे विरहजन्य सन्ताप के निवारण-हेतु) तुम जो यह चन्दन का लेप लगा रही हो, उसे बन्द करो।। घाव पर नमक क्यों छिड़क रही हो ? फूल ? अरे वे तो बहुत अमांगलिक हैं- (क्योंकि) कामदेव के अस्त्र कहलाते हैं। पंखे से हवा भी मत करो, क्योंकि उससे मेरी साँस और भी तेज चलने लगती है। अरी सखी ! यह (विरहजन्य) व्याधि जब जोर पकड़ लेती है, तो इसके निवारण-हेतु किया गया समस्त श्रम व्यर्थ ही होता है।' ४।

(- वही)

विरमत विरमत सख्यो नलिनीदलतालवृन्तपवनेन।
हृदयगतोऽयं वह्निर्धगिति कदाचिज्ज्वलत्येव।।५।।

कस्यचित्

'अरी सखियों ! रुको, रुको। कमलिनी के पत्तों या ताड़पत्रों को डुलाकर हवा मत करो। इससे तो मेरे हृदय की अग्नि और अधिक 'धक्-धक्' करके जलने लगती है। ५।

(- अज्ञात कवि)।

२८. विरहिणीरुदितम्

वल्ली पादपमोचितेव सुतनः प्रम्लायति प्रत्यहं
निःश्वासाकुटिलालकं करतलोत्सङ्गे मुखं सीदति।
नासाग्रातिथयो मुहूर्त्तमरुणोच्छूनान्तयोर्नेत्रयो-
र्विश्राम्यन्ति न सिन्दुवारमुकुलस्थूलाः पयोबिन्दवः।। १।।

२८. विरहिणी का रोदन

सुन्दर शरीर वाली (विरहिणी नायिका), वृक्ष के द्वारा परित्यक्त लता के सदृश प्रतिदिन अधिकाधिक मुरझाती जा रही है। (लम्बी-लम्बी) साँसें लेती हुई तथा हथेली पर रखी अपनी घुँघराली केशराशि और मुख से (वह) विषादग्रस्त (प्रतीत होती) है। (उसकी) लाल-लाल और फूली हुई आँखों से प्रवाहित, सिन्दुवार की कलियों के सदृश बड़ी-बड़ी आँसू की बूँदें क्षण भर नासिका के अग्रभाग पर ठहरती हुई भी क्षण भर विश्राम नहीं करतीं (अर्थात् निरन्तर प्रवाहित होती रहती है)। १।

कोऽसौ धन्यः कथय सुभगे कस्य गङ्गासरय्वो-
स्तोयास्फालव्यतिकरखणत्कारि कङ्कालमास्ते।
यं ध्यायन्त्याः सुमुखि नियतं कज्जलच्छेदभाञ्जि
व्यालुम्पन्ति स्तनकलमयीः पत्रमश्रूण्यजस्रम्।। २।।

कस्यचित्।

'सुन्दरि ! बोलो, वह कौन धन्य (पुरुष) है ? गंगा और सरयू के जल को खँगालने और तदनन्तर दोनों के मिश्रण से खनकता हुआ यह किसका कंकाल है, जिसका तुम ध्यान कर रही हो? (और इस कारण) तुम्हारे कज्जलांशयुक्त अश्रुबिन्दु अनवरत स्तन-पयोधरों पर अंकित साज-सज्जा (पत्र-रचना-) को (धो-धोकर) मिटा रहे हैं।' २।

(- अज्ञात कवि)

मुक्त्वानङ्गः कुसुमविशिखान्पञ्च चूर्णीकताग्रा-
न्मन्ये मुग्धां प्रहरति हठात्पत्रिणा वारुणेन।
वारां पूरः कथमितरथा स्फारनेत्रप्रणाली-
वक्रोहाहस्त्रिवलिविपिने सारणीसाम्यमेति।।३।।

राजशेखरस्य।

लगता है, अनंगरूप में स्थित स्वच्छन्द कामदेव (इस) मुग्धा (नायिका) पर, हठपूर्वक, पैनी नोंक वाले अपने पाँचों पुष्पबाणों का प्रहार वारुणास्त्र के द्वारा कर रहा है। यदि ऐसा न होता, तो इसकी बड़ी-बड़ी आँखों की नालियों से टेढ़ा-टेढ़ा बहने वाला अश्रुजल का प्रवाह त्रिवलिरूपी वन में प्रवाहित नदी के सदृश कैसे हो जाता है ? ३।

(- राजशेखर)

पक्ष्मान्ते स्खलिताः कपोलफलके लोलं लुठन्तः क्षणं
धारालास्तुरलोच्छलत्तनुकणाः पीनस्तनास्फालनात्।
कस्माद्‌ब्रूहि तवाद्य कण्ठविगलन्मुक्तावलीविभ्रमं
बिभ्रणा निपतन्ति वाष्पपयसां प्रस्यन्दिनो बिन्दवः।।४।।

तस्यैव।

'(हे सखी !) बोलो, आज तुम्हारी पलकों की कोरों से गिरे, क्षण भर कपोलों पर चंचलता से लोटते हुए, स्थूल स्तनों से टकराकर, धार-धार तथा तरल रूप में उछलते हुए कणों वाले और कण्ठ के ऊपर से बहते समय मोतियों की माला के सदृश प्रतीत होने वाले गर्म-गर्म अश्रुविन्दु किसलिए निरन्तर बहते जा रहे हैं ?' ४।

(- वही)

कपोलं पक्ष्मभ्यः कलयति कपोलात्स्तनतटं
स्तनान्नाभिं नाभेर्घनजघनमेत्य प्रतिमुहुः।
न जानीमः किं नु क्व नु कृतमनेन व्यवसितं
यदस्याः प्रत्यङ्गं नयनजलबिन्दुर्विहरति।।५।।

नरसिंहस्य।

(इस विरहिणी के) अश्रुबिन्दु पलकों से कपोलों पर, कपोलों से स्तनों के किनारे, वहाँ से नाभि पर, और नाभि से सघन जघनभाग पर पौनः पुन्येन बहते जा रहे हैं। हमें नहीं पता कि इसे किसने क्या कर दिया है ?- किन्तु इतना तो निश्चित है कि इसके प्रत्येक अंग पर अश्रुजल की बूँदें गिरती जा रही हैं। ५।

(- नरसिंह)

२९. दूतीवचनम्

वक्त्रेन्दोर्न हरन्ति वाष्पपयसां धारा मनोज्ञां श्रियं
निःश्वासा न कदर्थयन्ति मधुरां बिम्बाधरस्य द्युतिम्।
तन्व्यास्तद्विरहे विपक्वलवलीलावण्यसंवादिनी
छाया कापि कपोलयोरनुदिनं तस्याः परं शुष्यति।।१।।

धर्मकीर्तेः।

२९. दूती के वचन

उस तन्वङ्गी (विरहिणी) की अश्रु-धारा (यद्यपि) उसके मुखचन्द्र की रमणीय शोभा का हरण नहीं करती; लम्बे-लम्बे निःश्वास विम्बाधर की मधुरकान्ति का (भी) तिरस्कार नहीं करते (तथापि उसकी), पके हुए लवली (-फलविशेष-) के सदृश लावण्यमयी कपोल-कान्ति (अपने) उस (प्रियजन) के वियोग में दिन-प्रतिदिन बराबर सूखती ही जा रही है। १।

-धर्मकीर्त्ति)

लावण्येन पिधीयतेऽङ्गतनिमा संधार्यते जीवितं
त्वद्ध्यानैः सततं कुरङ्गकदृशः किं त्वेतदास्ते नवम्।
निःश्वासैः कुचकुम्भपीठलुठनप्रत्युद्गमान्मांसलैः
श्यामीभूतकपोलमिन्दुरधुना यत्तन्मुखं स्पर्धते।।२।।

श्रृङ्गारस्य।

लावण्य से अंगों की कृशता आच्छन्न हो जाती है (और) जीवन भी बना रहता है, किन्तु तुम्हारा ध्यान करते रहने के कारण (उस) मृगनयनी के विषय में तो (बिल्कुल) नई बात (दिखाई दे रही) है। (वह यह कि) स्तन-कलशों के ऊपर लोटने और उठने के कारण मांसल निःश्वासों से (उसके) कपोल (इतने) काले पड़ते जा रहे हैं कि अब चन्द्रमा भी (अपने कलङ्क के आधार पर) उसके मुख की बराबरी करने लगा है। २।

-श्रृङ्गार

त्वदर्थिनी चन्दनभस्मदिग्ध-
ललाटलेखाश्रुजलाभिषिक्ता।
मृणालचीरं दधती स्तनाभ्यां
स्मरोपदिष्टं चरति व्रतं सा।।३।।

कस्यचित्।

'तुम्हारी कामना करती हुई (वह विदहिणी नायिका) कामदेव के द्वारा बतलाये गये व्रत .का अनुष्ठान कर रही है। (व्रतानुष्ठान के इस क्रम में उसने) माथो पर चन्दन की भस्म पोत रखी है, अश्रु-जल में वह नहाती रहती है और स्तनों पर मृणाल का वस्त्र पहनती है। ३।

-अज्ञात कवि

श्रोत्रं त्वद्गुणजालपूरितमभूद्बाष्पाम्बुपूरे दृशौ
किंचास्या मुखमन्धकारितमभून्निःश्वासवातोर्मिभिः।
चण्डालस्तव शोकवह्निरभितो धन्वी जिघांसुः स्मर-
स्तस्याः कण्ठगतागतानि दधति प्राणाः कुरङ्गोपमाः।।४।।

दनोकस्य।

'(उस विरहिणी नायिका के) कान तुम्हारे गुणों के जाल से घिरे हैं, आँखें आँसुओं में डूबी हैं, मुख निःश्वास-वायु के झोंकों से अन्धकारयुक्त हो गया है। कामदेव रूपी चण्डाल उसे मारने के लिए धनुष लेकर खड़ा है, चारों ओर तुम्हारे शोक की अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही है। (इस स्थिति में) उसके हरिणी-सदृश प्राण कण्ठ में बस आवागमन कर रहे हैं। (तात्पर्य यह कि उसकी मृत्यु आसन्न है)'। ४।

(-दनोक)

विशेष-उपर्युक्त पद्य में कामदेव की कल्पना एक व्याध के रूप में की गई है। 'गुण' शब्द द्वयर्थक है, जाल के पक्ष में तन्तु अर्थ है, और दूसरा नायक के गुणों का वाचक है। बहेलिए जाल में फँसे हिरन के चारों ओर आग जला देते हैं। श्लोक के अन्त में प्रयुक्त 'कुरङ्गोपमाः' शब्द यदि न होता, तो यह सांगरूपक का सुन्दर उदाहरण था।

कण्ठे जीवितमानने तव गुणाः पाणौ कपोलस्तनौ
संतापस्त्वयि मानसं नयनयोरच्छिन्नधारं पयः।
सर्वं निष्करुण त्वदीयविरहे सालम्बनं किं पुन-
स्तस्याः सम्प्रति जीविते वत सखीवर्गो निरालम्बनः।।५।।

जलचन्द्रस्य।

'अरे निष्ठुर (प्रेमी)! तुम्हारे विरह में, (नायिका के) प्राण कण्ठ में हैं, मुख पर तुम्हारे गुण हैं, हाथों पर कपोल और स्तन हैं, तुम्हारे विषय में वह सन्तापग्रस्त है, आँखों से अश्रु-जल अविरल प्रवाहित हो रहा है। तुम्हारे विरह में तो उसका सब कुछ सहारा था, किन्तु अब उसके जीवन के प्रति सखियाँ भरोसा छोड़ चुकी हैं।' ५।

(- जलचन्द्र)

३०. प्रियसंबोधनम्

विलिम्पत्येतस्मिन्मलयजरसार्द्रेण महसा
दिशां चक्रं चन्द्रे सुकृतमय तस्या मृगदृशः।
दृशोर्वाष्पः पाणौ वदनमसवः कण्ठकुहरे
हृदि त्वं ह्रीः पृष्ठे वचसि च गुणा एव भवतः।।१।।

३०. प्रिय (के प्रति) सम्बोधन

'अरे पुण्यवान् (पुरुष !) चन्द्रमा ने (जब) दिशाओं को चन्दन-रस में भीगे प्रकाश से लीप दिया (अर्थात् सर्वत्र चन्द्रमा का चन्दनी आलोक फैल गया) तो उस मृगनयनी की आँखों में आँसू, हथेली पर मुख, कण्ठकुहर में प्राण, हृदय में तुम, पीछे लज्जाभाव, और वचनों में केवल तुम्हारे गुण (भर शेष) रह गये हैं।' १।

मुखेन्दुः प्रभ्रश्यन्नयनजलबिन्दुः करतले
मृणालीहारोपि ज्वर इव परीतापजनकः।
प्रियङ्गुश्यामाङ्ग्याः सुकृतमय वक्रे त्वयि मना-
गनाख्येयावस्थो रतिरमणबाणव्यतिकरः।।२।।

तस्यैव।

'अरे पुण्यवान् ! काम-बाण का आघात लगने पर, और तुम्हारे विपरीत हो जाने पर, उस प्रियंगुलता के सदृश श्यामाङ्गी नायिका की ऐसी अवस्था हो गई है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। (सम्प्रति) उसकी आँखों से अश्रु-जल बहता रहता है, मुखचन्द्र को वह हथेली पर टिकाये है, और कमलिनियों से निर्मित हार भी ज्वर के सदृश उसको सन्तप्त ही कर रहा है।' २।

(- वही)

चन्द्रं चन्दनकर्दमेन लिखितं सा मार्ष्टि दष्टाधराऽ
वन्द्यं वन्दति यच्च मन्मथमसौ भङ्क्त्वाग्रहस्ताङ्गुलीः।
कामः पुष्पशरः किलेति सुमनोवर्गं लुनीते च य-
त्त्कां सा सुभग त्वया वरतनुर्वातूलतां लम्भिता।।३।।

अरे सौभाग्यवान् ! उस सुन्दरी को तो (तुमने अपने प्रेम-वियोग में) बिल्कुल पागल

ही बना दिया है - (वह) चन्दन-पंक से अंकित चन्द्रमा को अधरोष्ठ पीसती हुई पोंछ देती है। ' यह हाथ अवन्दनीय कामदेव की वन्दना करता है-' (इस विचार से) हाथ की उँगलियों को उमेठती रहती है। 'कामदेव के बाण फूलों के हैं-' (यह सोच-सोचकर) फूलों को नोंचती रहती है। (अरे निर्मोही नायक ! तुमने उसे) किस (अवस्था में) पहुँचा दिया है !! ३।

(-राजशेखर)

उन्मीलन्ति नखैर्लुनीहि वहति क्षौमाञ्चलेनावृणु
क्रीडाकाननमाविशन्ति वलयक्वाणैः समुत्रासय।
इत्थं वञ्जुलदक्षिणानिलकुहूकण्ठीषु सांकेतिक-
व्याहाराः सुभग त्वदीयविरहे तस्याः सखीनां मिथः।।४।।

अमरोः।

'हे सुन्दर नायक ! तुम्हारे वियोग में वह (नायिका) सखियों के मध्य विचित्र सांकेतिक चेष्टाएँ कर रही है- (जैसे) 'बेंत खुल रहे हैं, इन्हें नाखूनों से नोंच दो। मलय पवन प्रवाहित हो रहा है, इसे रेशमी वस्त्र से आच्छन्न कर दो। कोयलें क्रीडोद्यान में प्रवेश कर रही हैं, इन्हें कंगन बजा-बजाकर डरा दो।' ४।

(- अमरु)

दरपरिणतदूर्वादुर्बलामङ्गलेखां
ग्लपयति न यदस्याः श्वासजन्मा हुताशः।
स खलु सुभग मन्ये लोचनद्वन्द्ववारा-
मविरतपटुधारावाहिनीनां प्रभावः।।५।।

धोयीकस्य।

द्वार पर (उगी और) पकी हुई (पीली-पीली) दूर्वा के सदृश दुर्बल अंगों वाली उस (विरहिणी नायिका) को यदि, श्वास-प्रश्वास से उत्पन्न हुई अग्नि क्षीण नहीं करती, तो उसका कारण मुझे दोनों आँखों से निरन्तर प्रवाहित हो रही अश्रुधाराओं का प्रभाव ही प्रतीत होता है। ५।

(- धोयी अथवा धोयीक)

३१. परुषाभिधानम्

तस्यास्तापमहं नृशंस कथयाम्येणीदृशस्ते कथं
पद्मिन्याः सरसं दलं विनिहितं यस्याः शमायोरसि।

आदौ शुष्यति संकुचत्यनु ततश्चूर्णत्वमापद्यते
पश्चान्मुर्मुरतां दधाति दहति श्वासावधूतं सखीः।।१।।

कस्यचित्।

३१. कठोर वचन

'अरे निर्दयी ! उस मृगनयनी के सन्ताप के विषय में, मैं तुमसे कैसे कहूँ ? शान्ति के लिए उसके सीने पर जब कमलिनी के सरस पत्ते रखे जाते हैं, तो वे पहले सूख जाते हैं, फिर सिकुड़ जाते हैं, तदनन्तर चूरा बन जाते हैं और बाद में मुर-मुरे हो जाते हैं, (और अन्त में) उस (विरहिणी) की श्वास वायु से उड़कर (पास में बैठी) सखियों को जलाने लगते हैं।' १।

(- अज्ञात कवि)

नीरसं काष्ठमेवेदं सत्यं ते हृदयं यदि।
तथापि दीयतां तस्यै गता सा दशमीं दशाम्।।२।।

कुञ्जराजस्य।

'(अरे निष्ठुर नायक !) तुम्हारा हृदय यदि वास्तव में काठ का ही बना है, तब भी उसे समर्पित कर दो, क्योंकि अब वह (नायिका) दसवीं स्थिति (अर्थात् मरणावस्था) में पहुँच गई है।' २।

(- कुञ्जराज)

कुशलं तस्या जीवति कुशलं पृष्टासि जीवतीत्युक्तम्।
पुनरपि तदेव कथयसि मृतां नु कथयामि या श्वसिति।।३।।

छित्तपस्य।

'उस (विरहिणी) की कुशल (जानना चाहते) हो ? हाँ, वह जी रही है। (कल फिर) कुशल पूछोगे, तो भी वही 'जी रही है' - यह कही गई बात (ही दोहरा दी जायेगी)। (यदि कहोगे कि) 'बार-बार कही गई बात कहते हो' - तो मैं कहता हूँ कि (यद्यपि वह) मर चुकी है, किन्तु बस साँस भर ले रही है।' ३।

(- छित्तप)

तनुर्लीना तल्पे प्रियसहचरीहस्तकलना-
त्रिजस्थानेऽङ्गानि श्वसितमपि तस्याः श्रमपदे।

क्व सा कान्तिर्याता वत न शपथैस्तास्वयमपि
प्रतीमः स्त्रीहत्या तदपि तव चेनो नटयति।।४।।

युवराजदिवाकरस्य।

'(तुम्हारे वियोग में पीड़ित उस नायिका का) शरीर शय्या पर पड़ा है; (उसकी) प्रिय सहेलियों ने हाथ लगाकर (उसके) अंगों को यथास्थान कर दिया है (अर्थात् वह स्वयं अब अपने अंगों को हिला-डुला भी नहीं पा रही है)। साँस लेने में भी उसे श्रम करना पड़ रहा हे। उसकी वह पूर्व कान्ति, पता नहीं, कहाँ चली गई ? (तुम्हारा) बार-बार शपथ लेना (व्यर्थ) है। शपथों में हमारा विश्वास नहीं है। (लेकिन हम इतना तो जानती ही हैं कि) स्त्री-हत्या का पाप तुम्हारे (शिर पर) नाच रहा है।' ४।

(- युवराज दिवाकर)

धिक् चण्डाल किमालपामि मधुपीझंकारझञ्झामरु-
न्माकन्दाङ्कुरसंनिपातजनितस्तस्याः स कोऽपि ज्वरः।
ताः संतापरुजः स चाङ्गजडिमा साहर्निशं जागरा
त्यय्याश्लेषरसेन जीवति पुनस्त्यक्तोन्यथा हस्तकः।।५।।

कस्यचित्।

'अरे निष्ठुर ! क्या मैं यह बतला रही हूँ कि (तुम्हारे वियोग में पीड़ित उस नायिका को) भ्रमरियों की झङ्कारजन्य आँधी से टूटे आम के बौर से उत्पन्न (कोई साधारण-सा) ज्वर है ? (अरे, उसके) सन्तापजन्य रोग, अंगों का ठंडा और शिथिल होना, दिन-रात का जागरण- (ये लक्षण तो शोचनीय ही हो गये हैं)। वह केवल तुम्हारे (पूर्व) आलिङ्गन के आनन्द (की स्मृतिमात्र) से जी रही है, अन्यथा (उसके) हाथ (नाड़ी गति) ने तो उसे छोड़ ही दिया है।' ५।

(- अज्ञात कवि)

३२. विरहिणीचेष्टा

त्वां चिन्तापरिकल्पितं सुभग सा संभाव्य रोमाञ्चिता
शून्यालिङ्गनसंचलद्भुजयुगेनात्मानमालिङ्गति।
किं चान्यद्विरहव्यथाप्रणयिनीं संप्राप्य मूर्छां चिरा-
त्प्रत्युज्जीवति कर्णमूलपठितैस्त्वन्नाममन्त्राक्षरैः।।१।।

३२. विरहिणी (नायिका) की चेष्टाएँ

'अरे सुन्दर (नायक) ! वह (विरहिणी), तुम्हारे विषय में यह सोच-सोचकर कि तुम्हें उसकी चिन्ता है, रोमाञ्चित हो जाती है। आलिङ्गनरहित, किन्तु हिलती हुई भुजा से वह अपना आलिङ्गन (स्वयं ही) कर लेती है। और दूसरी (क्या बात कहें) अपने विरह-व्यथाकाल की प्रणयिनी मूर्च्छा को पाकर (जव वह मूर्च्छित हो जाती है तो) कान के पास जब तुम्हारे नाम के मन्त्राक्षर उसे सुनाये जाते हैं, तो वह फिर जीवित हो उठती है।' १।

अच्छिन्नं नयनाम्बु बन्धुषु कृतं चिन्ता गुरुभ्योऽर्पिता
दत्तं दैन्यमशेषतः परिजने तापः सखीष्वाहितः।
अद्य श्वः परिनिर्वृतिं व्रजति सा श्वासैः परं खिद्यते
विस्रब्धो भव विप्रयोगजनितं दुःखं विभक्तं तया।।२।।

कस्यचित्।

'(अरे निष्ठुर नायक !) तुम आश्वस्त रहो। तुम्हारे वियोग से उत्पन्न दुःख को उस (नायिका) ने बाँट दिया है। (इस क्रम में उसने) अविच्छिन्न अश्रुपात को बन्धुओं में (बाँट दिया है- अर्थात् उसकी पीड़ा से कातर होकर बन्धुजन निरन्तर रो रहे हैं)। चिन्ता उसने गुरुजनों को सौंप दी है। दीनता सभी सेवक-सेविकाओं को उसने दे दी है और सन्ताप सखियों पर डाल दिया है। आज या कल उसे पूर्णतया (इस कष्ट से) छुटकारा मिल जायेगा-अर्थात् वह मरणासन्न है। हाँ, (इस समय) तेजी से चल रही साँसों से वह बहुत कष्ट में है।' २।

(- अज्ञात कवि)

पुनरुक्तावधिवासरमेतस्याः कितव पश्य गणयन्त्याः
इयमिव करजः क्षीणस्त्वमिव कठोराणि पर्वाणि।।३।।

धरणीधरस्य।

'अरे धूर्त ! देखो, पुनर्मिलन-हेतु बतलाये गये दिन की प्रतीक्षा में (हाथ के) तुम्हारी तरह कठोर पोरों को गिनते-गिनते, उसके नाखून भी उसी की तरह क्षीण हो गये हैं।' ३।

(- धरणीधर)

अत्रैव स्वयमेव चित्रफलके कम्पस्खलल्लेखया
संतापार्तिविनोदनाय कथमप्यालिख्य सख्या भवान्।
वाष्पव्याकुलमीक्षितः सपुलकं चूताङ्कुरैरर्चितो
मूर्ध्ना च प्रणतः सखीषु मदनव्याजेन चापह्नुतः।।४।।

वाक्कूटस्य।

'(मेरी) सखी ने (अपने) सन्तापजन्य कष्ट के निवारण-हेतु, यहीं पर, स्वयं ही, चित्रफलक पर, काँपती हुई रेखाओं से किसी प्रकार तुम्हारा चित्र बना लिया तथा लम्बी साँस लेकर उसे देखती रही। और फिर कामदेव के रूप में, उसे सखियों से छिपकर, पुलक-पल्लवित होकर आम्र-मञ्जरियों से उसकी अर्चना की तथा उसके सामने शिर झुकाया।' ४।

(- वाक्कूट)

दूर्वाश्यामरुचोपि चन्दनरसैर्यत्ते लिखत्याकृतिं
सोढुं तापमनीश्वरा यदपि च ग्रीष्मागमं वाञ्छति।
यत्पुष्णाति निरस्य विभ्रमशुकान्बाला चकोरीकुलं
मूढस्तत्र सखीजनः स्फुरति किं सुस्थस्य ते चेतसि।।५।।

'तुम्हारे दूर्वा की तरह श्यामल कान्तियुक्त होने पर भी वह बालिका, चन्दनरस से तुम्हारी आकृति का अङ्कन कर रही है, सन्ताप को सहने में असमर्थ होने पर भी ग्रीष्म के आगमन की कामना कर रही है, हाव-भाव वाले शुकों को हटाकर चकोरियों का पालन-पोषण कर रही है - उसकी इन चेष्टाओं को सखियाँ तो नहीं समझ पाईं। हाँ, तुम्हारे सुस्थिर चित्त में क्या (कोई विचार) स्फुरित हो रहा है ? ५।

३३. संतापकथनम्

सा धैर्याम्बुमरुस्थली विसृमरज्वालः स तापानल-
स्ते मुक्तामणयः कठोरतरुणज्वालामुचः शर्कराः।
कर्पूरस्य रजांसि वालुकमसावस्यास्तु जीवाध्वगः
क्वापि क्वाप्युपयाति मुह्यति मुहुः क्वापि क्वचिन्मूर्छति।।१।।

महादेवस्य।

३३. सन्ताप-कथन

'धैर्य-जल की वह मरुस्थली, फैलती हुई ज्वाला वाली वह सन्तापाग्नि, दोपहर में भीषण आग उगलते रेत-कणों-सी वे मुक्तामणियाँ, बालुका (के सदृश झुलसते) कपूर के वे कण- इनमें उस (विरहिणी) का प्राण-पथिक कहीं चलता है, कहीं भ्रमगस्त हो जाता है और कहीं पर मूर्च्छित भी हो जाता है।' १।

मृगशिशुदृशस्तस्यास्तापं कथं कथयामि ते
दहनपतिता दृष्टा मूर्तिर्मया न हि वैधवी।
इति तु नियतं नारीरूपः स लोकदृशां प्रिय-
स्तव शठतया शिल्पोत्कर्षो विधेर्विघटिष्यते।।२।।

वाचस्पतेः।

'(हरिण-शावक के सदृश आँखों वाली उस विरहिणी) के सन्ताप का मैं तुमसे कैसे वर्णन करूँ ? मैंने आग में गिरी चन्द्रमा की प्रतिमा को (इससे पहले कभी) देखा (ही) नहीं है। (विधाता ने तो) नारी के स्वरूप को लोक-चक्षुओं के (समक्ष) प्रिय रूप में ही बनाया है, लेकिन तुम्हारी धूर्तता के कारण विधाता के शिल्प का वह उत्कर्ष भी, (लगता है) विघटित हो जायेगा।' २।

(- वाचस्पति)

एतस्याः स्मरसंज्वरः करतलस्पर्शैः परीक्ष्योऽद्य न
स्निग्धेनापि जनेन दाहभयतः प्रस्थं पचः पाथसाम्।
निर्बीजीकृतचन्दनौषधविधौ तस्मिंश्चटत्कारिणो
लाजस्फोटममी स्फुटन्ति मणयो विश्वेऽपि हारस्रजाम्।।३।।

योगेश्वरस्य।

'इस (विरहिणी) का कामज्वर अब (इतना अधिक दाहयुक्त हो गया है कि उसमें) जल जाने के भय से स्नेहीजनों के द्वारा भी वह हथेली से परीक्षायोग्य नहीं रहा। (अब तो उसका शरीर इतना जल रहा है कि) उसमें प्रस्थ (-३२ तोले) भर भोजन तक पकाया जा सकता है। जब उस पर बीज निकाली हुई औषधियों से युक्त चन्दन (का लेप किया जाता है तो उस) प्रक्रिया में उसमें समस्त मणियाँ और हार-मालाएँ 'चट्-चट्' करती हुई खील की तरह (जल-जल कर) फूटने-छिटकने लगती हैं।' ३।

(- योगेश्वर)

स्नाता निष्पतयालुलोचनपयः पुण्यस्रवन्तीजलै-
रध्यास्ते नवचन्दनार्द्रनलिनीसंवर्तिकावेदिकाम्।
प्रत्येकं स्मरजातवेदसि निजान्यङ्गानि हुत्वा क्षणा-
दिन्दोरभ्युदयेन दास्यति पुनः सा प्राणपूर्णाहुतिम्।।४।।

धर्मयोगेश्वरस्य।

आँखों से अविरल प्रवाहित होने वाले अश्रु-जल की पवित्र नदी में नहाई हुई तथा ताजे चन्दन से लिप्त, एवं कमलिनी (-पत्रों) को गोल-गोल तहाकर बनाई गई वेदी पर बैठी हुई (वह विरहिणी नायिका अब) कामाग्नि में क्षण-क्षण पर अपने अंगों का होम कर रही है और जब चन्द्रोदय होगा, तो वह उसमें अपने प्राणों की पूर्णाहुति डाल देगी।' ४।

(- धर्मयोगेश्वर)

माल्यं मृणालवलयानि जलं जलार्द्रा
कर्पूरहारहरिचन्दनचर्चितानि।
तस्या नवेन्दुकिरणाश्च न तापशान्त्यै
त्वत्सङ्गसाध्यविरहज्वरजर्जरायाः।।५।।

पुरुषोत्तमदेवस्य।

'तुम्हारे वियोग के ज्वर में जर्जर हो गई उस (नायिका) के सन्ताप का शमन न तो (पुष्प-) मालाओं, कमलनाल के कंगनों, (शीतल) जल से भिगोने, कपूर का लेप करने, हार पहनाने अथवा चन्दन का लेप करने से हो सकता है और ना ही नवीन चन्द्र-किरणों से ही। (अब उसके सन्ताप के शमन-हेतु केवल एक ही उपाय शेष है, और वह है-) तुम्हारे अंगों का साहचर्य प्राप्त करना।' ५।

(- पुरुषोत्तमदेव)

३४. तनुताख्यानम्

दोलालोलाः श्वसनमरुतश्चक्षुषी निर्झराभे
तस्याः शुष्यत्तगरसुमनःपाण्डुरा गण्डभित्तिः।
तद्गात्राणां किमिव हि बहु ब्रूमहे दुर्बलत्वं
येषामग्रे प्रतिपदुदिता चन्द्रलेखाप्यतन्वी।।१।

राजशेखरस्य।

३४. दुर्बलता का कथन

उस (-विरहिणी) की साँसें झूले की तरह चंचल हैं, आँखें झरनों के सदृश बह रही हैं, कपोल सूखते हुए तगर पुष्पों की तरह पीले पड़ गये हैं। उसके अँगों की दुर्बलता के विषय में अधिक क्या कहें ! उनके आगे तो प्रतिपदा की चन्द्रकला भी मोटी लगती है। १।

(- राजशेखर)

आरब्धा मकरध्वजस्य धनुषस्तस्यास्तनुर्वेधसा
त्वद्विश्लेषविशेषदुर्बलतया जाता न तावद्धनुः।
तत्संप्रत्यपि रे प्रसीद किमपि प्रेमामृतस्यन्दिनीं
दृष्टिं नाथ विधेहि सा रतिपतेः शिञ्जापि संजायताम्।।२।।

धोयीकस्य।

विधाता ने उस (विरहिणी) के शरीर को कामदेव के धनुष की प्रत्यञ्चा बनाना प्रारम्भ कर दिया था, लेकिन तुम्हारे वियोग में विशेष दुर्बल हो जाने के कारण वह धनुष की प्रत्यञ्चा नहीं बन सकी। हे स्वामी ! अब आप कुछ प्रसन्न होकर उस पर प्रेमामृत टपकाने वाली (ऐसी) दृष्टि डालिए (जिससे) वह (पुनः) कामदेव (के धनुष) की प्रत्यञ्चा बन जाये।' २।

(- धोयीक)

तस्यास्त्वदेक मनसः स्मरबाणवर्षैः
कार्श्यं वपुः शठ बिभर्ति यथा यथैव।
स्तोकायिताश्रयतयेव तथा तथैव
कान्तिर्घनीभवति लोलविलोचनायाः।।३।।

तस्यैव।

'अरे धूर्त ! तुम्हारे प्रति एकनिष्ठ चित्त वाली उस (नायिका) के शरीर में, कामदेव की बाण-वर्षा से, जैसे-जैसे दुर्बलता आती जाती है, उसी अनुपात में, उस चंचल नयनों वाली की कान्ति, अल्प स्थान में आश्रित होने के कारण, (निरन्तर) घनी होती जा रही है।' ३।

(- वही)

स्पृशन्त्याः क्षामत्वं मदनशरटङ्कव्यतिकरा-
त्कुरङ्गाक्ष्यास्तस्याः श्रृणु सुभग कौतूहलमिदम्।
अपूर्वेति त्रस्ता परिहरति तां केलिहरिणी
न विश्वेऽप्याश्वासं दधति गृहलीलाशकुनयः।।४।।

कस्यचित्।

'अरे सौभाग्यवान् ! सुनो, कामदेव के बाण की नोक के चुभने से दुर्बल हो रही उस मृगनयनी के विषय में आश्चर्य की बात यह है कि (साथ) खेलने वाली हरिणी ने उसे पहले से भिन्न समझ कर तथा भयभीत होकर उसका परित्याग कर दिया है। घर में मनोरंजनार्थ (पले हुए) पक्षी भी (अब उस पर) भरोसा नहीं करते।' ४।

(-अज्ञात कवि)

अभवदभिनवप्ररोहभाजां छविपरिपाटिषु यः पुराङ्गकानाम्।
अहह विरह वैकृते स तस्याः क्रशिमनि संप्रति दूर्वया विवादः।।५।।

तैलपाटीयगाङ्गाकस्य।

उस (नायिका) के नये-नये उभारों वाले जिन अंगों की होड़ (कदाचित्) सुन्दर तथा कान्तिमयी वस्तुओं से थी, अब उन्हीं का, वियोगजन्य विकारों से ग्रस्त दुर्बलता की स्थिति में, दूर्वा के साथ (यह) विवाद (चल रहा) है (कि दोनों में कौन) अधिक दुर्बल है! ५।

(- तैलपाटीयगाङ्गाक)

३५. उद्वेगकथनम्

सौधादुद्विजते त्यजत्युपवनं द्वेष्टि प्रभामैन्दवीं
द्वारात्त्रेस्यति चित्रकेलिसदसो वेषं विषं मन्यते।
आस्ते केवलमब्जिनीकिसलयप्रस्तारिशय्यातले
संकल्पोपनतत्वदाकृतिवशायत्तेन चित्तेन सा।।१।।

राजशेखरस्य।

३५. उद्वेग-कथन

वह (विरहिणी) घर से उद्विग्न है। उद्यान में जाना (उसने) छोड़ दिया है। चन्द्रमा के प्रकाश से उसका द्वेषभाव है। चित्र-क्रीड़ा-मण्डप के द्वार से भी वह डरती है तथा साज-सज्जा से विष की तरह चिढ़ती है। मन में, संकल्प के बल से तुम्हारी आकृति का ध्यान करती हुई वह केवल कमलिनि के किसलयों को बिछाकर बनी हुई शय्या पर पड़ी भर रहती है। १।

(- राजशेखर)

सोद्वेगा मृगलाञ्छने मुखमपि स्वं नेक्षते दर्पणे
त्रस्ता कोकिलकूजितादपि गिरं नोन्मुद्रयत्यात्मनः।
इत्थं दुःसहदाहदायिनि धृतद्वेषापि पुष्पायुधे
मुग्धा सा सुभगे त्वयि प्रतिमुहुः प्रेमाधिकं पुष्यति।।२।।

शृङ्गारस्य।

वह (भोली-भाली नायिका) चन्द्रमा से खिन्न है। दर्पण में वह अपना मुख भी नहीं देखती। कोयल की कूक से वह डरी रहती है। अपने आप (किसी से) बोलती नहीं है।- इस प्रकार, असह्य जलन देने वाले कामदेव के प्रति उसके मन में द्वेषभाव (ही) है, फिर भी तुम्हारे सुन्दर स्वरूप के प्रति उसके (मन में) अधिकाधिक प्रेम बढ़ता जा रहा है।' २।

(-श्रृंङ्गार)

विषं चन्द्रालोकः कुमुदवनवातो हुतवहः
क्षतक्षारो हारः स खलु पुटपाको मलयजः।
अये किञ्चिद्वक्रे त्वयि सुभग सर्वे कथममी
समं जातास्तस्यामहह विपरीतप्रकृतयः।।३।।

अचलनृसिंहस्य।

(उस विरहिणी नायिका को) चन्द्रमा का प्रकाश विषवत् कुमुद-वनों की वायु अग्नि-सदृश, घाव पर छिड़के नमक के समान हार, और चन्दन का लेप पके फोड़े के समान (कष्टदायी) हैं। अरे सुन्दर (नायक) तुम थोड़े विपरीत क्या हुए कि उसके लिए समस्त प्रकृति ही विपरीत हो गई ! ३।

(- अचलनृसिंह)

न क्रीडागिरिकन्दरीषु रमते नोपैति वातायनं
दूराद्द्वेष्टि गुरून्निरस्यति लतागारे विहारस्पृहाम्।
आस्ते सुन्दर सा सखीप्रियगिरामाश्वासनैः केवलं
प्रत्याशां दधती तया च हृदयं तेनापि च त्वां पुनः।।४।।

धोयीकस्य।

'(उस विरहिणी को) क्रीड़ा-गृह की कन्दराओं में अच्छा नहीं लगता। खिड़कियों के पास भी वह नहीं जाती। गुरुजनों को दूर से ही देखकर चिढ़ जाती है। लता-गृह में विहार करने की इच्छा भी उसने छोड़ दी है। हे सुदर्शन ! सखियों के प्रियवचनों से आश्वासन धारण करती हुई, और आश्वासनों से हृदय को सँभालती हुई वह तुमसे (पुनर्मिलन के लिए) आशान्वित है।' ४।

(- धोयीक)

हारं पाशवदाच्छिनत्ति दहनप्रायां न रत्नावलीं
धत्ते कण्टकशङ्किनीव कलिकातल्पे न विश्राम्यति।

स्वामिन्संप्रति सान्द्रचन्दनरसात्पङ्कादिवोद्वेगिनी
सा बाला विसवल्लरीवलयतो व्यालादिव त्रस्यति।।५।।

उमापतिधरस्य।

'अरे मालिक ! वह (विरहिणी) बालिका इस समय हार को जाल की तरह काट रही है। रत्नमाला को वह आग समझकर नहीं धारण कर रही है। कलियाँ (बिछाकर तैयार किये गये) बिस्तर पर भी वह विश्राम नहीं करती। चन्दन के लेप से वह कीचड़ की तरह चिढ़ती है तथा कमलनाल से बने कंगनों से साँप की तरह डरती है।' ५।

(- उमापतिधर)

३६. निशावस्थाकथनम्

अस्मिंश्चन्द्रमसि प्रसन्नमहसि व्याकोषकुन्दत्विषि
प्राचीनं खमुपेयुषि त्वयि मनाग्दूरं गते प्रेयसि।
श्वासः कैरवकोरकीयति मुखं तस्याः सरोजीयति
क्षीरोदीयति मन्मथो दृगपि च द्राक् चन्द्रकान्तीयति।।१।।

कस्यचित्।

३६. निशावस्था का कथन

पूर्वाकाश में चन्द्रमा का समुज्ज्वल प्रकाश जब छा गया; कुन्द-कुसुमों के कान्तिमय कोश प्रफुल्लित हो उठे; और तुम, जो उसके प्रेमी थे, कुछ दूर चले गये, तो (तुम्हारी) उस (विरहिणी नायिका) की साँस कमल की कली बन गई है, मुख कमल हो गया है (अर्थात् रात में कमल की तरह बन्द हो गया है)। कामदेव क्षीरसागर बन गया है (जिसमें वह डूब रही है), और आँखे कुछ-कुछ चन्द्रकान्ति-सी बन गई हैं। १।

(- अज्ञात कवि)

अम्भोरुहं वदनमम्बकमिन्दुकान्तः
पाथोनिधिः कुसुमचापभृतो विकारः।
प्रादुर्बभूव सुभग त्वयि दूरसंस्थे
चण्डालचन्द्रधवलासु निशासु तस्याः।।२।।

चण्डालचन्द्रस्य।

हे सुदर्शन ! चण्डाल[1] चन्द्रमा की समुज्ज्वल रातों में जब तुम (उससे) दूर थे, (उस समय) पुष्पधन्वा कामदेव ने (उसमें जो) विकार उत्पन्न किया, उससे उसका कमलमुख (शिव की तीसरी) आँख (के सदृश दाहक) हो गया और चन्द्रकान्त (मणि) समुद्र-सी (भयावह) हो गई। २।

(-चण्डालचन्द्र)

तापोऽन्तः प्रसृतिंपचः प्रचयवान्वाष्पः प्रणालोचितः
श्वासा नर्तितदीपवर्तिलतिकाः पाण्डिम्नि मग्नं वपुः।
किं चान्यत्कथयामि रात्रिमखिलां त्वद्वर्त्मवातायने
हस्तच्छन्ननिरुद्धचन्द्रमहसस्तस्याः स्थितिर्वर्तते।।३।।

राजशेखरस्य।

(उस विरहिणी नायिका) के भीतर जलन इतनी तीव्र है कि उसमें दो मुट्ठी (अनाज) पकाया जा सकता है। (उसकी) आँखों से आँसुओं के पनाले (बहने लगे) हैं। साँसें दिये की काँपती (-बुझती) लौ तथा लता की तरह (अस्थिर) हैं। शरीर पीलेपन में डूब गया है। उसकी अवस्था के विषय में अधिक क्या कहूँ ! बस पूरी रात वह तुम्हारी गली की ओर (खुलने वाली) खिड़की पर, हाथ से चन्द्रमा की किरणों को हटाती हुई, खड़ी रहती है। ३।

बाष्पैर्निष्पतयालुभिः कलुषिता गण्डस्थली चिन्तया
चेतः कातरितं तरङ्गितमुरः श्वासोर्मिभिः पीवरैः।
इत्थं त्वद्विरहे तदीयविपदं देवी त्रियामैव वा
तल्पं वा परितापखिन्नमथवा जानाति पुष्पायुधः।।४।।

शरणस्य।

निरन्तर बहते हुए आँसुओं से (उस विरहिणी के) कपोल मलिन हो गये हैं। (उसका) मन चिन्ता से कातर है। (उसकी) लम्बी-लम्बी श्वास-तरंगों से वक्ष (रूपी समुद्र) लहरा रहा है अर्थात् उठ-गिर रहा है। इस प्रकार तुम्हारे वियोग में उसकी विपत्ति, सन्ताप या खिन्नता को या तो देवी रजनी जानती है, या (नायिका की) शय्या जानती है अथवा स्वयं कुसुमधन्वा भगवान् कामदेव जानते हैं। ४।

(- शरण)

---

१. पद्य की चतुर्थ पंक्ति में कवि ने बड़ी कुशलता से अपने नाम का समावेश कर दिया है। बाद में तो, यह हिन्दी इत्यादि भाषाओं में एक प्रमुख प्रवृत्ति ही बन गई। -अनु.

निष्पत्रं सरसीरुहां वनमिदं निश्चन्दना मेदिनी
निष्पङ्कानि पयांस्यपल्लवपुटा वृक्षाः सखीभिः कृताः।
नीयन्ते सुभग त्वया रहितया सोत्कण्ठकोकीकुला-
क्रन्दाकर्णनजागरूककुमुदामोदास्तया रात्रयः।।५।।

कस्यचित्।

अरे सुदर्शन ! (तुम्हारे वियोग में व्याकुल उस विरहिणी की वेदना-शान्ति के लिए उसकी) सखियों ने कमल वनों को पत्र-रहित, वसुधा को चन्दनरहित, जलाशयों और नदियों को पंकरहित तथा वृक्षों को पल्लवरहित कर डाला है। (फिर भी) उत्कण्ठा से युक्त चक्रवाकों के करुण क्रन्दन को सुनकर जगे (-खिले) हुए कुमुदों की सुगन्ध से सराबोर रातों को वह तुम्हारे बिना (ही) बिताती है। ५।

(- अज्ञात कवि)

३७. वासकसज्जा

तल्पं कल्पितमेव कल्पयति सा भूयस्तनुं मण्डितां
भूयो मण्डयति स्वयं रतिपतेरङ्गीकरोत्यर्चनाम्।
गच्छन्त्यां निशि मन्यते क्षतिमिव द्वारं चिरं सेवते
लीलावेश्मनि सा करोति मदनक्लान्ता वराकी न किम्।।१।।

आचार्यगोपीकस्य।

३७. वासकसज्जा

क्रीड़ागृह में, कामवेदना से छटपटाती हुई वह बेचारी (नायिका) क्या-क्या नहीं करती! बिछे हुए बिस्तर को फिर से बिछाती है। श्रृंगार से प्रसाधित शरीर का प्रसाधन वह पुनः पुनः करती है। कामदेव के पूजन के लिए (सर्दव) तैयार रहती है। रात का बीतना उसे कष्टप्रद लगता है, और द्वार पर वह देर तक खड़ी रहती है। १।

(- आचार्यगोपीक)

दृष्ट्वा दर्पणमण्डले निजमुखं भूषां मनोहारिणीं
दीपार्चिःकपिशं च मोहनगृहं त्रस्यत्कुरङ्गीदृशा।

एवं नौ सुरतं भविष्यति चिरादद्येति सानन्दया
मन्दं कान्तदिदृक्षयातिललितं हारे दृगारोपिता।।२।।

रुद्रटस्य।

भयभीत हरिणी के सदृश दृष्टि वाली (वह नायिका) दर्पण-समूह में अपने मुख और आकर्षक वेश-विन्यास को देखकर तथा दीपक के मन्द प्रकाश में प्रकाशित क्रीड़ा-गृह को देखकर, प्रसन्नतापूर्वक यह सोचती हुई कि 'इसी प्रकार, चिरकाल के पश्चात् आज हम दोनों की रतिक्रीड़ा होगी', प्रियतम को देखने की लालसा से, (अपने) अत्यन्त सुन्दर नेत्रों को धीरे-धीरे द्वार पर टिका देती है। २।

(-रुद्रट)

अलसवलितैः प्रेमार्द्रार्द्रैर्मुहुर्मुकुलीकृतैः
क्षणमभिमुखैर्लज्जालोलैर्निमेषपराङ्मुखैः।
हृदयनिहितं भावाकूतं वमद्भिरिवेक्षणैः
कथय सुकृती कोऽयं मुग्धे त्वयाद्य विलोक्यते।।३।।

अमरोः।

'अरी भोली बालिके ! बोलो अलसाई (तथा इधर-उधर) घूमती हुई, प्रेमासिक्त, बार-बार मुँदती हुई, क्षण भर के लिए सम्मुखस्थ, लाज से चंचल, अपलक तथा हार्दिक भावना की अभिव्यक्ति करती हुई आँखों से तुम किस सौभाग्यशाली (पुण्यकर्मा) पुरुष की प्रतीक्षा आज कर रही हो ?' ३।

(-अमरु)

अङ्गेष्वाभरणं तनोति बहुशः पत्रेऽपि सञ्चारिणि
प्राप्तं त्वां परिशङ्कते वितनुते शय्यां चिरं ध्यायति।
इत्याकल्पविकल्पतल्परचनासंकल्पलीलाशत-
व्यासक्तापि विना त्वया वरतनुर्नैषा निशां नेष्यति।।४।।

जयदेवस्य।

'अंगों में और संचरण करती पत्र-रचना पर भी यह बहुत बार आभूषणों को फैलाती है। तुम (जब) मिल जाते हो, तो शंका करती है। बिस्तर को बिछाती है और देर तक ध्यान करती रहती है। इस प्रकार, सैकड़ों प्रकार के आकल्पों, विकल्पों, शय्या-रचना के प्रकारों, संकल्पों और क्रीड़ाओं में यद्यपि यह फँसी है, फिर भी यह सुन्दरी नायिका तुम्हारे बिना रात नहीं बिताएगी!' ४।

(-जयदेव)

अरतिरियमुपैति मां न निद्रा गणयति तस्य गुणान्मनो न दोषान्।
विरमति रजनी न संगमाशा व्रजति तनुस्तनुतां न चानुरागः।।५।।

प्रवरसेनस्य।

'बेचैनी तो मेरे पास आती है, लेकिन नींद नहीं आती। मन उस (प्रेमी) के गुणों को तो गिनता है, किन्तु दोषों को नहीं गिनता है। रात तो विराम लेती है, लेकिन (प्रिय) मिलन की आशा नहीं। शरीर तो क्षीण होता है, किन्तु प्रेम नहीं क्षीण होता है।' ५।

(- प्रवर सेन)

३८. स्वाधीनभर्तृका

लिखति कुचयोः पत्रं कण्ठे नियोजयति स्रजं
तिलकमलिके कुर्वन्नारादुदस्यति कुन्तलान्।
इति चटुशतैर्वारं वारं प्रियां परितः स्पृश-
न्विरहविधुरो नास्याः पार्श्वं विमुञ्चति वल्लभः।।१।।

रुद्रटस्य।

३८. स्वाधीनपतिवाली (नायिका)

(पहले) विरह से व्याकुल रह चुका प्रेमी (प्रेमिका के) स्तनों पर पत्र-रचना अंकित करता है। गले में मालाएँ पहनाता है; मस्तक पर बिन्दी लगाते हुए पास से बालों की (लट को) ऊपर उठाता है। इस प्रकार, सैकड़ों प्रकार से स्पर्शपूर्वक प्रिया के प्रसादन के कामों में संलग्न वह (अब) उसके पास से नहीं हटता। १।

(- रुद्रट)

स्वामिन्भङ्गुरयालकं सतिलकं भालं विलासिन्कुरु
प्राणेश त्रुटितं पयोधरतटे हारं पुनर्योजय।
इत्युक्त्वा सुरतावसानसमये व्याघूर्णमानेक्षणा
स्पृष्टा तेन तथैव जातपुलका प्राप्ता पुनर्मोहनम्।।२।।

तस्यैव।

'विलासप्रिय स्वामी ! (मेरे) बालों को जरा सँवार दो; माथे पर बिन्दी लगा दो। प्राणनाथ ! मेरे वक्षःस्थल पर हार टूट गया है, उसे फिर से जोड़ दो- इस प्रकार संभोग

के समाप्त होने पर बोलती हुई तथा चतुर्दिक आँखें नचाती हुई नायिका का नायक ने जैसे ही स्पर्श किया, उसी समय प्रसन्न होकर वह (पुनः संभोग के लिए) सम्मोहित हो गई। २।

(- वही)

यावकं तरुणपङ्कजप्रभे योषितश्चरणपङ्कजद्वये।
तुल्यरागमपि सन्यपातयच्चाटुमात्रकरणप्रयोजनः।।३।।

कस्यचित्।

(किसी) युवती स्त्री के, तरुण कमलों की प्रभा वाले चरणकमलयुग्म यद्यपि पहले से ही महावर के समान लाल-लाल थे (और उनमें महावर लगाने की कोई आवश्यकता नहीं थी), फिर भी उस (नायक) ने केवल प्रिया को प्रसन्न करने के लिए (उसके) पैरों में महावर लगा दी। ३।

(- अज्ञात कवि)

एतांस्ते भ्रमरौघनीलकुटिलान्बध्नामि किं कुन्तला-
न्किं न्यस्यामि मधूकपाण्डुमधुरे गण्डेऽत्र पत्रावलीम्।
किं चास्मिन्व्यपनीय बन्धनमिदं पङ्केरुहाणां दल-
त्कोषश्रीमुषि चर्म चित्रहरिणस्यारोपयामि स्तने।।४।।

सूर्यधरस्य।

'(हे सुन्दरि !) क्या मैं (तुम्हारे) इन भ्रमरावली के सदृश काले-काले तथा घुँघराले केशों को बाँधू ? अथवा (तुम्हारे) महुआ के सदृश गौरवर्ण तथा माधुर्ययुक्त कपोलों पर पत्र-रचना अङ्कित करूँ ? या कमलों के उन्मुक्त कोश की शोभा को हर लेने वाले (तुम्हारे इस) स्तन पर (पहले से बँधे) इस (अशोभन) बन्धन को हटाकर, उस पर हरिण के चित्रित चर्म को सजा दूँ ?' ४।

(- सूर्यधर)

अगणितगुरुर्याग्वालोलः पदान्तसदातिथिः
समयमविदन्मुग्धः कालासहो रतिलम्पटः।
कृतककुपितं हस्ताघातं त्रपारुदितं हठा-
दपरिगणयन्लज्जायां मां निमज्जयति प्रियः।।५।।

आचार्यगोपीकस्य।

मेरा वह प्रेमी मुझे लज्जा में डूबो देता है, जो गुरुजनों की परवाह नहीं करता, (रति) याचना से चंचल रहता है, सदैव मेरे तलवों में पड़ा रहता है, (संभोग में) समय का ध्यान नहीं रखता, प्रतीक्षा नहीं कर पाता और रतिक्रिया के लिए (सदैव) लालायित रहता है। लाज से रोती हुई (जब मैं उस पर बनावटी रोष से हाथ चला देती हूँ, तो वह उसकी भी परवाह नहीं करता। ५।

(- आचार्यगोपीक)

३८. विप्रलब्धा

दृष्टोऽयं विषवत्पुरा परिजनो दृष्टायतिर्वारय-
न्पौर्वापर्यविदां त्वया न हि कृताः कर्णे सखीनां गिरः।
हस्ते चन्द्रमिवावतार्य सरले धूर्तेन धिग्वञ्चिता
तत्किं रोदिषि किं विषीदसि किमुन्निद्रासि किं दूयसे।।१।।

कस्यचित्।

३९. वंचिता (नायिका)

'इस सेवक को तो (घर में) प्रवेश करते देखकर पहले (ही) सखियों ने विष की तरह देखा था (और घर में रहने से) मना कर दिया था। लेकिन तुमने आगा-पीछा समझने वाली सखियों की बात को सुना ही नहीं। अरी भोली ! उस धूर्त ने (पहले तो अपने) हाथ पर (मानों) चन्द्रमा को उतारकर (तुम्हें फँसा लिया और बांद में) धोखा दे दिया। बड़े अफसोस की बात है (जो तुमने उस पर भरोसा कर लिया) ! (जब पहले तुमने हम लोगों की चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया) तो अब क्यों रो रही हो ? क्यों विषाद कर रही हो ? क्यों उनींदी हो ? और क्यों दुःख कर रही हो ?' १।

(- अज्ञात कवि)

ज्ञातं ज्ञातिजनैः प्रघुष्टमयशो दूरं गता धीरता
त्यक्ता ह्रीः प्रतिपादितोप्यविनयः साध्वीपदं प्रोज्झितम्।
लुप्ता चोभयलोकसाधुपदवी दत्तः कलङ्कः कुले
भूयो दूति किमन्यदस्ति यदसावद्यापि नायच्छति।।२।।

कस्यचित्।

(कोई संन्यासिनी स्त्री भ्रष्ट हो गई। उसकी दूती से परिवार वालों का कथन-)

'अरी दूती ! (सभी) सगे-सम्बन्धी जान गये, बदनामी फैल गई। धैर्य दूर चला गया। लज्जा का उसने त्याग कर दिया। अशिष्ट व्यवहार भी किया। 'साध्वी' के पवित्र पद का उसने त्याग कर दिया। अरी दूती ! यह बताओ, कि अब और ऐसी क्या (सजा बची है, जो यह हम लोगों को दे रही है ?' २।

(- अज्ञात कवि)

सखि स विजितो लीलाद्यूते कयापि परस्त्रिया
पणितमभवत्ताभ्यां तस्मिन्निशाललितं ध्रुवम्।
कथमितरथा शेफालीषु स्खलत्कुसुमास्वपि
स्थितवति नभोमध्येपीन्दौ प्रियेण विलम्ब्यते।।३।।

रुद्रटस्य।

'अरी सखी ! (मेरे) उस (प्रेमी) को निश्चित ही किसी पराई औरत ने द्यूत-क्रीड़ा में जीत लिया होगा, और उनमें रात भर रति-क्रीड़ा करने की शर्त लगी होगी-अन्यथा कहीं ऐसा हो सकता था कि जब शेफाली के फूल झर रहे हों और चन्द्रमा मध्याकाश में पहुँच गया हो, तो मेरा वह प्रेमी वापस लौटने में देर लगाता ? ३।

(- रुद्रट)

सोत्कण्ठं रुदितं सकम्पमसकृद्ध्यातं सवाष्पं चिरं
चक्षुर्दिक्षु निवेशितं सकरुणं सख्या समं जल्पितम्।
नागच्छत्युचितेऽपि वासकविधौ कान्ते समुद्विग्नया
तत्तत्किंचिदनुष्ठितं मृगदृशा नो यत्र वाचां गतिः।।४।।

तस्यैव।

वस्त्र-सज्जा सम्पन्न हो चुकने पर भी, जब उसका प्रियतम नहीं आया, तो वह उद्विग्न नायिका उत्कण्ठापूर्वक रो पड़ी। काँपती हुई वह देर तक उसके ध्यान में डूबी रही। उसकी (आँखों में) आँसू आ गये। सभी दिशाओं में वह आँखे गड़ाये रही। करुणापूर्वक सखी के सामने प्रलाप करती रही। उस मृगनयनी ने कुछ चेष्टाएँ तो ऐसी की, उनका वर्णन शब्दों से भी नहीं हो सकता। ४।

(- वही)

यत्संकेतगृहं प्रियेण गदितं संप्रेष्य दूतीं स्वयं
तच्छून्यं सुचिरं निषेव्य सुदृशा पश्चाच्च भग्नाशया।
स्थानोपासनसूचनाय विगलत्सान्द्राञ्जनैरश्रुभि-
र्भूमावक्षरमालिकेव लिखिता दीर्घं रुदत्या शनैः।।५।।

तस्यैव।

प्रेमी ने स्वयं दूती को भेजकर, जिस मिलन-स्थान की सूचना दी थी (वहाँ जब वह नहीं आया) तो उस सूने संकेत स्थान पर देर तक रहकर, वह सुन्दर आँखों वाली निराश नायिका, प्रेमी को यह सूचना देने के लिए कि उसने उस स्थान पर उसकी सुदीर्घ प्रतीक्षा की, देर तक धीरे-धीरे रोती हुई, भूमि पर काजलमिश्रित आँसुओं से वर्णमाला-सी लिखती रही। ५।

(-वही)

४०. कलहान्तरिता

कर्णे यन्न कृतं सखीजनवचो यन्नादृता बान्धवा
यत्पादे निपतन्नपि प्रियतमः कर्णोत्पलेनाहतः।
तेनेन्दुर्दहनायते मलयजालेपः स्फुलिङ्गायते
रात्रिः कल्पशतायते विसलताहारोऽपि भारायते।।१।।

अमरोः।

४०. कलहान्तरिता

सखियों की बातों को मैंने ध्यान से नहीं सुना। भाई-बन्धुओं का भी आदर नहीं किया। पैरों पर पड़े प्रियतम पर कान में लगे कमल से प्रहार किया। इन्हीं कारणों से चन्द्रमा मुझे आग की तरह जला रहा है। चन्दन का लेप चिनगारियों की तरह लग रहा है। रात इतनी लम्बी लगती है जैसे सैकड़ों कल्पों की हो। कमलिनी का हार भी (अब) बोझ बन गया है। १।

(- अमरु)

मया तावद्गोत्रस्खलितहतकोपान्तरितया
न रुद्धो निर्गच्छन्नयमतिविलक्षः प्रियतमः।
अयं त्वाकूतज्ञः परिणतिपरामर्शकुशलः
सखीलोकोऽप्यासील्लिखित इव चित्रेण किमिदम्।।२।।

विम्बोकस्य।

(पति के द्वारा) नामोच्चारण में की गई भूल (-अर्थात् मेरे सामने दूसरी स्त्री का नाम ले लेने) के कारण क्रुद्ध होकर मैंने घर से निकलते हुए पति को नहीं रोका (यद्यपि) वह (बेचारा अपनी भूल के कारण) बहुत ही लज्जित था और (अपनी) इन सखियों (को क्या कहूँ ? जो वनती तो वहुत ही समझदार हैं, यहाँ तक कि दूसरे के) मन की बात को भी ताड़ लेने वाली तथा (काम के) परिणाम के विषय में राय देने में बहुत कुशल हैं, लेकिन ये भी (उस समय) चित्रलिखित-सी खड़ी रहीं। (अपने दुर्भाग्य के अतिरिक्त) इसे (और) क्या (कहूँ ?) २।

(- विम्बोक)

पदोपान्ते कान्ते लुठति तमनादृत्य भवनाद्
द्रुतं निष्क्रामन्त्या किमपि न मयालोचितमभूत्।
अये श्रोणीभार स्तनभर युवां निर्भरगुरू
भवद्भ्यामप्यत्र क्षणमपि विलम्बो न विहितः।।३।।

गङ्गाधरस्य।

पैरों के पास लोटते हुए पति को अनादर पूर्वक जल्दी से घर से (बाहर) निकालते हुए मैंने कुछ भी विचार तो नहीं किया ! अरे श्रेणीगत भार ! ओ स्तन-भार ! तुम दोनों तो मेरे विश्वस्त गुरुजन हो, तुम लोगों ने भी उस समय तनिक विलम्ब नहीं किया ! ३।

(- गंगाधर)

विशेष - अपनी भारी कमर और बोझिल स्तनों के कारण नायिका को प्रायः उठने में देर लगती थी, लेकिन पति के साथ दुर्व्यवहार के समय यह देर भी नहीं लगी - यही उपालम्भ है।

यत्पादप्रणतः प्रियः परुषया वाचा स निर्वाहितो
यत्सख्या न कृतं वचो जडतया यन्मन्युरेको धृतः।
पापस्यास्य फलं तदेतदधुना यच्चन्दनेन्दुद्युति-
प्रालेयाम्बुसमीरपङ्कजविसैर्गात्रं मुहुर्दह्यते।।४।।

रुद्रटस्य।

पैरों पर पड़े हुए पति से कड़ी बातें कहकर मैंने उसे निकाल दिया, सखियों की बात भी नहीं मानी - केवल अपने क्रोध को ही लिये (बैठी) रही। इसी पाप का यह फल है कि अब चन्दन, चाँदनी, तुषारकण, पवन, कमल और मृणाल- ये सभी मेरे अंगों को बार-बार जला रहे हैं। ४।

(- रुद्रट)

दहति विरहेष्वङ्गानीर्ष्यां करोति समागमे
हरति हृदयं दृष्टः स्पृष्टः करोत्यवशां तनुम्।
क्षणमपि सुखं यस्मिन्प्राप्ते गते च न लभ्यते
किमपरमतश्चित्रं यन्मे तथापि स वल्लभः।।५।।

अमरोः।

मेरा वह प्रेमी वियोग के समय अंगों को जलाता है, मिलने पर ईर्ष्याभाव प्रकट करता है, दिखाई देने पर बरबस हृदय को आकृष्ट कर लेता है, छूने पर शरीर को प्रेममयी (विह्वलता से) विवश कर देता है। अरे, उसके मिलने या चले जाने पर, दोनों ही स्थितियों में, मुझे क्षण भर सुख नहीं मिलता। और उस पर आश्चर्य है कि यह सब होने पर (भी) वह मुझे प्रिय है। ५।

(- अमरु)

४१. कलहान्तरितावाक्यम्

सखि स सुभगो मन्दस्नेहो मयीति न मे व्यथा
विधिविरचितं यस्मात्सर्वो जनः सुखमुश्नुते।
मम तु मनसः संतापोयं जने विमुखेऽपि य-
त्कथमपि हतव्रीडं चेतो च याति विरागिताम्।।१।।

अमरोः।

४१. कलहान्तरिता (नायिका) के वचन

अरी सखी ! मेरी पीड़ा यह नहीं है कि उस सुन्दर (युवक) का मेरे प्रति प्रेम कम है, क्योंकि सभी को विधाता के विधान के अनुसार (ही) सुख (या दुःख) मिलता है। मेरे मन का सन्ताप (तो) यह है कि (प्रिय) जन के विमुख होने पर भी मेरा निर्लज्ज मन, किसी प्रकार उसके प्रति विरक्त नहीं हो पाता। १।

(- अमरु)

निश्वासा वदनं दहन्ति हृदयं निर्मूलमुन्मूल्यते
निद्रा नैति न दृश्यते प्रियमुखं नक्तंदिवं रुद्यते।

अङ्गं शोषमुपैति पादपतितः प्रेयात्र संभाव्यते
सख्यः कं गुणमाकलय्य दयिते मानं वयं कारिताः।।२।।

कस्यचित्।

निःश्वास मुख को जला रहे हैं, हृदय तो जैसे मूल से ही निकला पड़ रहा है, नींद आती नहीं। प्रेमी का मुख दिन-रात रुलाता रहता है। अंग सूख रहे हैं, और अभी इसकी कोई सम्भावना भी नहीं दिखाई देती कि प्रेमी आकर, (मेरे) पैरों पर गिरकर (मुझे मनाएगा)। अरी सखियों ! तुमने किस लाभ की आशा में मुझसे, प्रेमी के प्रति मान कराया था ? २।

(- अज्ञात कवि)

ज्योतिर्भ्यस्तदिदं तमः समुदितं जातोऽयमद्भ्यः शिखी
पीयूषादिदमुत्थितं विषमयं छायाप्तजन्मातपः।
कोनामास्य विधिः प्रशान्तिषु भवेद्गाढं द्रढीयानयं
ग्रन्थिर्यत्प्रियतोऽपि विप्रियमिदं सख्यः कृतं सान्त्वनैः।।३।।

कस्यचित्।

ज्योति-निकर से अन्धकार निकल रहा है, पानी से आग पैदा हो रही है, अमृत से विष आविर्भूत हो रहा है, और छाया से धूप निकल रही है। (अब) इस (-प्रेम की पीड़ा-) के शमन के लिए अन्य कौन-सा नया उपाय काम में लाया जाये ? (क्योंकि जितने भी उपाय थे, सभी प्रयोग करने पर विपरीत फल दे रहे हैं।) और यह (मान एवं कलह की) गाँठ (अभी भी) मजबूत दिख रही है। यह तो प्रिय से भी अधिक प्रिय बन गई है ! अरी सखियों ! अब (अपने ये) सान्त्वना के वचन बन्द करो (-इनसे अब कोई लाभ होने वाला नहीं है।) ३।

तल्लाक्षालिपिलाञ्छितादपि मुखादिन्दुः स किं दुःसहः
संतापाय पिकध्वनिः किमु मृषावाचां प्रपञ्चादपि।
किं तस्य प्रणयावधीरणपराधीनादपि प्रेक्षणा-
दुन्मीलन्ति सखि प्रसूनधनुषो मर्मच्छिदः सायकाः।।४।।

जलचन्द्रस्य।

(दूसरी स्त्री की महावरगत) लाक्षा के अक्षरों में अंकित कलंक वाले उस (प्रेमी-) मुख से भी क्या चन्द्रमा अधिक असह्य है ? झूठी बातों के प्रपंच से भी क्या कोयल की कूक

अधिक सन्तापप्रद है ? अरी सखी ! प्रणय का तिरस्कार करने के कारण उस प्रेमी की पराधीन चितवन से भी क्या पुष्पधन्वा कामदेव के बाण अधिक मर्मवेधी हैं ? ४।

(- जलचन्द्र)

कथाभिर्देशानां कथमपि च कालेन बहुना
समायाते कान्ते सखि रजनिरर्धं गतवती।
ततो यावल्लीलाकलहकुपितास्मि प्रियतमे
सपत्नीव प्राची दिगियमभवत्तावदरुणा।।५।।

कस्यचित्।

अरी सखी ! प्रियतम का समागम होने पर, बहुत देर तक तो वे देश-देशान्तर की कथाएँ (कहते रहे) और इसी में आधी रात बीत गई। (जब वे चुप हुए) तो मैं बनावटी कलह के रोष से भर गई, (और जब मेरा रोष समाप्त हुआ, तभी, मेरी सौत की तरह यह पूर्वदिशा लाल-पीली हो गई। ५।

(- अज्ञात कवि)

विशेष- अभिप्राय यह कि अरुणोदय हो गया और सवेरे-सवेरे रतिक्रीड़ा के वर्जित होने के कारण नायिका मिलन का सम्पूर्ण सुख न पा सकी।

४२. कलहान्तरितासखीवचनम्

अनालोच्य प्रेम्णः परिणतिमनादृत्य सुहृद-
स्त्वया कान्ते मानः किमिति सरले प्रेयसि कृतः।
समाकृष्टा ह्येते विरहदहनोड्डामरशिखाः
स्वहस्तेनाङ्गारास्तदलमधुनारण्यरुदितैः।।१।।

४२. कलहान्तरिता नायिका की सखी के वचन

तुमने बिना प्रेम के परिणाम की समीक्षा किये और सखियों का अनादर करके, उस सीधे और कमनीय प्रेमी से भी क्यों मान कर लिया ? (इसके कारण) तुमने स्वयं ही अपने हाथ पर भयावह लपटों वाली विरहाग्नि के अंगारे रख लिये हैं। अब व्यर्थ में अरण्यरोदन करने से क्या (लाभ है ?) १।

मया प्रागेवोक्तं कलहवति मा त्याजय गुणं
भयेऽस्तु प्रेयांस्ते स्वकरवशगं मुञ्चिसि मुधा।
अवाप्तो वैलक्ष्यं शर इव पुनर्नैति तदयं
स्वयं गत्वानेयः प्रियसखि कराकर्षविधिना।।२।।

आचार्यगोपीकस्य।

अरी कलहकारिणी (सखी !) मैंने तो तुमसे पहले ही कहा था कि भय की स्थिति में भी गुण (- प्रेमी के गुण, रस्सी) का परित्याग मत करो। अपने प्रेमी को बना रहने दो। हाथ में वशीभूत होकर आये हुए (प्रेमी) को (क्यों) व्यर्थ में खो रही हो ? (लेकिन तुमने मेरी बात न मानकर उससे कलह कर ली और) वह लज्जित होकर (चला गया। अव वह धनुष से) छूटे हुए बाण की तरह अपने-आप वापस नहीं लौटेगा। इसलिए स्वयं ही जाकर, उसे हाथ पकड़कर मनाते हुए ले आओ। २।

(- आचार्यगोपीक)

श्रवसि न कृतास्ते तावन्तः सखीवचनक्रमा-
श्चरणपतितोऽङ्गुष्ठाग्रेणाप्ययं न हतो जनः।
कठिनहृदये मिथ्या मौनव्रतव्यसनादयं
परिजनपरित्यागोपायो न मानपरिग्रहः।।३।।

कस्यचित्।

अरी कठोर हृदय वाली सखी ! सखियों के वचनों को तुमने ध्यान से नहीं सुना। (अपने) पैरों में पड़े हुए उस (प्रेमी) पर तुमने अंगूठे के आगे के भाग से भी प्रहार नहीं किया। (यह सही है, लेकिन उससे तुम ठीक से बोली भी तो नहीं)। झूठे ही मौन व्रत रखने की आदत से, परिजनों का परित्याग तो हो जाता है, किन्तु मान की रक्षा नहीं हो पाती। ३।

(- अज्ञात कवि)

जघनमुन्नतमाकुलमेखलं मुखमपाङ्गविसर्पिततारकम्।
इदमपास्य गतो यदि निर्घृणो ननु वरोरु स एव हि वञ्चितः।।४।।

कस्यचित्।

अरी सुन्दर जाँघों वाली सखी ! खुली हुई करधनी से उभरे हुए जघन भाग तथा फैली हुई पुतलियों वाले कटाक्षों से युक्त मुख को छोड़कर, यदि वह (तुम्हारा प्रेमी) चला गया,

तो (इसमें तुम्हारी कोई हानि नहीं है), वही (इन सुन्दर अंगों के उपभोग से) वंचित हो गया ! ४।

(- अज्ञात कवि)

सखि न गणिता मानोन्मेषात्प्रियप्रणयक्षतिः
परमिह सखीवर्गस्येदं वचो न पुरस्कृतम्।
उदयशिखरारूढेनायं कलानिधिना बलात्
किमिति शिथिलो मानग्रन्थिः करैर्न करिष्यते।।५।।

अरी सखी ! मानभाव के उभरने से, प्रेमी के प्रेम की हानि का (तुमने) आकलन नहीं किया और सखियों की बातों को भी अपने सामने नहीं रखा। (अब) उदयाचल पर आरूढ़ यह कलानिधि चन्द्रमा भी क्या अपनी किरणों से बलपूर्वक (तुम्हारे) मान की गाँठ को ढीली नहीं करेगा ? ५।

(- अज्ञात कवि)

४३. गोत्रस्खलितम्

पुरस्तस्या गोत्रस्खलनचकितोऽहं नतमुखः
प्रवृत्तो वैलक्ष्यात्किमपि लिखितुं दैवहतकः।
स्फुटो रेखान्यासः कथमपि स तादृक् परिणतो
गता येन व्यक्तिं पुनरवयवैः सैव तरुणी![1]।।

४३. गोत्र-स्खलन

(नायिका के सामने भूल से उसकी सौत या अन्य स्त्री का नाम नायक के मुँह से निकल श्रृंगारशास्त्र में 'गोत्र स्खलन' माना जाता है।)

उस (नायिका) के सामने, नामोच्चारण में मुझसे त्रुटि हो गई (- भूल से मैंने दूसरी स्त्री का नाम ले लिया !) इससे घबड़ाकर तथा लज्जा से शिर झुकाकर मैं अभागा कुछ लिखने में लग गया। मैं, जिस प्रकार से (अनजाने ही) रेखाएँ बनाता जा रहा था, उससे (न जाने) कैसे वह (रेखाचित्र) उसी (तरुणी) के कोमल अंगों के रूप में परिणत हो गया- अभिप्राय यह कि उन रेखाओं से उसी (तरुणी) की आकृति बन गई, जिसका नाम मेरे मुँह से भूल से निकल गया था ! १।

(-अमरु)'

१. अमरुशतकम्, श्लोक-संख्या ५१, (चौ.स.सी., वाराणसी, संस्करण-१९६६)

कृथा मैवं चेतः कथमपि मनागस्खलदितः
प्रमादाद्वाणीयं किमिह करवाणि प्रणयिनि।
वृथैवायं ग्रन्थिर्झणझणितमञ्जीररणितं
ततस्त्वत्पादाब्जं यदिदमवतंसो भवतु मे।।२।।

नरसिंहस्य।

मेरी वाणी प्रमादवश थोड़ा-सा लड़खड़ा गई (-भूल से मेरे मुँह से दूसरी स्त्री का नाम निकल गया !), लेकिन तुम अपने मन में कुछ अन्यथा न समझना। (तुम्हारे मन में) यह जो गाँठ पड़ गई है (कि मैं किसी दूसरी स्त्रीको चाहता हूँ), वह व्यर्थ है। और यदि ऐसा हो (अर्थात् किसी दूसरी स्त्री के प्रति मेरा प्रेम हो) तो मंजीर की झनकार की तरह तुम्हारा चरण-कमल शिरोभूषण (की तरह) मेरे शिर पर (निःसंकोच पड़े- मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी)। २।

(- नरसिंह)

अर्द्धोक्ते भयमागतोऽसि किमिदं कण्ठश्च किं गद्गद-
श्चाटोरस्य न च क्षणोऽयमनुपक्षिप्तेयमास्तां कथा।
ब्रूहि प्रस्तुतवस्तु संप्रति महत्कर्णे सखीनां सुखं
तृप्तिर्निर्भरमेभिरक्षरपदैः प्रागेव मे संभृता।।३।।

अभिनन्दस्य।

तुम तो आधी बात बोलते ही डर गये। यह कैसी स्थिति है ? तुम्हारा गला क्यों भर्रा रहा है ? (मीठी-मीठी) खुशामदी बातों के लिए यह समय नहीं है। और यह बाहर की कहानी (हमारे बीच में) कैसे आ गई ? इसे यहीं रहने दो। अब तुम (मेरी) सखियों के बड़े-बड़े कानों में आराम से प्रासंगिक बात कहो। मैं तो तुम्हारे इन वचनों से पहले ही भरपूर अघा (तृप्त) गई हूँ! ३।

(- अभिनन्द)

कथमपि कृतप्रत्यासत्तौ प्रिये स्खलितोत्तरे
विरहकृशया कृत्वा व्याजं प्रकल्पितमश्रुतम्।
असहनसखीश्रोत्रप्राप्तिप्रमादससंभ्रमे
विचलितदृशा शून्ये गेहे समुच्छ्वसितं ततः।।४।।

कस्यचित्।

प्रेमी जब उत्तर देने में गड़बडी कर गया और कही हुई बात को किसी प्रकार वापस ले लिया, तो वियोग में कृश हो गई (नायिका) ने ऐसा बहाना बनाया, जैसे उसने उसकी बात को सुना ही न हो ! लेकिन जब घर में प्रमाद अथवा हड़बड़ीवश प्रेमी की बात सखी के कान में पड़ जाने की आशंका नहीं रही, तो उसकी आँखें विचलित हो गईं (- वह रो पड़ी) तथा वह लम्बी-लम्बी साँसें भरने लगी। ४।

(- अज्ञात कवि)

दूरादेत्य दृशा निवार्य च सखीरुत्क्षिप्तदोःकङ्कण-
श्रेणिः सप्रणया पिधाय नयनद्वन्द्वं तवावस्थिता।
ज्ञातासीति विपक्षनाम गदता संभाविता सा त्वया
जीवत्येव यदि त्वरां त्यज ननु त्वामेव याचिष्यते।।५।।

आचार्यगोपीकस्य।

वह दूर से आकर, सखियों को (इशारे से बोलने से) मना करती हुई, बाँहों के कंगनों को ऊपर उठाकर (ताकि उनसे आवाज न हो), प्रेमपूर्वक तुम्हारी आँखों को (पीछे से) बन्द करके खड़ी हो गई। तुमने उसकी सौत का नाम, अनुमान से लेकर कहा - 'पहचान लिया।' (अब) यदि वह जी रही है (तो उसे मनाने में) जल्दबाजी छोड़ो, वह (स्वयं तुमसे प्रेम-) याचना करेगी। ५।

(आचार्यगोपीक)

४४. मानिनी

बाले नाथ विमुञ्च मानिनि रुषं रोषान्मया किं कृतं
खेदोस्मासु न मेपराध्यति भवान्सर्वेपराधा मयि।
तत्किं रोदिषि गद्गदेन वचसा कस्याग्रतो रुद्यते
नन्वेतम्मम का तवास्मि दयिता नास्मीत्यतो रुद्यते।।१।।

अमरोः।

४४. मानिनी

'बालिके !'

- '(हा) स्वामी !'

'अरे मानिनी ! रोष को (अब) छोड़ दो!'

– 'रोष से मैने आपका (क्या) बिगाड़ लिया ?'

'हम पर तुम्हें खेद है ?'

– 'आपने हमारा क्या अपराध किया (जो हम आप पर खेद करें)। सारे अपराधों (का भार) तो मुझ पर ही है।'

'तव फिर भर्राये गले से क्यों रोती जा रही हो ?'

– '(आपके आगे न रोऊँ, तो फिर) किसके सामने रोऊँ ?'

'अच्छा (इसमें) मेरा ...'

– 'मैं आपकी हूँ ही कौन ?'

'प्रिया !'

– 'मैं (अब) आपकी प्रिया नहीं रह गई, इसीलिए तो रो रही हूँ। १।

(– अमरु)

एकत्रासनसंस्थितिः परिहृता प्रत्युद्गमाद्दूरत-
स्ताम्बूलानयनच्छलेन रभसाश्लेषोऽपि संविघ्नितः।
आलापोऽपि न मिश्रितः परिजनं व्यापारयन्त्या तया
कान्तं प्रत्युपचारतश्चतुरया कोपः कृतार्थीकृतः।।२।।

तस्यैव।

उस (मानिनी नायिका ने प्रिय के संग) एक ही आसन पर बैठना छोड़ दिया। जब वह आया, तो वह दूर उठकर खड़ी हो गई। ताम्बूल लाने के बहाने आकस्मिक आलिङ्गन में भी उसने विघ्न डाल दिया। नौकरों को काम में लगाती हुई वह संभाषण से भी बचती रही। इस प्रकार, प्रेमी का स्वागत-सत्कार करने के बहाने उस चतुरा नायिका ने (अन्ततः) अपने क्रोध को सार्थक कर ही लिया ! २।

(– वही)

आशङ्क्य प्रणतिं पटान्तपिहितौ पादौ करोत्यादरा-
द्व्याजेनागतमावृणोति हसितं स्पष्टं समुद्वीक्षते।
मय्यालापवति प्रकोपपिशुनं सख्या सहाभाषते
तन्व्यास्तिष्ठतु निर्भरप्रणयिता मानोऽपि रम्योदयः।।३।।

तस्यैव।

(मैं नायिका के पैरों पर) झुकने की चेष्टा करूँगा, इसकी आशंका पहले से ही करके

उसने आदर प्रकट करते हुए, अपने पैरों को कपड़े के छोर से ढक लिया। उसने (चेहरे पर) आई हँसी को भी बहाने से छिपा लिया। मैंने जब बातें करना प्रारम्भ किया, तो वह अपनी सखी के साथ बातें करने लगी। अरे, उस कृशाङ्गी (नायिका) का मानारम्भ भी रमणीय ही होता है। उसमें तो उसका भरपूर प्रेम निहित है। ऐसा मान (सदैव) बना रहे, (यही अच्छा है)। ३।

(– वही)

धूमायते मनसि मूर्छति चेष्टितेषु
संदीप्यते वपुषि चेतसि जाज्वलीति।
वक्त्रे परिस्फुरति वाचि विजृम्भतेऽस्याः
कान्तावमानजनितो बहुमानवह्निः।।४।।

कस्यचित्।

पति के द्वारा किये गये तिरस्कार से उत्पन्न इस (नायिका) की प्रबल मानाग्नि मन में धुआँ कर रही है (अर्थात् भीतर-ही-भीतर सुलग रही है)। कार्य-कलाप में (वह) दबी पड़ी है। शरीर में चमक रही है। चित्त में धधक रही है। मुख पर परिस्फुरित हो रही है और वाणी में प्रकट हो रही है। ४।

(– अज्ञात कवि)

वाष्पासारः कथयति भृशं गण्डयोः पाण्डिमानं
श्वासो भूम्ना स्तनकलसयोः पीनतामातनोति।
चित्तौत्सुक्यं किमपि कुरुते क्षाममङ्गं तदस्या-
स्तारुण्यस्य प्रसरमधिकं मन्युराविष्करोति।।५।।

कस्यचित्।

अश्रु-प्रवाह इस नायिका के कपोलों के पीलेपन को बरबस बतला रहा है। साँसें स्तन-पयोधरों की स्थूलता का विपुल विस्तार कर रही हैं। चित्त की उत्सुकता अंगों को कुछ क्षीण कर रही है और क्रोध तरुणाई की व्याप्ति को बढ़ा रहा है। ५।

(– अज्ञात कवि)

४५. उदात्तमानिनी

न मन्दो वक्त्रेन्दुः श्रयति न ललाटं कुटिलतां
न नेत्राब्जं रज्यत्यनुषजति न भ्रूरपि भिदाम्।

इदं तु प्रेयस्याः प्रथयति रुषोऽन्तर्विलसितं
शतेऽपि प्रश्नानां यदभिदुरमुद्रोऽधरपुटः ।।१।।

वैद्यधनस्य।

४५. उदात्त मानिनी

न तो मुखचन्द्र (की कान्ति) मन्द है; न मस्तक पर टेढ़ी-टेढ़ी (लकीरें) हैं; नेत्रकमलों में लाली भी नहीं है; (साथ ही) भौंहों में भी अन्तर नहीं है। यह तो प्रेयसी का भीतर-ही-भीतर रहने वाला शेष (-मान-) है, जिसमें सैकड़ों प्रश्न किये जाने पर भी अधरपुट की मुद्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता। १।

(- वैद्यधन)

ईर्ष्याप्रस्फुटिताधरोष्ठरुचिरं वक्त्रं न मे दर्शितं
साधिक्षेपपदा मनागपि गिरो न श्राविता मुग्धया।
मद्दोषैः सरसैः प्रतापितमनोवृत्त्यापि कोपोऽनया
काञ्च्या गाढ़तरावबद्धवसनग्रन्थ्या समावेशितः।।२।।

काश्मीरनारायणस्य।

(इस) मुग्धा (नायिका) ने न तो मुझे ईर्ष्या से प्रस्फुटित अधरों से युक्त (अपना) सुन्दर मुख दिखलाया, न आक्षेप करती हुई बातें ही सुनाई। मेरे सरस दोषों से इसकी मनोवृत्ति यद्यपि सन्तप्त हुई, किन्तु इसने (अपने) क्रोध को करधनी से कसकर बाँधी गई साड़ी की गाँठ में ही बाध लिया- (अर्थात् उसे बाहर प्रकट नहीं होने दिया)। २।

(- काश्मीरनारायण)

भ्रूभेदो न कृतः कृता मुखशशिच्छायापि नान्यादृशी
कालुष्येण न लम्भिताः कलगिरः कोपस्त्वतो लक्ष्यते।
यत्प्रागल्भ्यमपास्य सम्प्रति नवीभूतं पुनर्लज्जया
यच्चायं विनयादरः प्रणयितां मुक्त्वा महान्वर्तते।।३।।

कस्यचित्।

इस (नायिका) ने न तो भौंहे टेढ़ी कीं, न मुखचन्द्र की कान्ति में कोई परिवर्तन किया। इसके मधुर वचनों में भी कहीं कोई कलुष नहीं आने पाया। इसका क्रोध केवल

इतने से ही लक्षित होता है कि (इसकी) प्रगल्भता हट गई, फिर लज्जा से उसका नवीनीकरण हो गया। (साथ ही) प्रणयिभाव को छोड़कर, इसमें (अब) विनयपूर्वक बड़ा आदरभाव आ गया है। ३।

(- अज्ञात कवि)

आमृद्यन्ते श्वसितमरुतो यत्कुचोत्सेधकम्पै-
रन्तर्ध्यानाच्चुटति च दृशोर्यद्बहिर्लक्ष्यलाभः।
पक्ष्मोत्क्षेपव्यतिकरहतो यच्च वाष्पस्तदेते
भावाश्चण्डि त्रुटितहृदयं मन्युमावेदयन्ति।।४।।

कस्यचित्।

स्तनों के ऊपर उठने से होने वाले कम्पनों से श्वास वायु दबाई जा रही है; भीतर ध्यान लगाने से आँखों का बाह्य लक्ष्य-लाभ (का क्रम) टूट रहा है (अर्थात् भीतर ध्यान केन्द्रित होने से आँखें बाहरी वस्तुओं को नहीं देख पा रही है)। पलकें उठाने के कारण आँसू (भीतर-ही-भीतर) मर रहे हैं। अरे चण्डी (के समान इस समय उग्र रूप धारण करने वाली प्रिये) ! तुम्हारे टूटे हुए हृदय के क्रोध को (उपर्युक्त चेष्टाएँ) व्यक्त कर रही हैं। ४।

(- अज्ञात कवि)

यद्यपि श्रियमाधत्ते भूषणानादरस्तव।
तथाप्यन्तर्गतं मन्युमयं कथयतीव मे।।५।।

कस्यचित्।

यद्यपि तुम्हारे (द्वारा किया जा रहा) आभूषणों का यह तिरस्कार भी शोभायुक्त है, तथापि इससे तुम्हारे आन्तरिक क्रोध की अभिव्यक्ति तो हो ही रही है। ५।

४६. अनुरक्तमानिनी

बलतु तरला धृष्टा दृष्टिः खला सखि मेखला
स्खलतु कुचयोरुत्कम्पान्मे विदीर्यतु कञ्चुकम्।
तदपि न मया सम्भाव्योऽसौ पुनर्दयिते शठः
स्फुटति हृदयं मौनेनान्तर्न मे यदि तत्क्षणात्।।१।।

अमरोः।

४६. अनुरागयुक्ता मानिनी

अरी सखी ! भले ही (मेरी) चंचल और धृष्ट दृष्टि (इधर-उधर) घूमती रहती, दुष्ट करधनी खिसक जाती, स्तनों के उभार से कञ्चुक फट जाता, फिर भी मैं उस धूर्त प्रेमी से पुनः प्रेम न करती, यदि उसी क्षण मौन से मेरा हृदय भीतर-ही-भीतर फटने न लगता। १।

(- अमरु)

भ्रूभेदे रचितेऽपि दृष्टिरधिकं सोत्कण्ठमुद्वीक्षते
रुद्धायामपि वाचि सस्मितमिदं दग्धाननं जायते।
कार्कश्यं गमितेऽपि चेतसि तनूरोमाञ्चमालम्बते
दृष्टे निर्बहणं भविष्यति कथं मानस्य तस्मिञ्जने।।२।।

तस्यैव।

भौंहों को वक्र करने पर भी दृष्टि अधिक उत्कण्ठापूर्वक देखने लगती है, बोलना बन्द कर देने पर भी सन्तप्त मुख पर मुस्कान आ जाती है, मन में कठोरता लाने पर भी शरीर रोमाञ्चित हो जाता है। (जब अभी से यह हाल है तो) उस व्यक्ति को सम्मुख देख लेने पर, पता नहीं, मान का निर्वाह किस प्रकार होगा ? २।

(- वही)

भ्रूभेदो रचितश्चिरं नयनयोरभ्यस्तमामीलनं
रोद्धुं शिक्षितमादरेण हसितं मौनेऽभियोगः कृतः।
धैर्यं कर्तुमपि स्थिरीकृतमिदं चेतः कथञ्चिन्मया
बद्धो मानपरिग्रहे परिकरः सिद्धिस्तु दैवे स्थिता।।३।।

धर्म्मकीर्तेः।

(मैंने) देर तक भौंहों को टेढ़ा रखा, आँखों को बन्द रखने का अभ्यास किया, आदरयुक्त हँसी को रोकने की सीख ली, मौन रहने की साधना की, और किसी प्रकार मन में धैर्य बनाये रखने का भी निश्चय किया- इस प्रकार, मैंने (अपने समस्त) हाव-भावों को मान बनाये रखने के लिए सन्नद्ध कर रखा है, किन्तु इसमें (अन्तिम समय में अर्थात् प्रेमी के सामने पड़ने पर) सफलता तो भगवान् के ही हाथ में है। ३।

(- धर्मकीर्ति)

तद्वक्त्राभिमुखं विनमितं दृष्टिः कृता चान्यत-
स्तस्यालापकुतूहलाकुलतरे श्रोते निरुद्धे मया।
हस्ताभ्यामपि वारितः सपुलकः स्वेदोद्गमो गण्डयोः
सद्यः किं करवाणि यान्ति सहसा यत्कञ्चुके सन्धयः।।४।।

अमरोः।

उस (-नायक-) के सम्मुख होने पर (मैंने) अपने मुख को झुका लिया; दृष्टि दूसरी ओर कर ली। यद्यपि उसकी बातें खुलने के लिए कान बहुत उत्सुक थे, फिर भी मैंने उन्हें नियन्त्रित कर लिया। कपोलों पर आनन्द के कारण छलछलाये पसीने को भी मैंने हाथों से पोंछ लिया, लेकिन अचानक यह जो मेरी चोली मसकने लगी है, इस समय इसका क्या करूँ ? ४।

(- अमरु)

स्फुटतु हृदयं कामः कामं करोतु तनुं तनुं
न सखि चटुलप्रेम्णा कार्यं पुनर्दयितेन मे।
इति सरभसं मानाटोपादुदीर्य वचस्तया
रमणपदवी सारङ्गाक्ष्या सशङ्कितमीक्षिता।।५।।

कस्यचित्।

'कामदेव भले ही मेरे हृदय को विदीर्ण कर दे, शरीर को क्षीण कर दे, लेकिन सखी! अपने उस चंचल प्रेम वाले प्रेमी से मुझे पुनः प्रेम नहीं करना है'- इस प्रकार मान के अभिमान में भरी हुई वह मृगनयनी (नायिका) बरबस (पहले तो) बोल गई, लेकिन फिर (वह) आशंकित होकर प्रेमी के आने की राह देखने लगी। ५।

(- अज्ञात कवि)

४७. नायके मानिनीवचनम्

किं पादान्ते पतसि विरम श्वामिनो हि स्वतन्त्राः
कं चित्कालं क्वचिदसि रतस्तेन कस्तेऽपराधः।
आगस्कारिण्यहमिह मया जीवितं त्वद्वियोगे
भर्तृप्राणाः स्त्रिय इति ननु त्वं मयैवानुनेयः।।१।।

भावदेव्याः।

४७. नायक के प्रति मानिनी का कथन

(अरे पूज्य पतिदेव ! मेरे) तलवों पर आप क्यों गिरे पड़ रहे हैं ? रुकिये, पतिगण तो स्वतन्त्र होते ही हैं। अरे, आपने, कुछ समय तक, कहीं पर (किसी से) प्रेम कर ही लिया, तो इसमें कौन-सा बड़ा गुनाह हो गया ? अपराधिनी या पापिनी तो मैं हूँ, जो मैं यहाँ आपके वियोग में भी जीवित रही। (मुझे तो वास्तव में मर जाना चाहिए था, क्योंकि) स्त्रियों के प्राण (शास्त्रों के अनुसार) पति में रहते हैं। इसलिए वस्तुतः मुझे ही आपको मनाना चाहिए। १।

(- भावदेवी)

विशेष - उपर्युक्त पद्य में, वास्तव में बहुत पैना व्यंग्योपालम्भ निहित है। व्यञ्जनावृत्ति का यह उत्तम निदर्शन है।

तथाऽभूदस्माकं प्रथममविभिन्ना तनुरियं
ततो नु त्वं प्रेयानहमपि हताशा प्रियतमा।
इदानीं नाथस्त्वं वयमपि कलत्रं किमपरं
मयाप्तं प्राणानां कुलिशकठिनानां फलमिदम्।।२।।

अमरोः।

पहले तो, हम दोनों के शरीर मिलकर एक हो गये थे (- अर्थात् हममें स्त्री-पुरुष का या दो भिन्न व्यक्ति होने तक का अन्तर नहीं रह गया था)। उसके बाद तुम प्रेमी बन गये और मैं हताश प्रियतमा रह गई (अर्थात् हम एक से दो हो गये)। इस समय तुम स्वामी हो और मैं तुम्हारी पत्नी (अर्थात् हममें ऊँच-नीच की स्थितियाँ भी आ गई हैं)। और अधिक क्या कहूँ, मैंने तो अपने वज्र सदृश कठोर प्राणों का (ही) यह फल पाया है। (अभिप्राय यह कि यदि मेरी मृत्यु हो गई होती तो मेरी यह दुर्दशा न होती।) २।

(- अमरु)

भवतु विदितं भव्यालापैरलं प्रिय गम्यतां
तनुरपि न ते दोषोऽस्माकं विधिस्तु पराङ्मुखः।
तव यदि तथाभूतं प्रेम प्रपन्नमिमां दशां
प्रकृतिचपले का नः पीडा गते हतजीविते।।३।।

तस्यैव।

'अरे प्रिय ! (अब) रहने भी दो। (हमने सब कुछ) जान-समझ लिया। इन लच्छेदार बातों से अब क्या लाभ ? तुम जाओ। तुम्हारा तो इसमें थोड़ा-सा भी दोष नहीं है। (क्या

करें !) विधाता ही (इस समय हमसे) विमुख है। तुम्हारा यदि उस प्रकार का (पूर्ववत्) प्रेम वर्तमान स्थिति में पहुँच चुका है, तो (इन) अभागे प्राणों के, जो नैसर्गिक रूप से ही चंचल हैं, चले जाने पर भी हमें कोई पीड़ा (नहीं होगी)।' ३।

(- वही)

कोपो यत्र भ्रुकुटिरचना निग्रहो यत्र मौनं
यत्रान्योन्यस्मितमनुनयो यत्र दृष्टिः प्रसादः।
तस्य प्रेम्णस्तदिदमधुना वैशसं पश्य जातं
त्वं पादान्ते लुठसि न च मे मन्युमोक्षः खलायाः।।४।।

तस्यैव।

'जिस प्रेम में भृकुटि-विन्यास ही रोष है, मौन ही अनुशासन है, एक-दूसरे की मुस्कान ही मान-मनौव्वल है, दृष्टिपात ही प्रसन्नता (का व्यञ्जक) है, उस प्रेम का आज देखो! (कितना) विनाश हो गया है ! कि तुम मेरे तलवों पर लोट रहे हो, और मैं (इतनी) दुष्ट हो गई हूँ कि इस पर भी मेरा क्रोध ही नहीं समाप्त हो रहा है ! ४।

(- वही)

यदा त्वं चन्द्रोऽभूरविकलकलापेशलवपु-
स्तदार्द्रा जाताहं शशधरमणीनां प्रकृतिभिः।
इदानीमर्कस्त्वं खररुचिसमुत्सारितरसः
किरन्ती कोपाग्नीनहमपि रविग्रावघटिता।।५।।

अचलस्य।

(अरे पहले) जब तुम समस्त कलाओं से युक्त होने के कारण सरस चन्द्रमा (के सदृश) शरीर वाले थे, तब मैं भी चन्द्रकान्त मणियों के स्वाभाविक गुणों से युक्त होकर तरल हो गई थी। इस समय (जब) तुम सूर्य के (सदृश सन्तापप्रद होकर) अपनी प्रखर किरणों से प्रेमरस को नष्ट करने पर तुले हो, तो मैं भी क्रोध की चिनगारियाँ बिखेरती हुई सूर्यकान्तमणि से निर्मित हो गई हूँ। ५।

(- अचल)

४८. मानिन्यां सखीप्रबोधः

कियन्मात्रं गोत्रस्खलनमपराद्धं चरणयो-
श्चिरं लोठत्येष ग्रहवति न मानाद्विरमसि।

रुषं मुञ्चामुञ्च प्रियमनुगृहाणायतिहितं
श्रृणु त्वं यद्ब्रूमः प्रियसखि न माने कुरु मतिम्।।१।।

मनोकस्य।

४८. मानवती नायिका के प्रति सखी का प्रबोधन

अरी मानिनी सखी ! (तुम्हारे इस प्रणयी नायक ने) गोत्र-स्खलन रूप जरा-सा अपराध कर दिया था, (और अब) यह (बेचारा तुम्हारे) चरणों पर देर से लोट रहा है, लेकिन तुम अपना मान नहीं छोड़ पा रही हो ! दोष का त्याग करो, प्रेमी का नहीं। वह तो अनुग्रह का पात्र है। हम तुम्हारे हित की बात कह रहे हैं, उसे (ध्यान से) सुनो - अरी प्रिय सखी ! मान करने का तो विचार (तक) मत करो। १।

(- मनोक)

असद्वृत्तो नायं न च सखि गुणैरेष रहितः
प्रियो मुक्ताहारस्तव चरणमूले निपतितः।
गृहाणैनं मुग्धे व्रजतु तव कण्ठप्रणयिता-
मुपायो नास्त्यन्यो हृदयपरितापापनयने।।२।।

कस्यचित्।

अरी सखी ! (तुम्हारा) यह प्रेमी न तो अनुचित व्यवहार करने वाला है, और न गुणहीन है। खाना-पीना छोड़कर (अथवा मोतियों का हार हाथ में लिये हुए) यह (तुम्हारे) चरण-तल में पड़ा है। अरी भोली ! इसे स्वीकार करो। इसे गले से लगाकर प्रेम करो। हृदय की खिन्नता दूर करने के लिए (इसके अतिरिक्त) दूसरा उपाय (ही) नहीं है। २।

(- अज्ञात कवि)

लिखन्नास्ते भूमिं बहिरवनतः प्राणदयितो
निराहाराः सख्यः सततरुदितोच्छूननयनाः।
परित्यक्तं सर्वं हसितपठितं पञ्चरशुकै-
स्तवावस्था चेत्थं विसृज कठिने मानमधुना।।३।।

अमरोः।

अरी सखी ! (तुम्हारा) प्राणप्रिय (नायक) बाहर शिर झुकाये हुए जमीन को कुरेद

रहा है। रोते-रोते सखियों की आँखें सूज गई हैं। पिंजड़ों में पले शुकों ने भी हँसना और (राम-राम) रटना छोड़ दिया है। और तुम्हारी इस प्रकार की अर्थात् दयनीय अवस्था है, इसलिए हे कठोर हृदय वाली सखी ! अब मान करना छोड़ दो। ३।

(- अमरु)

यदेतत्ते मौनं स्मितमुदयते यन्न वदने
यदव्यक्ता दृष्टिर्यदभिमुखवामः स्थितिरसः।
उपास्यानामीदृग्विमतिषु हतप्रश्रयतया
हृदा दूरं याति प्रियसखि नवीनः परिजनः।।४।।

उमापतिधरस्य।

अरी प्रिय सखी ! तुम्हारा (यह) मौन धारण करना, चेहरे पर (जरा-सी भी) मुस्कान का न आना, दृष्टि में अव्यक्तता (- सपाटपन-) सामने (बैठे) व्यक्ति से उल्टे बैठना- आराध्य जन जब इस प्रकार का विपरीत विचार एवं व्यवहार करने लगते हैं, तो बेसहारे होकर नये (प्रेमी अथवा) परिजन हृदय से दूर चले जाते हैं। ४।

पाणौ शोणतले तनूदरि दरक्षामा कपोलस्थली
विन्यस्ताञ्चनदिग्धलोचनजलैः किं म्लानिमानीयते।
मुग्धे चुम्बतु नाम चञ्चलतया भृङ्गः क्वचित्कन्दली-
मुन्मीलन्नवमालतीपरिमलः किं तेन विस्मार्यते।।५।।

पाणिनेः।

अरी कृशाङ्गी सखी ! तुम्हारी हथेलियाँ लाल हैं, कपोल भय से क्षीण हो गये हैं, आँखों का काजल आँसुओं से भीग गया है। अरे, तुम कितनी कुँभला गई हो ! अरी भोली! भ्रमर ने अपनी चंचलवृत्ति के कारण भले ही कहीं (एकाध बार) कन्दली को क्यों न चूम लिया हो, लेकिन ताजा खिली मालती को क्या (कभी) वह भुला सकता है ? ५।

(- पाणिनि)

४६. अनुनयः

रम्भोरु क्षिप लोचनार्धमभितो बाणान्वृथा मन्मथः
सन्धत्तां धनुरुज्झतु क्षणमितो भ्रूवल्लिमुल्लासय।

किं चान्तर्निहितानुरागमधुरामव्यक्तवर्णक्रमां
मुग्धे वाचमुदीरयास्तु जगतो वीणासु भेरीभ्रमः।।१।।

भेरीभ्रमकस्य।

४६. अनुनय (- मनौव्वल)

अरी कदली (के तने के सदृश) जंघाओं वाली भोली (प्रिये) ! तुम चारों ओर अपनी आधी ही दृष्टि डालो, (अन्यथा) कामदेव का शर-सन्धान व्यर्थ हो जायेगा (और इसके कारण वह कहीं अपने) धनुष का (ही) परित्याग न कर दे ! क्षण भर के लिए, इधर (भी) भ्रूलता को उल्लसित करो। (साथ ही) अपने हृदय में सन्निहित प्रेम की मधुरता से युक्त एवं अव्यक्त वर्णक्रम वाली वाणी भी बोलो, जिससे संसार को वीणा में दुन्दुभिवादन की भ्रान्ति हो जाये ! १।

(- भेरीभ्रमक)

किमिति कवरी यादृक् तादृग्दृशौ किमनञ्जने
मृगमदमसीपत्रन्यासः स किं न कपोलयोः।
अयमसमयं किं च क्लाम्यत्यसंस्मरणेन ते
शशिमुखि सखीहस्तन्यस्तो विलासपरिच्छदः।।२।।

अमरोः।

अरी चन्द्रमुखी ! यह क्या ! जैसा (प्रसाधनरहित) बालों का जूड़ा, वैसी ही काजलरहित आँखें ! और कपोलों पर तुमने कस्तूरी के लेप से पत्र-रचना क्यों नहीं की? तुम्हारी स्मृति के अभाव में, सखी के हाथ में रखी विलास की सामग्री (भी) असमय में ही सूख गई है। २।

(- अमरु)

प्रिये मौनं मुञ्च श्रुतिरमृतधारां पिबतु मे
दृशावुन्मील्येतां भवतु जगदिन्दीवरमयम्।
प्रसीद प्रेमापि प्रशमयतु निःशेषमधृती-
रभूमिः कोपानां ननु निरपराधः परिजनः।।३।।

डिम्बोकस्य।

प्रिये ! मौन का त्याग करो। मेरे कान तुम्हारी अमृतधारा के सदृश मधुरवाणी को

सुनने के लिए बेताब हैं। (अपनी) आँखें खोलो, जिससे यह संसार नीलकमलमय हो जाये। प्रेम प्रसन्न हो जाये। समस्त अधीरता समाप्त हो जाये। अरे ! निरपराध प्रेमी या सेवक पर (व्यर्थ में) क्रोध नहीं किया जाता ! ३।

(- डिम्बोक)

यदि विनिहिता शून्या दृष्टिः किमु स्थिरकौतुका
यदि विरचितो मौने यत्नः किमु स्फुरितोऽधरः।
यदि नियमितं ध्याने चक्षुः कथं पुलकोद्गमः
कृतमभिनयैर्दृष्टो मानः प्रसीद विमुच्यताम्।।४।।

अमरोः।

यदि (तुमने) शून्य में दृष्टि केन्द्रित कर दी है, तो (उसमें) उत्कण्ठा क्यों स्थिर हो गई है ? यदि मौन-साधना की चेष्टा कर रही हो, तो अधर क्यों स्पन्दन कर रहे हैं ? यदि आँखें ध्यान में लगी हैं, तो (उनमें) आनन्द का उद्गम क्यों हो रहा है ? (तुमने अब तक) मान का बहुत अभिनय कर लिया, (हमने उसे) देख भी लिया। (अब) प्रसन्न हो जाओ और मान करना त्याग दो। ४।

(- अमरु)

कपोले पत्राली करतलनिरोधेन मृदिता
निपीतो निःश्वासैरयममृतहृद्योऽधररसः।
मुहुः कण्ठे लग्नस्तिरयति च बाष्पः स्तनतटं
प्रियो मन्युर्जातस्तव निरनुरोधो न तु वयम्।।५।।

कस्यचित्।

कपोलों पर की गई पत्र-रचना हथेली लगाकर पोंछ दी गई है। हृदय के लिए अमृत के समान सुखद अधर-रस को निःश्वासों ने पूरी तरह पी लिया है। आँसू क्षण भर के लिए गले पर ठहरते हुए स्तन-तटों पर पहुँच रहे हैं। तुम्हारे लिए अब रोष (अधिक) प्रिय हो गया है, हम नहीं। (क्योंकि) इस रोष को दूर करने के लिए तुम कोई प्रयत्न नहीं कर रही हो ! ५।

(- अज्ञात कवि)

५०. मानभङ्गः

दृष्टे लोचनवन्मनाङ्मुकुलितं पार्श्वस्थिते वक्त्रव-
न्न्यग्भूतं बहिरासितं पुलकवत्स्पर्शं समातन्वति।
नीवीबन्धवदागतं शिथिलतां संभाषमाणे ततो
मानेनापसृतं ह्रियेव सुदृशः पादस्पृशि प्रेयसि।।१।।

कस्यचित्।

५०. मान-भङ्ग

(नायिका की प्रेमी पर जैसे ही) दृष्टि पड़ी, (उसका मान) आँखों की तरह बन्द हो गया। (जब वह) पास में खड़ा हुआ तो (मान) मुख की तरह नीचा हो गया। (नायक के) स्पर्श से, तो (मान) आनन्द की तरह बाहर निकल पड़ा। इसके पश्चात् संभाषण करने पर तो (मान) नीवी के बन्धन की तरह शिथिल हो गया और जब प्रेमी ने प्रेयसी के चरणों का स्पर्श किया, तो उस सुन्दर नयनों वाली नायिका का मान लज्जा की तरह (पूर्णतया) पलायन कर गया। १।

(- अज्ञात कवि)

चेतस्यङ्कुरितं विसारिणि दृशोर्द्वन्द्वे द्विपत्रायितं
प्रायः पल्लवितं वचस्युपचितं प्रौढं कपोलस्थले।
तत्तत्कोपविचेष्टिते कुसुमितं पादानते तु प्रिये
मानिन्यां फलितं नु मानतरुणा पर्यन्तवन्ध्यायितम्।।२।।

राजशेखरस्य।

मान का वृक्ष (नायिका के) विस्तृत मन में अंकुरित हुआ, नेत्रों (तक पहुँचने पर) उसमें दो पत्ते निकल आये। वाणी में वह पल्लवयुक्त हो उठा। कपोलों पर विकसित होकर उसने प्रौढ़ता प्राप्त की। (उस मानवृक्षों में), क्रोध की विभिन्न चेष्टाओं में फूल खिल गये। लेकिन अन्त में, जैसे ही प्रेमी नायिका के पैरों पर गिरा, वन्ध्या स्त्री के सदृश उस मानवृक्ष में फल नहीं निकल सके। २!

(- राजशेखर)

एकस्मिन्शयने पराङ्मुखतया वीतोत्तरं ताम्यतो-
रन्योन्यस्य हृदि स्थितेऽप्यनुनये संरक्षतोर्गौरवम्।

दम्पत्योः शनकैरपाङ्गवलनान्मिश्रीभवच्चक्षुषो-
र्भग्नो मानकलिः सहासरभसव्यासक्तकण्ठग्रहः ।।३ ।।

अमरोः ।

पति-पत्नी दोनों ही एक ही शय्या पर, (परस्पर) मुँह घुमाकर अर्थात् एक-दूसरे की ओर पीठ करके, खिन्न मुद्रा में हृदय में अनुनय भाव होने पर भी अपने-अपने बड़प्पन की रक्षा करते हुए, संवादरहित स्थिति में लेटे हुए थे। इतने में धीरे से, अपांग हिलने के कारण, उनकी आँखें जैसे ही आपस में मिलीं, उनमें मानजन्य कलह समाप्त हो गई और वे एक दूसरे के गले में लिपट गये।३।

(- अमरु)

दूरादुत्सुकमागते विकसितं संभाषिणि स्फारितं
संश्लिष्यत्यरुणं गृहीतवसने कोपाञ्चितभ्रूलतम्।
मानिन्याश्चरणानतिव्यतिकरे वाष्पाम्बुपूर्णेक्षणं
चक्षुर्जातमहो प्रपञ्चचतुरं जातागसि प्रेयसि।।४ ।।

तस्यैव।

'अपराधी' नायक के आने पर, मानिनी नायिका के प्रपञ्च-निपुण नेत्र दूर से ही उत्सुक हो उठे। संभाषण करने पर (नेत्र) विकसित होकर फैल गये। आलिङ्गन करने पर लाल-पीले हो गये। (नायक के द्वारा) वस्त्र पकड़ने पर (नायिका के नेत्रों की) भौंहे क्रोध से भर गईं और जब नायक (नायिका के) चरणों में झुक गया, तो (नायिका के) नेत्रों में आंसू छलछला उठे! ४।

(-अमरु)

सुतनु जहिहि कोपं पश्य पादानतं मां
न खलु तव कदाचित्कोप एवंविधोभूत्।
इति निगदति नाथे तिर्यगामीलिताक्ष्या
नयनजलमनल्पं मुक्तमुक्तं न किञ्चित्।।५ ।।

तस्यैव।

'अरी सुन्दरी! क्रोध को (अब) छोड़ दो। देखो, मैं तुम्हारे पैरों पर गिरा पड़ा हूँ। तुम्हें इस प्रकार से तो पहले कभी क्रोध नहीं आया।' जब इस प्रकार से पति कह ही रहा था,

तभी थोड़ी टेढ़ी और मुंदी आँखवाली उस नायिका की आँखों से आँसू तो बहुत बहे, लेकिन वोल वह कुछ भी नहीं सकी! ५।

(-वही)

५१. प्रवसद्भर्तृका

दृष्टः कातरनेत्रयातिसुचिरं बद्धाञ्जलिं याचितः
पश्चादंशुकपल्लवेन विधृतो निर्व्याजमालिङ्गितः।
इत्याक्षिप्य यदा समस्तमघृणो गन्तुं प्रवृत्तस्तदा
पूर्वं प्राणपरिग्रहो दयितया मुक्तस्ततो वल्लभः।।१।।

कस्यचित्।

५१. प्रवासी पति वाली (नायिका)

(परदेश जा रहे पति को) प्रिया ने (पहले तो) कातर नेत्रों से देर तक देखा, हाथ जोड़कर याचना की (कि वह न जाये), फिर (उसकी) चादर पकड़कर, उसे रोकते हुए, अनायास आलिङ्गन में जकड़ लिया। (प्रिया की इन सभी चेष्टाओं का) तिरस्कार करके भी, जब वह निर्दयी पति प्रस्थान करने लगा, तो पहले प्रिया ने उसके प्राण अपने पास रख लिए, और फिर उसे (जाने के लिए) स्वतन्त्र कर दिया। १।

(-अज्ञात कवि[1])

---

१. आज यह पद्य अमरुशतक के कुछ संस्करणों में भी उपलब्ध है, लेकिन सदुक्तिकर्णामृत के संकलन-काल में यह अमरुकृत नहीं माना जाता था, यह स्पष्ट है। -अनु.